Saurashtra University

Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Makadiya, Anilkumar M., 2012, "भवानीप्रसाद मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व", thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/971

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

भवानीप्रसाद मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट की पीएच.डी.(हिन्दी)
की उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध

प्रस्तुतकर्ता

प्रा. अनिलकुमार एम. माकडिया

व्याख्याता, हिन्दी विभाग
श्री डी.के.वी. आर्ट्स एण्ड सायन्स कॉलेज,
जामनगर

शोध-निर्देशक

डॉ. एन. एम. डोडिया

स्व. एम. जे. कुंडलिया महिला कॉलेज,
राष्ट्रीय शाला केम्पस, राजकोट

सौराष्ट्र विश्व विधालय,
हिन्दी विभाग,
राजकोट

वर्ष : 2011-12

F:\ANILMAKADIA\Front

प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **प्रा.अनिलकुमार एम. माकडिया** ने सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट की पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि के लिए मेरे निरीक्षण में **'भवानीप्रसाद मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व'** शीर्षक शोध–प्रबंध तैयार किया है ।

इस शोध–प्रबंध में इन्होंने उक्त विषय का यथाशक्ति अध्ययन–अनुशीलन एवं शोध–परक विश्लेषण – विवेचन कर वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरूपण किया है तथा आवश्यकतानुसार विविध संदर्भग्रन्थों का समुचित उपयोग कर अपनी मौलिक उद्‌भावनाओं की संपुष्टि भी की है ।

साथ ही, यह शोध–प्रबंध अथवा इसका कोई अंश अब तक न तो प्रकाशित हुआ है और न ही इसका कहीं कोई उपयोग हुआ है ।

शोध–निर्देशक

दिनांक :

डॉ. एन. एम. डोडिया

स्थल :

स्व. एम. जे. कुंडलिया महिला कॉलेज,
राष्ट्रीय शाला केम्पस,
राजकोट

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ
– प्रस्तावना	२–११
– जन्म, बचपन एवं शिक्षा	
– जन्म	
– बचपन	
– शिक्षा	
– वैवाहिक जीवन	
– मिश्रजी का कृतित्व	
– साहित्य परिचय	
– कृतित्व परिचय	
– गद्य रचनाएँ	
– पद्य रचनाएँ	
– युगीन पृष्ठभूमि	
(१) राजनैतिक परिस्थितियाँ	
(२) सामाजिक परिस्थितियाँ	
(३) आर्थिक परिस्थितियाँ	
(४) धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ	
(५) साहित्यिक परिस्थितियाँ	
– प्रगतिवाद	
– प्रयोगवाद	
– समकालीन कवि और उनमें भवानीप्रसाद मिश्रजी का स्थान	

प्रस्तावना

यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे सौराष्ट्र विश्व विधालय में अध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है । सौराष्ट्र विश्व विधालय एक राष्ट्रीय स्तर की संस्था है । यहा सिर्फ परीक्षा को प्राधान्य नहीं दिया जाता पर विधार्थीयों के विकास एवं विषय में अधिक सक्षम बने इसका भी ध्यान रखा जाता है । इस विश्व विधालय में पीएच.डी. की पदवी के लिए यह शोधप्रबंध प्रस्तुत कर रहा हूँ ।

साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा काव्य विधा अधिक लोकप्रिय रही है, क्योंकि कविता की थोडी सी पंक्तियों में (गागर में सागर) अधिक भाव भर देने की अद्भूत शक्ति रही है । मैं साहित्य का छात्र होने के कारण साहित्य की सभी विधाओं में मेरी रूचि स्वभाविक है, पर सभी विधाओं में से किसी एक के चयन का प्रश्न जब भी उपस्थित हुआ है, तब में अपनी स्वाभाविक रूचि के अनुसार काव्यविधा को ही अधिक पसंद करता हूँ । इसी रूचि के कारण आज एक महान साहित्यकार को इस शोध प्रबंध के माध्यम से इतनी अच्छि तरह जानने, समझने और आज-तक समाज से जो अन कहा था, उसे कहने का मौका प्राप्त हुआ है ।

हिन्दी साहित्य के स्वातन्त्रोत्तर नयी पीढ़ी के साहित्यकारों में श्री भवानीप्रसाद मिश्र सौम्य श्रेष्ठ प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व के धनी है, मिश्रजीने जीवन के अनेक-विध पक्षों पर अपनी लेखनी का कमाल दिखाने में बेजोड़ ख्याति एवं सफलता प्राप्त की है, कविने भारतीय संस्कृति एवं सामाजिकता के प्रकाश पुजों को भी आधुनिक सन्दर्भो में

अभिव्यक्ति प्रदान करके युगीन जीवन, नया संदेश, नये कीर्तिमान और अपनी नयी व्याख्याओं का उपहार प्रस्तुत किया है । शब्दों की आत्मा के पारखी तथा कुशल अभिव्यक्ति के शिल्पी श्री भवानीप्रसाद मिश्रने काव्यों में अनेक नये प्रयोग किये है ।

भवानीप्रसाद मिश्र का साहित्य यथार्थ और आदर्श के भावबोध से परिपूर्ण है । सामान्य मानवी की आकांक्षाएँ और समाज में फैली बदीओं को गाँधीमार्ग पर चलकर कविता के माध्यम से आक्रोश और गहरी निगाहों से देखकर प्रस्तुत किया है । मिश्रजी ने इसी वेदना में संवेदना मिलाकर समसामयिक जन-जीवन की आयातित एवं अप्रत्याशित, विसंगतियों तथा विकृतियों से जनित अनेकविध द्वन्द्व ग्रसित समस्याओं को अनावृत करने के बलवंती माँग को बडे साहस और सहजता के साथ अपनी कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

मिश्रजी को साहित्यकार के रूप में जीतना न्याय मिलना चाहिये था उतना न्याय उन्हें आज तक मिल नहीं पाया है । लेकिन इस बात का उन्हें कभी अफसोस नहीं रहा है । उन्हें जीतना विश्वास ईश्वर में था उतना ही गाँधी पर भी था और उसी को ध्यान में रखकर, उनके कार्यो को कविता के रूप में प्रस्तुत करते रहे थे । इस शोध प्रबंध के माध्यम से उसी अछूते से साहित्य की तरफ ध्यान देने का एक छोटा-सा प्रयास किया है ।

भवानीप्रसाद मिश्रजीने १६ काव्य संग्रह और २ गध कृत्तिया लिखि है । उन सब में 'गाँधी विचारधारा', वर्ग-संघर्ष एवं सामाजिकता के दर्शन प्रमुख रहे हैं । सामान्य व्यक्ति की समस्याओं को वाचा देने का

काम मिश्रजी ने अपनी कविताओं में किया है । उनकी कविता में सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन का वास्तविक और मार्मिक चित्रण हुआ है । उन्होंने सदा ही लींक से हटकर कुछ नया लिखा है । इन सभी बातों पर इस शोधप्रबंध में प्रकाश डाला है ।

इस शोध प्रबंध को अध्ययन कि सुविधा के लिए छ अध्यायों में विभाजीत किया है ।

- प्रथम अध्याय में भवानीप्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को प्रस्तुत किया है ।
- दूसरे अध्याय में भवानीप्रसाद मिश्रजी की काव्य कृत्तियों का अनुशीलन एवं गद्य साहित्य पर प्रकाश डाला है ।
- तीसरे अध्याय में भवानीप्रसाद मिश्र के काव्यों में सामाजिक चेतना को उजागर किया है ।
- चौथे अध्याय में मिश्रजी के काव्यों में प्रतिबिबिंत वर्ग-संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है ।
- पाँचवे अध्याय में मिश्रजी के काव्यों में गाँधीवाद के उपर प्रकाश डाला है ।
- छट्ठे अध्याय में भवानीप्रसाद मिश्र के काव्यों का शिल्प सौन्दर्य प्रस्तुत किया है ।

और अंत में उपसंहार के बाद परिशिष्ट में संदर्भग्रथ सूचि दी गई है ।

इस लधुशोध प्रबंध को तैयार करने में सबसे पहले मैं अपने माता–पिता का आभारी हूँ कि जिन्होंने मेरी सभी जरूरतों को पूर्ण किया और मूझे हमेशां प्रोत्साहित किया इस शोध प्रबंध हेतु विषयोंचित ज्ञान देनेवाले मेरे मार्गदर्शक डॉ. एन. एम. डोडिया साहब का अत:करण से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे विषय–चयन से लेकर आजतक अपने मार्गदर्शन से लाभान्वित किया है । मैं अपने निकटवर्ती साथी मित्रों, प्रियजन एवं स्नेहीओं का भी आभारी हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से मेरी सहायता की है । मुझे इस शोधप्रबंध को तैयार करने में जिन महानुभावों का सहयोग मिला, उनका भी आभारी हूँ । सभी ग्रंथालयों एवं गुरूजनों का भी आभारी हूँ एवं कम्प्यूटरीकरण के लिए सोनार कम्प्यूटर का भी मैं हार्दिक आभार मानता हूँ ।

धन्यवाद,

प्रा. अनिलकुमार एम. माकडिया
हिन्दी विभाग,
श्री डी. के. वी. आर्ट्स एण्ड
सायन्स कॉलेज, जामनगर

अनुक्रमणिका

- **प्रस्तावना**
- **शोध विषय की प्रेरणा एवं विषयचयन**
- **शोध विषय की आवश्यकता एवं महत्व**
- **शोध सामग्री संकलन**
- **शोध-प्रबंध का उद्‌देश्य**
- **शोधप्रबंध का परिचय**
- **प्रथम अध्याय :**

  'भवानीप्रसाद मिश्र का व्यक्तित्व एवं कृतित्व'
- **दूसरा अध्याय :**

  'भवानीप्रसाद मिश्र की काव्य एवं गध कृत्तियों का परिचय'
- **तृतीय अध्याय :**

  'भवानीप्रसाद मिश्र के काव्यों में सामाजिक चेतना'
- **चौथा अध्याय :**

  'भवानीप्रसाद मिश्र के काव्यों में प्रतिबिंबित वर्ग-संधर्ष'
- **पाँचवा अध्याय :**

  'भवानीप्रसाद मिश्र के काव्यों में गाँधीवाद'
- **छठ्ठा अध्याय :**

  'भवानीप्रसाद मिश्र के काव्यों का शिल्प सौन्दर्य'
- **उपसंहार :**
- **कृतज्ञताज्ञापन :**

प्रस्तावना :

साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा काव्य विधा अधिक लोकप्रिय रही है क्योंकि कविता की थोड़ी-सी पंक्तियों में (गागर में सागर) अधिक भाव भर देने की अद्‌भूत शक्ति रही है । मैं साहित्य का छात्र होने के कारण साहित्य की सभी विधाओं मैं मेरी रूचि स्वाभाविक है, पर सभी विधाओं में से किसी एक के चयन का प्रश्न जब भी उपस्थित हुआ है, तब मैं अपनी स्वाभाविक रूचि के अनुसार काव्यविधा को ही अधिक पसंद करता हूँ । इसी रूचि के कारण आज एक महान साहित्यकार को इस शोध प्रबंध के माध्यम से इतनी अच्छि तरह जानने, समझने और आज-तक समाज से जो अनकहा था उसे कहने का मौका प्राप्त हुआ है ।

हिन्दी साहित्य के स्वातन्त्रोतर नयी पीढ़ी के साहित्यकारों में श्री भवानीप्रसाद मिश्र सौम्य श्रेष्ठ प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तितत्व के धनी है, मिश्रजीने जीवन के अनेक विध पक्षों पर अपनी लेखनी का कमाल दिखाने में बेजोड़ ख्याति एवं सफलता प्राप्त की है, कवि ने भारतीय संस्कृति एव सामाजिकता के प्रकाश पुंजों को भी आधुनिक सन्दर्भो में अभिव्यक्ति प्रदान करके युगीन जीवन, नया संदेश, नये कीर्तिमान और नयी व्याख्याओं का उपहार प्रस्तुत किया है । शब्दों की आत्मा के पारखी तथा कुशल अभिव्यक्ति के शिल्पी श्री भवानीप्रसाद मिश्रजीने काव्यों में अनेक नये प्रयोग किये है ।

भवानीप्रसाद मिश्र का साहित्य यथार्थ और आदर्श के भावबोध से परिपूर्ण है । सामान्य मानवी की आकांक्षाएँ और समाज में फैली बंदीओं को गाँधीमार्ग पर चलकर कविता के माध्यम से आक्रोश और

गहरी निगाहों से देखकर प्रस्तुत किया है । मिश्रजी ने इसी वेदना में संवेदना मिलाकर सम–सामयिक जन–जीवन की आयातित एवं अप्रत्याशित, विसंगतियों तथा विकृतियों से जनित अनेक विध द्वन्द्व ग्रसित समस्याओं को अनावृत करने की बलवंती मांग को बड़े साहस के साथ अपनी कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

मिश्रजी को साहित्यकार के रूप में जीतना न्याय मिलना चाहिये था उतना न्याय उन्हें आज तक मिल नहीं पाया है । लेकिन इस बात का उन्हें कभी अफसोस नहीं रहा है । उन्हें जीतना विश्वास ईश्वर में था उतना ही गाँधी पर भी था और उसी को ध्यान में रखकर, उनके कार्यो को कविता के रूप में प्रस्तुत करते रहे थे । इस शोध प्रबंध के माध्यम से उसी अछूते से साहित्य की तरफ ध्यान देने का एक छोटा सा प्रयास किया है ।

शोध विषय की प्रेरणा एवं विषयचयन :

मैंने एम.फिल. की उपाधि के लिए 'भवानीप्रसाद मिश्र के काव्यों में गाँधी विचारधारा' विषय पर लघुशोध प्रबंध तैयार किया था । तब मिश्रजी के सम्पूर्ण साहित्य का अध्ययन करते हुए मुझे लगा कि मिश्रजी का सम्पूर्ण साहित्य गाँधी विचारधारा से प्रेरित तो है लेकिन इसमें तो अनेक ऐसे पहलु है जो छूट रहे है । लघु शोध प्रबंध में इन सब बातों को प्रस्तुत कर पाना मुमकिन नहीं था । तब से मेरे मन में मिश्रीजी के पूरे साहित्य को सम्पूर्ण न्याय देने की लालसा और कविताओं के प्रति मेरी स्वाभाविक रूचि के कारण यह विषय मेरे मन में पीएच.डी. की उपाधि के लिए आया । यह बात मैंने मेरे गुरूवर, स्नेही और परम हितेच्छू

डॉ. एन. एम. डोडिया के सामने रखी । जब मैंने अपनी इच्छा उनके सामने प्रस्तुत कि तभी उन्होंने गहरी चर्चा के बाद विचार-विमर्श करके मिश्रजी के सम्पूर्ण साहित्य पर कार्य करने की अनुमति दिय ।

इस विचार-विमर्श के बाद प्रश्न उपस्थित हुआ कि शीर्षक क्या दिया जाएँ शोध निर्देशक डॉ. डोडिया साहबने सम्पूर्ण साहित्य को देखकर मुझे शीर्षक दिया - 'भवानीप्रसाद मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व'

शोध विषय की आवश्यकता एवं महत्व :

कविता और समाज का अतुट संबंध है और रहेगा । समाज की जीवनधारा में कविता का कमलवत विकास होता रहता है । कविता समाज की धरती पर पनपनेवाला जीवन का फल है । समाज के सुख-दु:ख की गंगा-यमुना की धाराओं के संगम पर कविता त्रिवेणी और तीर्थराज के समान है । कविता रूप, सौन्दर्य और प्रगति के प्रभाव का साकार चित्र है, वह समाज की शुद्धि का परिणाम और अनुभूति का सार है तो दूसरी ओर कविता समाज की चिर स्थायी सृष्टि है । मनुष्य जन्म धारण करता है और मृत्यु होती है अर्थात् नाशवंत है, परन्तु कविता का सर्जन होने के बाद चिरकाल तक स्थिर, अमर हो जाती है । कविता समाज की अमर सृष्टि है । उसमें चित्रित जीवन का रूप शाश्वत है ।

आधुनिक काव्य साहित्य लेखन-परंपरा के साथ जुड़े श्री भवानीप्रसाद मिश्र के साहित्य पर दृष्टि डालने से यह ज्ञात होता है कि वे साहित्य परंपरा से हटकर रचनाधर्मी प्रयोग करते है । मिश्रजी ने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज के बदलते हुए रूप को प्रस्तुत

करने का सफल प्रयोग किया है । इस अध्ययन के दौरान मुझे कवि के बहु आयामी व्यक्तित्व और साहित्य में संशोधन करने की पर्याप्त संभावनाएँ दिखाई दी ।

मेरा यह शोध प्रबन्ध आज के साहित्यवर्ग में उपेक्षित होती हुए काव्य विधा को लोकप्रिय बनाने का एक मात्र छोटा-सा प्रयास है । शोधार्थी से लेकर विध्वतजन और अध्यापकों से लेकर विधार्थी तक कविता को टालने कि कोशिश करते है । गीने-चुने प्रयासों को छोड दे तो यह विधा उपेक्षित की तरह किसी कोने में पड़ी है । आज हो रहे अनुसंधानों में भी ९५ प्रतिशत गध साहित्य के होते है । क्यु ? आज हम वास्तविकता का स्विकार करने से डरते है । मिश्रजीने सबकुछ यथार्थ के धरातल पर गाँधी को साथ रखकर वास्तविक समाज का दर्शन करवाया है । मिश्रजी के 'गाँधी पंचसती', 'त्रिकाल संध्या' आदि के अलावा भी बहुत कुछ लिखा है । जिसे बहुत कम लोग जानते है । इस शोध प्रबन्ध के द्वारा मैंने उस साहित्य को समाज के सामने लाने की कोशिश कि है । विषय का शीर्षक ही 'भवानी प्रसाद मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' में ही सामान्यत: शोध प्रबन्ध की सूक्ष्म जानकारी प्राप्त हो जाती है । मिश्रजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व को समाज के सामने प्रस्तुत किया है तो साथ में समग्र साहित्य को भी न्याय देने की कोशिश कि गई है ।

शोध सामग्री संकलन :

शोध-कार्य और इसके लिए सामग्री संकलन बहुत कठिन कार्य है । लेकिन आवश्यक क्रिया है । शोध-सामग्री के अभाव में हम बहोत कुछ

चाहते हुए भी कुछ नहीं कर पाते इसलिए यह क्रिया आवश्यक भी इतनी है । मुझे भी सामग्री संकलन करने में बहोत कठिनाईयों का सामना करना पड़ा, लेकिन कार्य करने का उत्साह किसी भी कठिनाई को हल कर देता है उसी प्रकार यह शोध–सामग्री का संकलन करने में आई मुश्किले हल होती गई । सामग्री संकलन में सबसे पहले दूरभाष का सबसे ज्यादा उपयोग किया । प्रकाशनों से सम्पर्क, नई किताबों के सम्पादकों से सम्यर्कं साथ ही मैंने मिश्रजी के बारे में सूक्ष्म से सूक्ष्म जानकारी भी दूरभाष द्वारा प्राप्त कि । फिर मूलग्रथ प्राप्त किये । इसके अलावा भी बहोत से प्रश्नों से मैं धिर जाता था तब मेरे स्नेहीजनों का सहयोग और माननीय गुरूवर डॉ. डोडिया साहब के निर्दशन से प्रश्न आसान हो जाते थे ।

विश्वसनीय सामग्री ही शोध–अध्ययन की आधारशीला है । उपलब्ध सामग्री जितनी पूर्ण, प्रामाणित एवं वैज्ञानिक हो, शोध कार्य उतना ही ठोस एवं विश्वसनिय बनता है । प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए सामग्री प्राप्त होने के स्त्रोत इस प्रकार रहे है –

- गूजरात विधापीठ ग्रंथालय – अहमदाबाद
- सौराष्ट्र विश्वविधालय ग्रंथालय – राजकोट
- हिन्दी भवन – सौराष्ट्र विश्वविधालय – राजकोट
- स्व. एम. जे. कुंडलिया महिला कॉलेज ग्रंथालय – राजकोट
- डॉ. डोडिया साहब के निजी ग्रंथालय से
- पूर्व प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध–प्रबंध

- विवेचनात्मक ग्रंथों से
- पत्र-पत्रिकाएँ
- शब्दकोश
- वेबसाईट, इन्टरनेट से

इस प्रकार शोधकार्य के दौरान उपर्युक्त ग्रथालयों, विद्वानों, पत्र-व्यवहार, दूरभाष, इन्टरनेट से अपने विषय सम्बन्धी सामग्री प्राप्त करके शोधप्रबंध को पूर्ण किया है । इन सबके फलस्वरूप यह शोध-प्रबंध प्रस्तुत हो सका है ।

शोध-प्रबंध का उद्‌देश्य :

श्री भवानीप्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य के एक जागरूक तथा सशक्त अभिव्यक्ति के द्वारा यथार्थ को अपनी कविताओं के द्वारा प्रस्तुत करनेवाले कवि है । उन्होंने अपने समकालिनों से अलग - 'तार-सप्तक' के दूसरे प्रकाशन में स्थान प्राप्त किया । अलग इस लिये कि वे एक प्रवाहमय कविताये नहीं लिखि, उन्हों ने 'त्रिकाल संध्या' में आजादी का जश्न मनाया है तो 'बुनि हुई रस्सी' में समाज के आम इन्सान को प्रस्तुत किया है । 'गाँधी पंचशती' में गाँधी को यथार्थ और आदर्श के साथ उजागर किया तो 'शरीर कविता और फसले' में प्रकृति को महत्व दिया है । साथ ही साथ यथार्थ और आदर्श दो पहियों के समान साथ-साथ चलते रहे है । इन सब बातों के द्वारा मिश्रजी ने हिन्दी कविता साहित्य को समृद्ध किया है ।

प्रशिक्षित शोध–छात्र हंमेशा कुछ नयी बातों को अवश्य ही उजागर करता है । मेरा भी विनम्र प्रयास रहेगा कि इस शोध–कार्य के द्वारा समाज को, हिन्दी साहित्य को कुछ नया प्रदान कर सकु । मिश्रजी पर आजतक बहोत कम लोगों का ध्यान गया है । मेरे इस प्रयास से जिज्ञासुओं और अन्य नये शोधार्थीयों के लिए यह शोध–प्रबंध एक प्रेरणाप्रद बनेगा । इस दृष्टि से इसकी उपादेयता या उद्‌देश्य महत्वपूर्ण विषय सिद्ध होगा ।

शोधप्रबंध का परिचय :

भवानीप्रसाद मिश्र : 'व्यक्तित्व एवं कृतित्व' प्रस्तुत शोध प्रबंध को अध्ययन कि सुविधा के लिए छ अध्यायों में विभाजीत किया है, जो इस प्रकार से है –

प्रथम अध्याय :

'भवानीप्रसाद मिश्र का व्यक्तित्व एवं कृतित्व'

इस प्रथम अध्याय में मैंने मिश्रजी की जीवनी तथा व्यक्तित्व के साथ उनके कृतित्व पर भी विस्तार से प्रकाश डाला है । जिसमें मिश्रजी का जन्मस्थान, शिक्षा, वैवाहिक जीवन, परिवार संसार आदि अनेक पहलुओं का विस्तृत वर्णन करके उनके कवित्व की विशेषताओं को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है । इसके साथ मिश्रजी की साहित्ययात्रा का विस्तार से वर्णन किया है । मिश्रजी के गध साहित्य का भी परिचय करवाया है । साथ ही में उनके सभी काव्यग्रंथो की बात भी कि है ।

इस प्रकार प्रथम अध्याय में भवानीप्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व और कृतित्व को विस्तृतरूप से प्रस्तुत किया हैं ।

दूसरा अध्याय :

'भवानीप्रसाद मिश्र की काव्य एवं गध कृत्तियों का परिचय'

दूसरे अध्याय में मैंने भवानीप्रसाद मिश्र की काव्य एवं गध कृतियों का अनुशीलन प्रस्तुत किया है । इसमें सामाजिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए कृतियों का प्रवृति मूलक विवेचन प्रस्तुत किया है । साथ ही तथ्य पर भी विचार किया गया है कि आधुनिक बोध के अनुरूप किस प्रकार पूर्ववर्ती काव्यधारा से पृथक नवीनरूप से भावयोजना के क्षेत्र में आलोच्य कृत्तिकार को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है ।

इस में सभी कृत्तियों का परिचय प्रकाशन वर्ष के अनुसार प्रस्तुत किया है ।

तृतीय अध्याय :

'भवानीप्रसाद मिश्र के काव्यों में सामाजिक चेतना'

साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी है, वह सामाजिक विचारों तथा भावनाओं का सृष्टा और प्रेरक है । इस अध्याय में युगीन चेतना तथा काव्य सौन्दर्य, यांत्रिक सभ्यता चेतना के महत्वपूर्ण पहलुओं को उजागर करनेवाले मुद्दो को विस्तृतरूप से प्रस्तुत किया गया है साथ ही अर्थ व्यवस्था, परिवार प्रणाली, शहरीकरण, साम्प्रदायिकता, आम आदमी की मानसिकता आदि पर भी विस्तृतरूप से प्रकाश डाला गया है ।

चौथा अध्याय :

'भवानीप्रसाद मिश्र के काव्यों में प्रतिबिंबित वर्ग-संघर्ष'

चतुर्थ अध्याय में मिश्रजी के साहित्य में प्रतिबिंबित वर्ग संघर्ष में पहले वैयक्तिक जीवनदर्शन तथा गाँधीवाद के प्रभाव को प्रस्तुत किया साथ हि राजनीतिक जीवन दृष्टि तथा स्थिति में राष्ट्रीय उद्‌बोधन, भ्रष्टाचार, निराशा, कुंठा, अवसाद, व्यक्ति के जीवन मूल्यों आदि पर विस्तृत रूप से चर्चा किय है ।

इन सभी पहलूओं के साथ इस अध्याय में मिश्रजी के काव्यों में जो वर्ग संधर्ष में मौंजुद है उसे सब के सामने रखने का प्रयत्न किया है ।

पाँचवा अध्याय :

'भवानीप्रसाद मिश्र के काव्यों में गाँधीवाद'

मिश्रजी को गाँधीवादी कविरूप में पहचाना जाता है । इस अध्याय में मिश्रजी के काव्यों में गाँधी के ग्यारह व्रत और उनके गाँधी प्रेम को लेकर लिखी गई रचनाओं को प्रस्तुत किया गया है । उनके काव्यों में सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह जातमहेनत आदि पर जो काव्य लिखे है उनको प्रस्तुत किया गया है । मिश्रजीने गाँधी युग को जिया, पिया, ओढ़ा तथा उगला है । मिश्रजी को गाँधी काव्य का उत्सव कहा है । कवि अनेक वर्षोतक महिला आश्रम वर्धा में अध्यापन कार्य करते रहे । सेवा ग्राम उनकी सांसों में बसा था । उन सभी बातों को यहाँ प्रस्तुत किया गया है ।

इस अध्याय में गाँधीवाद को ध्यान में रखकर मिश्रजीने लिखि हुई कविताओं में सिद्धांत परक कविताएँ और व्यक्तिपरक कविताई इन दोनों प्रकारों के काव्यों पर प्रकाश डाला गया है ।

छठ्ठा अध्याय :

'भवानीप्रसाद मिश्र के काव्यों का शिल्प सौन्दर्य"

काव्य स्वरूप के प्राय: दो पक्ष होते है । भाव का विचार पक्ष तथा शिल्प का कलापक्ष । प्रथम पक्ष का सम्बन्ध काव्य के भीतरी या आत्मपक्ष से होने के कारण उसे अन्तरंग तथा द्वितीय पक्ष का संबंध उसकी रूप रचना आदि से होने के कारण उसे बर्हिरंग भी कहा गया है ।

इस अध्याय में काव्य-भाषा, शब्द-शक्ति, भाषा-शैली, उपमान-विधान, बिम्ब विधान, प्रतीक योजना, गीत-लय एवं नाद सौन्दर्य प्रबन्ध सौष्ठव आदि पर पूर्ण रूप से प्रकाश डाला गया है ।

उपसंहार :

उपसंहार या निष्कर्ष में समग्र अध्ययन का निचोड़ एवं मूल्यांकन प्रस्तुत किया है ।भवानीप्रसाद मिश्रजी को स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी साहित्य के एक वरिष्ठ और बहु चर्चित साहित्यकार के रूप में प्रस्तुत किया गया है । जो विद्धवत मनीषियों के कर कमलों में समर्पित है । इसके माध्यम से मैंने यह चरितार्थ करने का प्रयास किया है कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध केवल शब्दों का व्यापार नहीं, किन्तु समाज के लिए नितान्त उपयोग साहित्य से प्राप्त निचोड़ है । मिश्रजी आधुनिक साहित्य में एक सशक्त कवि के रूप में समाज के विविध पहलुओं को हमारे सामने

रखते गये है । कविता की सारी विशेषताएँ उनके साहित्य में विध्यमान है । अत: यही समग्र रूप से प्रस्तुत शोधप्रबंध को अति संक्षेप में प्रस्तुत करके अपने विचारों को व्यक्त करने का विनम्र प्रयास किया है ।

कृतज्ञताज्ञापन :

सर्व प्रथम मैं परम पिता परमेश्वर के श्री चरणों में अपने शब्द रूपी श्रद्धासुमन अर्पण करता हूँ । जिनकी असीम कृपा एवं सुभाशीष से आज मेरा यह कार्य पूर्ण होने जा रहा है । इस अवसर पर मैं अपने माता–पिता के चरणों में वंदन करता हूँ । मेरे इस शोधकार्य में मेरे स्नेहीजनों ने जो मेरा साथ सहकार एवं सदैव मेरे मनोबल को आगे बढाया और प्रत्येक क्षण मेरा साथ दिया । मैं उनके प्रति मेरा स्नेह भाव प्रकट करता हूँ । अनुसंधान जैसा जटिल और इस कार्य किसी एक व्यक्ति का कार्य नहीं है, परन्तु यह अनेक व्यक्तियों के सामूहिक परिश्रम तथा प्रयत्नों से ही सहीआकार ग्रहण करता है । मुझे इस शोध कार्य के दौरान मेरे गुरूजनों का जो सहयोग, स्नेह एवं कुशल मार्गदर्शन मुझे गूजरात विधापीठ के हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं पूर्वप्राचार्य श्री डॉ. मालती दूबे एवं गुरूवर डॉ. दक्षा जानी और मेरे अन्य सभी गुरूजनों से प्राप्त हुआ है इसके लिए मैं धन्यता मेहसूस करता हूँ । उनके बिना यह कार्य सफल नहीं होता । उनके प्रति कृतज्ञयता प्रकट करना मेरा धर्म है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध परम आदरणीय सम्मानीय गुरूवर स्नेही डॉ. एन. एम. डोडिया, स्व. एम. जे. कुंडलिया महिला कॉलेज, राजकोट के कुशल एवं आत्मीय निर्देशन में तैयार किया गया है । डॉ. डोडिया साहब के मुधन्य प्राध्यापक है । अति व्यस्त जीवन में से भी समय

निकालकर उन्होंने विषय चयन से लेकर शोध प्रबंध की पूर्णता तक जिस सरलता, सहृदयता और आत्मीयता का परिचय दिया है उसके लिए मैं सदैव उनका ऋणी रहूँगा । उनके प्रति आदरभाव के साथ मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञयता ज्ञापित करता हूँ ।

मैं अपनी कॉलेज के प्राचार्य, मेरे स्नेही मित्र डॉ. ए. बी. गोहिल एवं सभी अध्यापक, वहीवटी कर्मचारियों ने मेरे इस कार्य में सार्थक समर्थन दिया है । अतः में हृदयपूर्वक उनका आभारी हूँ ।

इस शोधयात्रा में मै सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, हिन्दीभवन के अध्यक्ष डॉ. बी. के. कलासवा साहब का समय-समय पर सहयोग और मार्गदर्शन मिलता रहा, अतः इस अवसर पर मैं उनका विशेष आभारी हूँ । उनके मार्गदर्शन से मैं हंमेशा लोभान्वित एवं प्रोत्साहित होता रहा हूँ ।

इसके अलावा मैं मुझे गूजरात विधापीठ के ग्रंथालय, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के ग्रंथालय एवं प्रकाशनों एवं प्रकाशकों का भी आभार व्यक्त करता हूँ कि जीनके सहयोग के बगैर यह कार्य मुमकिन ही नहीं था ।

अंत मैं उन सभी गुरूजनो, सह कर्मचारियों, मित्रो, सहृदयी शुभ चिंतको और सभी आत्मीय परिवारजनों के प्रति भी कृतज्ञयता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष एवं परोक्षरूप से मुझे सहायता प्रदान कि है । इस शोध यात्रा के दौरान जिन्होंने मुझे सहयोग दिया है उन सभी लोगों के नाम शायद न ले पाया हूँ, उन सभी के प्रति क्षमा प्रार्थना है और उन सभी के प्रति श्रद्धानवत हूँ ।

धन्यवाद,

प्रो. ए. एम. माकडिया

संदर्भ ग्रंथ सूची

क्रम	लेखक	किताब प्रकाशन
१.	भवानीप्रसाद मिश्र	अँधेरी कविताएँ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
२.	भवानीप्रसाद मिश्र	अनाम तुम आते हो सरला प्रकाशन के-१७, नवीन शाहदरा दिल्ली - ११० ०३२
३.	भवानीप्रसाद मिश्र	ये कोहरे मेरे है राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. १बी, नेताजी, सुभाष मार्ग, नई दिल्ली - ११०००२ प्रथम संस्करण - १९९३
४.	भवानीप्रसाद मिश्र	इदं न मम सरला प्रकाशन के-१७, नवीन शाहदरा दिल्ली - ११० ००३ प्रथम संस्करण - १९७७
५.	भवानीप्रसाद मिश्र	तुस की आग हिमाचल पुस्तक भण्डार १/६९३५, महावीर चौक गाँधीनगर, दिल्ली-११० ०३१.

६.	भवानीप्रसाद मिश्र	परिवर्तन जिएँ सरला प्रकाशन के-१७, नवीन शाहदरा दिल्ली - ११० ०३२ प्रथम संस्करण - १९७६
७.	भवानीप्रसाद मिश्र	चक्ति है दु:ख अभिव्यक्ति प्रकाशन ८४७, युनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण - १९६८
८.	भवानीप्रसाद मिश्र	गीत-फरोश नव हिन्द प्रकाशन ८३१, बेगम बाजार, हैदराबाद प्रथम संस्करण - १९५६
९.	भवानीप्रसाद मिश्र	त्रिकाल संध्या राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्रथम संस्करण - १९७८
१०.	भवानीप्रसाद मिश्र	गाँधी पंचशती सरला प्रकाशन, २७९५, नेताजीनगर, नयी दिल्ली - २३, प्रथम संस्करण
११.	भवानीप्रसाद मिश्र	संम्प्रति किताबघर प्रकाशन, मेन रोड, गांधीनगर, दिल्ली - ११००३१, प्रथम संस्करण - १९७१

१२.	भवानीप्रसाद मिश्र	बुनी हुई रस्सी सरला प्रकाशन, १५८६/१, ई. नवीन शाहदरा, दिल्ली–११००३२ प्रथम संस्करण – १९७१
१३.	सिंह विजय बहादूर	भवानीप्रसाद मिश्र – परिचय एवं प्रतिनिधि कविताएँ राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली, प्रथम संस्करण – १९८६
१४.	अज्ञेय	सम्पादक – दूसरा सप्तक भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन ६. अलीपुरपार्क प्लेस, कलकता–२७ प्रथम संस्करण – १९५१
१५.	कश्यप मिथलेश	भवानीप्रसाद मिश्र के काव्यों में सामाजिक चेतना ३६११/५, नारंग कलोनी, त्रीनगर, दिल्ली – ११० ०३५
१६.	विजयकुमार	भवानीप्रसाद मिश्र : व्यक्ति और कविता क्लासिक पब्लिशिंग कम्पनी नई दिल्ली – ११० ०१५ प्रथम संस्करण – २००६

१७.	संतोषकुमार तिवारी	भवानीप्रसाद मिश्र का काव्य संसार वाणी प्रकाशन, २१–ए–दरियागंज नई दिल्ली – ११० ००२ प्रथम संस्करण – १९८३
१८.	गहलौत निशा	हिन्दी कविता में गाँधीवाद राहुल पब्लिशिंग हाऊस ३४८/६, शास्त्रीनगर, मेरठ – २५० ००५

अध्याय-१
भवानीप्रसाद मिश्रजी का व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व ।

अध्याय-१
भवानीप्रसाद मिश्रजी का व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व ।

- प्रस्तावना २-११
- जन्म, बचपन एवं शिक्षा
  - जन्म
  - बचपन
  - शिक्षा
- वैवाहिक जीवन
- मिश्रजी का कृतित्व
  - साहित्य परिचय
  - कृतित्व परिचय
    - गद्य रचनाएँ
    - पद्य रचनाएँ
- युगीन पृष्ठभूमि
  (१) राजनैतिक परिस्थितियाँ
  (२) सामाजिक परिस्थितियाँ
  (३) आर्थिक परिस्थितियाँ
  (४) धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ
  (५) साहित्यिक परिस्थितियाँ
- प्रगतिवाद
- प्रयोगवाद
- समकालीन कवि और उनमें भवानीप्रसाद मिश्रजी का स्थान

अध्याय-१
भवानीप्रसाद मिश्रजी का व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व ।

प्रस्तावना :

''शुरू कर रहा हूँ,
जितना बन सकता है मुझसे उतना छोटा एक काम
लेकर समूची मानवता की परम्परा में
अब तक के सबसे सीधे - सादे
निर्भय और स्नेही आदमी
गाँधी का नाम ।''

पं. भवानीप्रसाद मिश्र दूसरे सप्तक के कवि है और नयी कविता में उनका स्वर पर्याप्त विशिष्ट रहा है । उनका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि वे जो कविता लिखते हैं उसमें शिल्प हीन शिल्प मालुम पड़ता हैं ।

पं. भवानीप्रसाद मिश्र आधुनिक हिन्दी कविता के मूर्धन्य कवि है । मूर्धन्य इसलिए कि इनके जैसा मौलिक और प्रतिभावान कवि ढूढने पर भी नयी कविता में दिखाई नहीं देता । ये अपने ढ़ंग के विशिष्ट और अनूठे कवि है । कहा जा सकता है कि छायावादोत्तर हिन्दी कविता के विकास में वे हिमालय का वह शिखर सिद्ध होते है, जो साहित्य का सर्वोच्च बिन्दु है । उनकी अनगिनत कविताओं के बीच से युग का सत्य झांकता हुआ दिखायी देता है ।

कविता प्राकृत और सहज भावधारा है, जो युगीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में कवि के व्यक्तित्व को रूपायित करती है । वैसे देखा जाये तो उसका व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों एक ही कहे जाते हैं । अत: यह स्पष्ट है कि रचना से रचनाकार अलग नहीं होता है, इसीलिये रचना के माध्यम से ही वस्तुत: कवि के व्यक्तित्व की साफ पहचान होती है । काव्य व्यक्तित्व की विकासगामी अभिव्यंजना है, और यह पूर्णतया स्पष्ट होने की स्थिति में तब आती है, जब अत: प्रेरणा, विवशता या व्याकुलता महसूस होने लगती है । कवि हेनिसनने कहा है - ''कवि के अशान्त मन को काव्य निर्माण से ही शांति मिलती है, इसी बात को आज का स्नायुविद यह कहकर व्यक्त करता है कि कवि अपने स्नायुओं को ढीला करने के लिये ही कविता करता है ।''[१]

हमारे आलोच्य कविश्री भवानीप्रसाद मिश्रजी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व को उक्त तथ्य से भिन्न नहीं कहा जा सकता है । क्योंकि समाज में प्रयोजनशुन्य नियम और व्यवस्थाएँ जहाँ एक ओर अन्तवृँतियों का दमन तथा कुंठाग्रस्ता पैदा कर रही थीं वही दूसरी ओर अनेक अवांछनीय तत्वों को जन्म दे रही थी । परिणामत: हर तरफ क्रांति की आवाज तथा विद्रोह का स्वर मुखर होने लगा था, साहित्य की आवाज काफी-बासी पड़ती जा रही थी, ऐसे समाज में ताजी भावनाओं ने पुराने ढाँचे को तोड़-मरोड़कर अपनी अभिव्यक्ति के मार्ग बनाए, और मधुर भावनाओं की सुन्दर भावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्तियों से साहित्य-धारा प्रवाहमान हो उठी । अत: यहाँ संक्षेप में उनकी जीवनी एवं व्यक्तित्व के उन पक्षों का विशेष रूप से अनुशीलन किया

जा रहा है, जो उनके रचना संसार, भावभूमि तथा जीवनगत प्रेरणाओं एवं संस्वगरों के लिये उत्तरदायी है । श्री भवानीप्रसाद मिश्र जो अपने आत्मीयजनों के बीच 'भवानी भाई' के नाम से जाने जाते है, विन्ध्याँचल के नैसर्गिक आँचलमें एक सामान्य से मध्यवर्गीय परिवार में पैदा हुये, किन्तु सदा सामान्य दिखते हुये भी सम्पर्क में आने वाले तथा काव्य गोष्ठियों में सम्मिलित होनेवालों को अपनी असमानता का अनुभव करा देते हैं ।

जन्म, बचपन एवं शिक्षा :

जन्म –

भवानीप्रसाद मिश्रका जन्म मध्यप्रदेश के ग्राम हिगरियाँ, जिला होशंगाबाद, २१ मार्च १९१४ ई. को एक जुझौतिया ब्राह्म परिवार में हुआ था । अपने जन्म एवं वंश के सम्बन्ध में कवि का वक्तत्व है जिसे उन्होंने विजय बहादूर मिश्र को लिखे पत्र में स्पष्ट किया है । उन्होंने लिखा है – ''मेरे पास मेरी जन्मकुंडली थी, उसके सहारे समय आदि बताया जा सकता था । किन्तु वह मैंने नर्मदा में विसर्जित कर दी थी, इसलिए केवल जन्म तिथि २१ मार्च १९१४ गाँव – हिगरिर्या, तहसिल सिवनी (मालवा) जिला–होशंगाबाद (मध्यप्रदेश) से काम चलाइए ।

दूसरी बात आपने मेरे कूल और निवास के बारे में पूछी है । मेरे पितामह बुन्देलखंड के हम्मीरपुर नामक कस्बे से मध्यप्रदेश आ गए थे । उनकी जीविका मंदिर में पुजा करके चलती थी''[२] मिश्रजी के पिता पं. सीतारामजी बड़े संस्कारवान तथा शिक्षा और साहित्य प्रेमी थे ।

उन्हें हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान था । मिश्रजी की माँ श्रीमती गोमतीदेवी कर्तव्य - परायण, गृहकार्य में दक्ष और गुणशील महिला थी । माता-पिता के संस्कारों का पूरा प्रभाव मिश्रजी पर पड़ा और उनका पूरा साहित्य उन्हीं संस्कारों से ज्योतित है ।

छोटी-सी जगह पर रहनेवाला, नर्मदा नदी के किनारे, विन्ध्याँचल के आँचल में लोगों के बीच साधारण मध्य परिवार में पैदा हुये, कम पढ़े लिखे, पर काम जो भी किये, वह असाधारण, असहनीय एवं अछूते है ।

बचपन :

मिश्रजी के बचपन का अधिकांश समय सोहागपुर, होशंगाबाद, नरसिंहपुर और जबलपुर में बीता । उनके मझले दादु पं. राजाराम नि:संतान थे और उनका भवानीप्रसाद मिश्र से बड़ा स्नेह था । आरंभ में मिश्रजी पिता के साथ न रहकर उनके साथ ही संस्कृत का अभ्यास करना चाहते थे । पिताजी ने उनके इस विचार से सहमत होकर उनके पास प्राइमरी पास करने के बाद भेज भी दिया, किन्तु किसी कारणवश वे कुछ महीने बाद ही वापस आ गए और फिर नहीं गए । उनके बचपन का अधिकतर भाग ग्रामीण वातावरण में बीता । यही कारण है कि उनकी कविताओं में ग्रामिण संस्कार दिखायी देते हैं । जिसका उदाहरण है - असीम स्नेह । उन्होंने लिखा भी है कि - ''जब मैं अपने बचपन के बारे में सोचता हूँ तो ज्यादा ख्याल आस-पास के लोगों का नहीं आता, बल्कि आस-पास के पशुओं का आता है ।''[३] कविता से भवानीप्रसाद मिश्र का सम्बन्ध बाल्यकाल से ही रहा है ।

कविताएँ लिखना उन्होंने आठ वर्ष की अल्पआयु से ही शुरू कर दिया था । उस आयु ने बालक की हलवाई और मलाई के प्रति जो स्वाभाविक ललक हो सकती है वह सहज भाव से उसमें थी । बचपन की वह सहजता अब भी उनकी कविताओं में जीवित हैं ।

अपने बचपन की रूचियों के सम्बन्ध में उनका मंतव्य है कि - "मेरी बचपन की रूचियाँ कुछ खास नहीं थी उन दिनों खेलों में गुल्ली - डंडा, चकरी और भौरा यही मुख्य थे ।"[४]

शिक्षा :

उनकी काव्य-साधना इस तथ्य का प्रमाण प्रस्तुत करती है कि उनके तेवर आदर्शवादी होते हुये भी यथार्थवादी कहे जा सकते है । उन्होंने समय की घड़कनों को अच्छी तरह समझा तथा अनुभूति के स्तरों पर इसे काव्यात्मक स्वर दिये हैं । उनको हाईस्कूल की शिक्षा १९३० के आसपास होशंगाबाद और जबलपुर में रहकर ही पूरी हुई । उसके बाद तो वे अपने पिताजी के पास ही आ गये थे । सन् १९३४-३५ में इन्होंने बी.ए. की परीक्षा उतीर्ण की । इसके बाद इनका विचार हुआ कि ज्यादा पढ़ना अनावश्यक है । पारिवारिक जनों तथा निकटवर्ती दोस्तों आदि सभी की यही ईच्छा थी कि वे एम.ए. की परीक्षा भी उतीर्ण करे पर मिश्रजी को डर इस बात का था कि कही एम.ए. पास करने के बाद वे सरकारी नौकरी में न फँस जाये । सरकारी नौकरी की अप्रतिष्ठा स्वंय इनके पिताजी जो सरकारी नौकर थे, इनके मन पर स्पष्ट कर रहे थे और वे चाहते थे कि ये कोई ऐसा उपयोगी काम करें । उनका ध्यान इस दिशा में अध्ययन कार्य

और सामाजिक उत्तरदायित्त्व की ओर गया । वे चाहते थे कि स्कूल खोलकर बच्चों को ऐसी शिक्षा दे कि जिसमें सामाजिक जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हुए प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के मूल्यवान तत्त्वों का समावेश किया जाये । इसी बिच हिन्दी के अत्तिरिक्त इन्होंने उर्दू तथा संस्कृत कविताओं का अध्ययन रूचि पूर्वक किया । उन दिनों कलकत्ता से ज्वालादत शर्मा ने कुछ प्रसिद्ध कवियों की रचनाएं अच्छी भूमिकाये देकर देवनागरी लिपि में प्रकाशित करावयी । दाग, मीर, जोक, असीम तथा गालिब की चुनी हुई रचनाये इन्हें उत्तम प्रकाशन से पढ़ने को मिली । इन्हें रामचरित मानस के संस्कृत के श्लोक अत्यंत प्रिय थे । मिश्रजी के संबंध में यह कहना नितान्त कठिन है कि इन्होंने संस्कृत के अनेक कवियों को गहराई से पढ़ा पर उनकी बातचीत से ऐसा ज्ञात होता है कि उन्होंने जितना भी पढ़ा उनमें सबसे अधिक प्रिय कालीदास है । बंगला का ज्ञान इनको रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं के माध्यम से मिला । मराठी ज्ञानार्जन के लिये ज्ञानेश्वरी तथा तुकाराम के अभंगों को इन्होंने परिश्रम के साथ पढ़ा ।

वैवाहिक जीवन :

भवानीप्रसाद मिश्र का विवाह सन् १९३९ में सुश्री सरलादेवी से हुआ । सरलादेवी सरल, सुशील और गृह-कार्य में दक्ष महिला थी । उनके सरल और मृदुल व्यवहार के कारण मिश्रजी का जीवन आमरण सुखमय रहा । अपने परिवार के साथ 'घर की याद' शीर्षक कविता में कवि ने अपनी पत्नी सरलादेवी को भी याद किया है ।

यथा -

"भाई पागल, बहन पागल

और अम्मा ठीक बादल ।

और भौजी और सरला

सहज पानी सहज तरला ।"

पारिवारिक जीवन सरलतर ढंग से जीने में भवानीप्रसाद मिश्र को महारत हासिल थी । अपने परिवार का पुरा ध्यान रखने के कारण दायित्व-बोध उनके व्यक्तितत्व का वैशिष्ट्‌य है । सन्‌ १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन के समय उनका प्रथम पुत्र दो वर्ष का था और दूसरा गिरफ्तारी के दिन ही पैदा हुआ और जब वे जेल से छूटकर आये तो आने पर पूरे परिवार को चहकता हुआ पाया ।

मिश्रजी का कृतित्त्व :

साहित्य परिचय :

साहित्य जगत और जीनव की अभिव्यक्ति है । साहित्य बड़ा ही व्यापक अर्थ रखनेवाला एक महान गौरवपूर्ण शब्द है । यह विश्वजनीन भावन का द्योतक है, विश्व-बंधुत्व का संदेशवाहक है, देश और जाति के जीवन का रस है । समाज की आंतरिक दशा का दिव्य-दर्पण है, सभ्यता और संस्कृति का रक्षक हैं । इसमें सहित भाव है । भवानीप्रसाद मिश्र का सम्पूर्ण साहित्य देखने पर उपर्युक्त कथ्य की पुष्टि हो जाती है । उनका समस्त काव्यात्मक और गद्यात्मक साहित्य

जगत और जीवन से सम्बन्ध आस्था का साहित्य है, और यह आस्था कवि को नित के संघर्षो से मिला है । उनका साहित्य जीवन से प्रतिबद्धता का साहित्य है और वह प्रतिबद्धता है – 'मानव मात्र के दु:ख–दर्द के प्रति एक प्रबुद्ध एवं संवेदनशील कवि की, जो यह जानता और मानता है कि आज की भौतिकवादी दुनिया में तटस्थ होकर जीना या तो मुश्किल है या फिर ढोंग मिश्रजी के साहित्यिक व्यक्तित्व और उनकी कविता के चरित्र यही है । वे कहते हैं –

''तटस्थ होने लायक कमजोर
तुम अभी नहीं हुए ।
लहरें मिनने के दिन भी
आ सकते हैं
मगर हाथ जब तक
पतवार उठा सकते हैं
कण्ठ स्वर जबतक
है या रो गा सकते है
तब तक अनन्त ऐसी तटस्थता
शर्मनाक है ।
तटस्थता की तुम्हारे मन पर
कैसी बुरी घाक है ।
उठो सिमटकर बहते हुए जीवन में उतरों
घाट से हाट तक
हाट से घाट तक
आओ जाओ

तूफान के बीच में गाओ ।

मत बैठो इस चुपचाप तट पर ।''[५]

कवि के ये उद्धरण यह स्पष्ट करते है कि जितना वजन उनकी बात में है, उतनी ही सटीक उनकी अभिव्यक्ति है । कवि को पढ़ते समय एक बात यह भी स्पष्ट होती है कि वे अनायास कविता के कवि हैं । उनकी यह कविता फूलों के समान विहंसती ही नहीं बल्कि सलिला की भाँति हृदय में प्रवाहित भी होती है । साहित्य जगत में बोल-चाल की जिस शक्ति को प्रेमचंद ने गद्य में पहचाना था - बोल-चाल की भाषा की उसी शक्ति को मिश्रजी ने काव्य-साहित्य में पहचाना है और बोल-चाल की भाषा को वैसे ही खुलेपन के साथ चित्रित किया है । सामान्य भाषा को माध्यम बनाकर वे साहित्य की जिस ऊचाई को छू सके है वास्तव में वह असामान्य बात है और ऐसा वे इसलिए कर सकते है कि चार दीवारों में बंद 'एक-रस' जीवन के स्थान पर उन्होंने सुख-दु:ख के जीवन को जिया है । एक-रस जीवन की कुठाओं और घुटन से मुक्त उनकी वाणी इसीलिए पाठकों के मर्म को छू लेती है और वे पाठकों के हृदय में बैठ जाते है । उनकी कविता की सहज बानगी का एक नमूना यहां द्रष्टव्य है -

''लिखा देखकर कविता

जब पढ़ता हूँ उसे

दूसरे तीसरे चौथे दिन

तो वह अपनी नहीं लगती मुझे,

लगता है अब कोई कविता

मेरी नहीं होती

कही से आती है वह
कम से कम अंशत:
देकर अनजाने में उसे
अपना समूचापन
कुछ कह देता हूं
और मेरा वह समूचापन
छूकर उसे कितना बदल जाता है ।
याद नहीं आता फिर
इतना भी
कि यह हूं इस जगह में
और इस जगह मेरी कविता ।''[६]

आधुनिक हिन्दी साहित्य को भवानीप्रसाद मिश्र ने आकर्षक और लोकप्रिय तो बनाया ही है, उसे लोक संवेदना से जोडकर गतिशील एवं विकासशील रूप देकर निखारा भी है । उनके साहित्य की अपनी विशिष्ट पहचान है, जो पढ़ने और सुनने से ही पहचानी और जानी जा सकती है । इसीलिए उन्हें लोक-जीवन का कवि और उनके साहित्य को प्रकृति और मानव के सहज जीवन का लोक-साहित्य कहा गया है । अपने काव्य तथा साहित्य में उन्होंने लोक-मानस और लोक-जीवन के बिखरे उपादानों को व्याख्यायित किया है । उनकी कविता लोकहित को अपना निष्कर्ष मानती है । उन्होंने स्वीकार किया है कि कलाकार को तो करनी है रचना लोकोपयोगी ही । कवि को कर्ममय जीवन पर अगाध विश्वास है । वह जानता है कि सैकडों व्याधात में भी मर्म की बात पहचानी जा सकती है । आज की विषम

ज्वालाओं और बेबस व्यवस्थाओं के बीच सही दिशा खोजी जा सकती है । यदि कवि इन जलन की लपटों में, राख होते हुए सती के सिंदूर को देखकर भी चुप रहा तो उसकी सनातन सत्यवाणी अपमानित होगी और विश्वव्यापी दहन-पर्व व्यर्थ होगा । एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से अलगाव की स्थिति में नहीं रह सकता । कवि की यह लोक चेतना मूलतः उनकी विश्व-चेतना को इंगित करती है -

''हर तरह के लोग इसमें तपें
तू बैठा रहेगा
हाय, इतना सुख
जलन के बीच में कैसे सहेगा ?
क्या अपाहिज हो न जाएगी,
सनातन सत्य - वाणी
क्या नये युग पर न जम जाएगी
तेरी नातावानी ।''[७]

कवि की कृतियों में कवि-कर्म और धर्म के प्रति पूरी निष्ठा है । वे जीवन के अंतिम क्षण तक साहित्य की साधना में निरत रहना चाहते है । कवि यह भली-भाँति जानता है कि समय तो जिन्दगी का पर्याय है और वह काटने की चीज नहीं वरन् जीने की चीज है । इसलिए उनका हर क्षण जिंदगी की तस्वीर खींचने में व्यतीत होता है । 'बुनी हुई रस्सी' की भूमिका में वे लिखते है कि - ''असल में मैं इन दिनों इसलिए लिखता हूँ कि मुझे कुछ चीजे ठीक-ठीक समझ लेनी है और मैं नहीं जानता मेरे लिए लिखते रहने के सिवा समझने का और क्या साधन है ।''[८]

इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि कवि का साहित्य साधारण जन का साहित्य है, जो सहज होते हुए भी सूक्ष्म और चिंतन से युक्त है । यही कारण है कि उनके काव्य में एक साधारण व्यक्ति के खट्‌टे-मीठ़े अनुभवों की अभिव्यक्ति है, जो मानवीय अनुभूतियों से सम्बन्ध है । एक साधारण व्यक्ति जब प्राण-पण से प्रतिक्षण जीता है और कवि का अंतश जब उससे संप्रेषित होता हैं तब मानों उसे ऐसी शक्ति मिलती है कि उसका सारा तत्त्व काव्य के रूप में बह उठा है । कवि लोक-कवि होने के नाते लोकात्मा को पहचानता है, और शायद इसीलिए अश्लीलता से बचकर अपनी अभिव्यक्ति देना चाहता है । न तो वह फ्रायड का शिष्य होना चाहता है और न अनास्था का वैतालिक ।वह अपनी आदर्श अभिव्यक्ति देना चाहता है । कवि का नैतिक दायत्व उसे अपने शील के प्रति सजग बनाये हुए है ।

यथा -

''अभिव्यक्त करना अपने को
एक बात है
उघाड़ा होना दूसरी बात
दूसरी बात को
बचाना चाहता रहा हूं
अंतर-बाहर सब कुछ
मगर संभालकर शील का''[१]

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि भवानी प्रसाद मिश्र का साहित्य-संसार 'विशाल -कैनवास' पर आधृत है । कवि का रचा-बसा

अनुभव उसका अपना है । इस विशाल कैनवास को छोटे से दायरे में बाँधना संभव नहीं है । आधुनिक हिन्दी कविता के जितने विशिष्ट संदर्भ है कवि ने उसके मर्म को छूने का प्रयास किया है ।

कृतित्व परिचय :

हमारे आलोच्य कवि में गहरी प्रभा - विष्णुता और असाधारण रचनात्मक क्षमता है । उन्होंने बदलते हुये परिवेश के अनुरूप मूल्यों को समझा है । उनकी कल्पना हतासिनी और उदासिनी नहीं है, बल्कि उनमें नवीन क्रांति के स्वर है । उनका कृतित्व कुछ इस प्रकार से है ।

गद्य रचनाएँ :

भवानीप्रसाद मिश्रने साहित्य की विविध विद्याओं में सहजता के साथ सृर्जन-यात्रा की है । काव्य और गीत के साथ-साथ निबंध और संस्करण आदि लिखकर उन्होंने यह सिद्ध किया कि वे सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी है ।

(१) जिन्होंने मुझे रचा - सन् १९८१
(२) कुछ नीति और कुछ राजनीति - सन् १९८३

पद्य रचनाएँ :

भवानीप्रसाद मिश्र का काव्य-संसार हिन्दी साहित्येतिहास में बृहद भी है और महत् भी । अब तक उनके अठ़ारह काव्य संग्रह, एक खंड काव्य, दो गद्य संकलन और बच्चों तथा प्रौढ़ों के लिए कई रचनाएँ लिखी है ।

	काव्य-संग्रह	प्रकाशन वर्ष
(१)	गीत-फरोश	सन् - १९४३
(२)	चकित है दु:ख	सन् - १९६८
(३)	अंधेरी कविताएँ	सन् - १९६८
(४)	गाँधी पंचशती	सन् - १९६९
(५)	बुनी हुई रस्सी	सन् - १९७१
(६)	खुश्बु के शिलालेख	सन् - १९७३
(७)	व्यक्तिगत	सन् - १९७४
(८)	परिवर्तन जिये	सन् - १९७६
(९)	अनाम तुम आते हो	सन् - १९७६
(१०)	इदं न मम	सन् - १९७७
(११)	त्रिकाल संध्या	सन् - १९७८
(१२)	कालजयी (खंडकाव्य)	सन् - १९७८
(१३)	शरीर कविता और फसले	सन् - १९८०
(१४)	मान सरोवर दिन	सन् - १९८१
(१५)	जल रही है सड़को पर बतिर्या	सन् - १९८१
(१६)	सम्प्रति	सन् - १९८२

इस प्रकार मिश्रजी का साहित्य फलक बहुत विशाल है जो इन ग्रथों में हमें मेहसुस होता है ।

युगीन पृष्ठभूमि :

युगीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में साहित्य की चिंतन धारा और उसके स्वरूप को भलीभाँति समझा जा सकता है । प्रचलित मान्यताओं एवं घटनाओं का पुर्नमूल्यांकन भी प्रत्येक युग की विशेषताओं एवं धटनाओं की अपनी अलग विशेषता होती है स्वतंत्रता प्राप्ति की स्वर्णिम बेला के प्रारम्भ में मिश्रजी की साहित्यिक चेतना को उन्मेष का काल कहा जा सकता है । स्पष्टत: उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा क्रमश: स्वतंत्रता के पश्चात ही मुख्य रूप से परिलक्षित होती है । अत: उनके साहित्यिक जीवन के विकसित रूपों के अध्ययन से पूर्व प्रवर्तमान सम्बन्धित कालखण्ड की विभिन्न परिस्थितियों पर भी दृष्टिक्षेप करना आवश्यक हो जाता है । किसी भी देश या काल की विभिन्न परिस्थितियों से निर्मित परिवेश से प्रचुर प्रेरणा एवं दृष्टि प्राप्त कर साहित्यकार उनसे स्वयं को प्रच्छन्न नहीं रख सकता है । कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों किसी न किसी रूप में समकालीन वातावरण में घनिष्ट रूप से सम्बन्धित रहते है ।

इन तथ्यों के प्रकाश में हम तत्कालीन परिस्थितियों एवं परिवेश की छानबीन साहित्य के माध्यम से भी कर सकते है इसके साथ देश एवं साहित्यकार की मानसिक स्थिति का ज्ञान साहित्य के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है । इसका मुख्य कारण यह है कि युगीन पृष्ठभूमि किसी न किसी रूप में साहित्यिक अभिव्यक्ति में अनेक विश्व रूपाकार ग्रहण करती रहती है, अत: युगीन पृष्ठभूमि के साथ-साथ साहित्यिक पृष्ठभूमि परिवर्तनशील होने के कारण उसकी उत्प्रेरक शक्तियों के मूल स्त्रोत का अध्ययन करना भी हमारा आलोच्य

विषय बन जाता है ऐसा प्राय: कहा जाता है की युग साहित्य विशेष का सृष्टा होता है और साहित्य विशेष युग का दृष्टा एतदर्थ दोनों ही एक दूसरे के एक ही सिक्के के दो पहलू है ।

आज का जीवन नये जीवन की संक्रांति से गुजर रहा है, आज का साहित्यकार नये मूल्यों के प्रति जितना आस्थावान प्रतीत हो रहा है उतना ही पुराने मूल्यों को अनावश्यक भी मानता है, क्योंकि साहित्य में व्यक्ति और समाज, राष्ट्र और विश्व की हित साधना का भाव अन्तनिहित होता है । हमें यह देखना होगा कि स्वतंत्रता पूर्व तथा तत्पश्चात भी सामयिक राजनीति सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि को विचारपूर्वक समझना कठिन ही नहीं, नितान्त असम्भव प्रतीत होता है । आज के साहित्य में जनजीवन की पुकार बहुत तीव्र होती जा रही है क्योंकि युग की अनेक शक्तियों में कौन सत है कौन असत है, किनके द्वारा मानव का हित हो सकता है और किसके द्वारा अहित, यह सब समकालीन साहित्य में अभिव्यक्त होता है । युगीन पृष्ठभूमि की अभिव्यक्ति प्रत्येक देश के साहित्य में आरम्भ से होती आ रही है, यही कारण है कि साहित्य अपने देश और राष्ट्र की चिन्तनधारा का प्रमाणिक वृत्त प्रस्तुत करता है । हमारी युगीन परिस्थितियों का वाहक वर्तमान का प्रतिनिधि और भविष्य निर्माता होता है । अत: अतीत की उपलब्धियों का वर्तमान के साथ और भविष्य की निर्णायक प्रेरणाओं के साथ उचित तारतम्य होना चाहिये ।

साहित्यकार जब भी किसी काल विशेष की परिस्थितियों से गुजरता है, तब वह उससे प्रभावित हुये बिना रह नहीं सकता । यह प्रभाव ही उसकी प्रतिभा से संचालित होकर रचना मानस में जन्म

लेता है तब उससे साहित्य की सृष्टि होती है । अतः यह आवश्यक है कि किसी भी प्रकार के साहित्यकार का अध्ययन करने से पूर्व उसके समय की विभिन्न गतिविधियों से सम्यक् दृष्टि से देखना परखना आवश्यक है । आज का साहित्यकार कथानक तो प्राचीन धरातल से सम्पादित करता है, किन्तु उसके माध्यम से आधुनिक युगबोध की प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में अभिव्यक्ति करता हुआ परिलक्षित होता है । जीवन के नये मूल्यों के साथ साहित्यिक मूल्यों व मापदण्डों की दिशा में अभिनव प्रयोगों की जो नई-नई राहे प्रशस्त होती चली जा रही है उनसे उक्त तथ्य की पुष्टि की जा सकती है । आज का साहित्य विश्व साहित्य की निकटता का अधिकाधिक अनुभव कर रहा है । स्वतंत्रता के पश्चात् विभिन्न नवीन साहित्यिक रूपों एवं प्रवृतियों को तथाकथित तथ्यों के आलोक में देखा जा सकता हैं ।

हमारे आलोच्चय कवि श्री भवानीप्रसाद मिश्र हर परिस्थितियों और युग पृष्ठभूमि के उपर पड़नेवाले प्रभाव को दृष्टिकोण में रखकर साहित्य को विभिन्न कालों तथा विभिन्न परिस्थितियों में प्रभावित किया है । उनके साहित्य में कालक्रम के बदलते हुए युग की आकांक्षाएँ और आवश्यकताएं व्यंजित हुई है । मनुष्य सदैव पुरातन रीतिरिवाजो से अनुशासित नहीं रहता बल्कि परिस्थितियों के अनुसार उन्हें छोडता बदलता है । जब परम्परागत आदर्शों और रीतियों में युग की आकांक्षाओं को ढोने की शक्ति का ह्रास होने लगता है तब वे परिस्थितिर्या जीवन की गति को अवरूद्ध करने लगती है और उसके प्रति विद्रोह भी भरने लगती है । मिश्रजी का कथन है कि युगानुरूप कुछ नये संस्कार बनते है जो जीवन धारण करने के लिए अत्यन्तावश्यक

है । वैसे यदि देखा जाये तो किसी भी कवि या ग्रन्थकार पर मुख्यत: तीन बातों का प्रभाव पड़ता है, जो उसमें कृतिजन्म रूप को स्थिर करने में सहायक सिद्ध होती है । ये तीन बाते (१) जाति (२) स्थितियाँ (३) काल से सम्बन्धित है ।

जाति से हमारा तात्पर्य किसी भी जन समुदाय के स्वभाव से है दूसरा स्थिति से तात्पर्य उसकी सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा प्राकृतिक अवस्था से है वह जब उस समुदाय पर अपना प्रभाव डालती है । और तीसरा काल, उससे तात्पर्य उस समय के जातीय विकास की अवस्था से है।

आधुनिक जीवन की विभिन्न पृष्ठभूमि का परिचयात्मक अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है , अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से श्री भवानीप्रसाद मिश्र कालीन परिस्थितियों का निम्नांकित रूप में विभाजित किया जा सकता है । यथा –

(१) राजनैतिक परिस्थितियाँ
(२) सामाजिक परिस्थितियाँ
(३) आर्थिक परिस्थितियाँ
(४) धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ
(५) साहित्यिक परिस्थितियाँ

राजनैतिक परिस्थिति :

१९वी शताब्दी के उतरार्ध से ही भारत वर्ष में राजनीतिक, सांस्कृतिक नव जागरण की लहरे उद्धेलित हो उठी थी । इस दिशा में

ब्रिटिश साम्राज्य विरोधी भूमिका तैयार करने में राजा राममोहनराय (१७७२-१८३३), स्वामि विवेकानंद (१८६६-१९०९) एवं महर्षि दयानंद सरस्वती ने अपने-अपने क्रांतिकारी विचारों एवं आंदोलनों के द्वारा तत्कालीन नवोदित राष्ट्रीय चेतना को युगान्तकारी दिशाएँ प्रदान की । उससे सम्प्रेरित होकर हमारा भारतवर्ष अपनी मुक्ति एवं प्रगति के पंथ पर आगे बढ़ सका । पं. बालगंगाधर तिलक की मृत्यु के पश्चात् उक्त चेतना के विकास के क्षेत्र में महात्मा गाँधीजी का नेतृत्व राष्ट्रीय स्तर पर एक नये युग का उद्घोषक है । इससे पूर्व ब्रिटिश शासको के अमानुषिक कृत्यों के बल पर उल्हड़ अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति दलित - मलित भारत वर्ष के रक्तमांस विहीन कंकाल पर चीले निर्दयता पूर्वक चंचुपात कर रही थी । विदेशी गोरो का प्रभुत्व होने के कारण भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थितियाँ स्वतंत्र रूप से अपने विकास के पंथ पर आगे पहुँचने में असमर्थ थी । इस प्रकार ''नवीन मानव स्वतंत्रता के उद्घोषक प्रजातंत्रवाद (Democracy) का बिगुल चारों और बज उठा, और जीर्ण-शीर्ण साम्राज्यवाद के पाँव लड़-खड़ा उठे''[१०] विदेशी दासता से मुक्त राष्ट्र जहाँ एक ओर भारतीय जन जीवन में एक नया मोड़ लेकर अवतरित हुआ, वही दूसरी और विभाजन की विभिषिका ने स्वातंत्रोल्लास की भावना को अपनी लपेटों में लिया ।

उपर निर्दिष्ट स्वतंत्रता की चेतना तथा तद्गत अभियानों की भूमिका में हमारा देश स्वतंत्र हुआ । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब प्रतिष्ठित राष्ट्रीय शासन भारतीय जन समाज के सर्वांगीण विकास के लक्ष्य को लेकर चला और इस तरह राजनीतिक चेतना नयी दिशा की

और मूड़ी । रियासतों का विलीनीकरण, जमींदारी प्रथा की समाप्ति, सर्वहारा वर्ग की प्रतिष्ठा द्वारा समाजवादी समाज व्यवस्था, सहकारी खेती, नवीन औद्योगिक प्रगति, पंचवर्षीय योजनाएँ तथा सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध प्रतिक्रियावादी चेतना गतिशील हो गयी । स्वतंत्रता की नींव को सुदृढ़ बनाने के लिए भारत के संवेधानिक रूप से 'धर्म निरपेक्ष राष्ट्र' के रूप में स्वीकृति मिली जिससे विभिन्न धर्म, जाति, समुदाय एवं संस्कृति के लोगों का सम्यक् व स्वतंत्र विकास हो सके । इस धर्म निरपेक्ष्च राष्ट्र की विचारधारा के मुख्य तथा तीन प्रेरक सुत्र है – आज़ादी की रक्षा, विश्व शांति, एवं प्रगति ।

राजनीतिक संगठन की शक्तियाँ निजी हित, स्वार्थो, तज्जन्य संघर्षो से प्रेरित होकर दलित नीतियों एवं राष्ट्रीय सिद्धांतों तथा लक्ष्यों की उपेक्षा के द्वारा एकता और सफलता के मार्ग में स्वंय ही बाधक सिद्ध हो रही थी । जहाँ एक ओर राष्ट्रीय शक्ति विखण्डित होकर बिखर ने लग गयी, वहीं दूसरी और विस्तारवादी नीति को लेकर सन् १९६२ से ६५ ई. तक एवं १९६२ में होनेवाले क्रमशः चीन और पाकिस्तान के आक्रमणों ने भी राष्ट्रीय संकट को उत्पन्न कर दिया । परिणाम स्वरूप मानवतावादी आस्था एवं आदर्शो की भावना टुक–टुक होकर रह गयी , युद्धोपरान्त, बेरोजगारी, भुखमरी, मँहगाई, चोरबाजारी, कालाबाजारी तथा भ्रष्टाचार, सम्बन्धी अनेक विसंगतियाँ उभरती गयी, जिससे रूपये का अवमूल्यन, बांग्लादेश के निर्वासितों की समस्या, जातिवाद, प्रान्तवाद, भाषावाद एवं साम्प्रदायिक्तावाद आदि ज्वलन्त समस्याएँ थी । आज भी हमारा जनमानस आपत्तियों, आकांक्षाओं तथा दु:चिंताओं से पूर्णतया मुक्त नहीं हो पा रहा है ।

इन सभी परिस्थितियों तथा उनके पक्षों से प्रभावित आज का रचनाकार विघटन परक, राजनीतिक चेतना और शक्ति के विभिन्न भावबोधो से गुजरता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है, हमारे आलोच्य विमूर्तिमय कवि श्री भवानीप्रसाद मिश्रजी की रचनाओं मे राजनीतिक चेतना के उपर्युक्त विविध पक्ष उनकी निजी अन्तर्दृष्टिसे रूपाकार करते हुये प्रस्तुत हुए है, जिसका प्रसंगानुसार आगे विचार किया गया है । अतः युगीन सन्दर्भो को प्रस्तुत करनेवाली सामाजिक परिस्थितियों पर प्रथम विचार कर लेना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है ।

सामाजिक परिस्थिति :

स्वतंत्रता पूर्वभारतीय जनजीवन की गति पराधीनता के कारण अनेक चतुर्दिक विकास के उन्मुक्त पथ का अनुगमन करने में सर्वथा असमर्थ रही थी । तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृर्व्य व्यवस्था पर दृष्टिपात करने से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि भारत की सामाजिक दशा दीनवस्था की चरमसीमा तक पहुँच गयी थी । हिन्दु जाती का प्रत्येक अंग विकृत हो चुका था । समय की प्रगति के अनुसार समाज के अनावश्यक सुधार एवं परिवर्तन के स्थान पर हिन्दु परम्परा लींक को पीट रहे थे । नवजागरण द्वारा २०वीं सदी के आरम्भ में रूढिवादिता के विरूध्ध नवचेतना के विकास के प्रयास अवश्य हुये, किन्तु उसका प्रभाव अत्यन्त ही सीमित रहा । आगे चलकर राष्ट्रीय आन्दोलनों में यह प्रयास उपेक्षित सा हो गया । क्योंकि ऐसी गतिविधियों का संचालन करनेवाले लोग राष्ट्रीय आन्दोलनों में कुद पड़े । अतः समाज सुधार में जो गति १९वीं सदी के अन्तिम भाग में आयी थी वह भी अवरूद्ध

सी हो गयी । काव्य का सृष्टा एक सामाजिक व्यक्ति है जो जन्म से लेकर समाज से बहुत कुछ ग्रहण करता है फिर बड़ा होकर उसका देय उसे लौटाने की चेष्टा करता है । तात्पर्य यह है कि कोई भी कवि समाज के प्रभावों से अछूता नहीं रह पाता है ।

आज के वैज्ञानिक युग में पदार्थ परक जीवन दृष्टि के निष्कर्ष पर पुराने मूल्यों को कसकर देखने पर उनकी आवश्यकता एवं प्रतिकुलता स्वत: सिद्ध हो जाती है । स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज में विघटन के ह्रास की स्थितियाँ उसी मूल्यवान परिवर्तनों को लेकर गतीशील होती जा रही थी । ''परम्परागत समाज व्यवस्था के मूल्यों को आत्मसात् करने लगा है । अब मूल्य परिग्रहण की प्रक्रिया में व्यक्ति के संघर्ष एक आवश्यकता बन गये हैं, वस्तुत: यह समाज से नहीं, वरन्, मूल्यों का परम्परागत मूल्यों से सम्बन्ध है, अत: युगानुरूप मूल्य व्यक्ति का पूर्ण समर्थन पाकर स्थान बनाते जा रहे है ।''[११]

इससे स्पष्ट हैं कि वस्तुत: मूल्यगत परिवर्तन ही सामाजिक विघटन का मूल कारण है, जिसे वैयक्तिक, पारिवारिक, सामुदायिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देखा जा सकता है । व्यक्तिगत विघटन के अन्तर्गत आत्महत्या, मद्यपान, वेश्यावृति, पारिवारिक तनाव, विवाह विच्छेद एवं वैवाहिक समस्याएँ तथा सामाजिक विघटन की प्रक्रिया में नैतिकता का पतन, भ्रष्टाचार, अपराध, बेकारी तथा व्यावसायिक विभिन्नताएँ आदि की समस्याएँ पनपी है । आन्तराष्ट्रीय विघटन की सम्भावनाओं ने जन मानस क्रांति एवं युद्धीय आंशकाओं को जन्म दिया है ।

तथाकथित परम्परा विरोधी एवं असंगत मानवीय मूल्यों की टकराहट के फलस्वरूप साम्प्रतिक, सामाजिक, मानसिकता, अन्तद्वन्द्वों, अन्तविरोधों तथा अन्तसंघर्ष की भावनाओं व विकृतियों से ग्रस्त होती चली जा रही है । समाज में दिन-प्रतिदिन होनेवाले अपराधों, दुर्व्यसनो, प्रतिस्पर्धाओ, भ्रष्टाचारों व संघर्षो में अभिवृद्धि, निवास व वस्त्रों का अभाव तथा व्यसनों की अधिकता वस्तुओं का उत्पादन व वितरण के साथ ही बढ़ती हुई जनसंख्या आदि जैसी सम्भावनाओं व विसंगतियों के कारण मानसिक इंद्रों व संघर्षो की स्थिति उभरती गयी । वैचारिकता के इन नये आयामों एवं सामाजिक परिवर्तनों ने कुण्ठा, घुटन, टुटन, संत्रास, हिंसा, संकट-बोध, आत्मविश्वास, हीनता आदि का भी बीजारोपण किया ।

अंग्रेजों का शोषण, भयंकरता और औद्योगिक विकास की आधिपत्य प्रधान रीति ने राष्ट्रीयता और राजनीतिक जागृति की लहर दौड़ा दी । भारतीय पूंजीवाद के इस विकास ने ही राष्ट्रीय जागरण की राजनीतिक पृष्ठभूमि कायम की ।

स्वतंत्रता के पश्चात यांत्रिक-भौतिक सभ्यता का प्रभाव पहले की तुलना में अधिक मात्रा में भारतीय समाज पर पड़ा है, जिसके परिणाम स्वरूप प्राचीन आदर्शो, सिद्धांतो एवं मानवीय मूल्यों में टूटन, स्खलन तथा ह्रास की स्थितियों व सम्भावनाएँ भी अपने अनुकूल एक नये परिवेश का निर्माण करती रही है । औद्योगिकरण के कारण नष्ट प्राय होनेवाले कुटिर उद्योगो व कृषि उद्योगों के अभाव में एक ही परिवार के विभिन्न सदस्यों को नगर में जाकर भिन्न-भिन्न व्यवसायों में संलग्न होना पड़ा । पारिवारिक एकता विभिन्नता में विभाजित होने लगी ।

स्वतंत्रता के पश्चात संवैधानिक रूप से स्त्री को पुरूष की भ्रॉंति समानाधिकार की प्राप्ति हुयी है, अब वह घर की चार दिवारों में कैद न होकर स्वतंत्र रूप से जीवन के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व शैक्षणिक आदि स्तरों से जुड़ी हुई दृष्टिगत होती है । इस प्रकार युग-युग से पराजित नारी आज अपराजित या स्वछंद हो गयी है । परम्परा से लांछित व उपेक्षित नारी अपने भोग्या व कामिनी के क्षेत्र से निकलकर माता, सहचरी, प्रेयसी, सेविका, आराधिका एवं चंण्डिका जैसे उज्जवल व सम्मानित रूपों में प्रकट होती गई ।

आर्थिक परिस्थितिर्या :

स्वतंत्रता के अनन्तर औद्योगीकरण के कारण अत्यधिक विकास का प्रभाव भारतीय जनजीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिलक्षित हुआ है । मशीनीकरण की प्रक्रिया ने परम्परागत कृषि एवं उद्योगों के स्थान पर यंत्रों की प्रतिष्ठा की । पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से औद्योगिकरणने अपनी उत्पादन शक्तियों एवं उत्पादित वस्तुओं में अभिवृद्धि की । इस प्रकार यांत्रिक प्रगति के द्वारा भौतिक सुख सुविधाओं के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ । शैक्षणिक सुविधाओं में वृद्धि होने के कारण सभी स्तर के लोगों को विभिन्न व्यवसायगत आर्थिक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए एक समान स्तर की प्राप्ति हुई ।

उक्त औद्योगिक उन्नति के फलस्वरूप आज का भारत अपनी पूर्वआस्था से कुछ आगे बढ़कर आर्थिक विकास के नये-नये मोड़ों पर खड़ा हो जाने की सामर्थ्य के निकट पहुँचा । सामाजिक, आर्थिक विषमता को दूर करने के लिये पूँजीवाद और सामन्तवादी व्यवस्था

के विरूद्ध एवं कालमार्क्सवादी अर्थनीतियों का भी प्रभाव स्वातन्त्रोत्तर भारत के सामाजिक-आर्थिक चिन्तन पर पड़ा । स्वतंत्रता के बाद एक तरफ चीनी तथा पाकिस्तानी आक्रमणों एवं तज्जन्य समस्याओं ने जहाँ राष्ट्र के आर्थिक कोष एवं आर्थिक व्यवस्थाओं को क्षति पहुँचाई, वहीं दूसरी तरफ राजनीतिक भ्रष्टाचारों तथा भूकंप, बाढ़, सुखा आदि जैसे प्राकृतिक प्रकोपों के कारण भारत आर्थिक विकास के अपेक्षित लक्ष्य को न प्राप्त कर सका ।

स्वतंत्रता के पश्चात् बेकारी, महंगाई, जमाखोरी, काला बाजारी व वस्तुओं के अभाव की स्थितियों का बाजार अधिकाधिक गरम होता गया । एक और दिन-प्रतिदिन शिक्षित बेकारों की संख्या में अभिवृद्धि होने लगी, तो दूसरी और औद्योगिक क्षेत्र में मंदी के वातावरण के कारण भी मिल-कारखानों आदि क्षेत्रों में श्रमिक वर्ग आजीविका विहीन होता गया । राष्ट्र की अधिकांश वितीय उप्लब्धियों पर सता और धन सम्पन्न व्यक्तियों का ही प्रभुत्व परिलक्षित होता है । फलतः अमीर और गरीब के बीच की खाई और भी अधिक चौड़ी होती जा रही है । मिल कारखानों में मिल मालिकों के साथ श्रमिको मजदूरों और पूंजीपतियों, बड़े किसानों और उनके मजदूरों के झगडें और आंदोलन अपनी इसी विकट स्थिति के सूचक है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि आज कि अनेक विविध समस्याएँ प्रायः अर्थ से जुड़ी हुई है । आज हमारे भारतीय समाज में अर्थ की विक्रय शक्ति को संतुलित रखने के लिए उसका सामाजिक अवमूल्यन (Social Department) किया गया अर्थ के महत्त्व को सर्वोपरिता नहीं दी गयी थी, किन्तु आज की संघर्ष एवं इन्द्र प्रधान

सामाजिक स्थिति को दृष्टिपात करते हुये यह ज्ञात हो गया है, जिनकी मूल्यता के आधार पर ही सामाजिक व्यवस्था को उच्च, मध्य एवं निम्न वर्ग के रूप में देखा जाने लगा है, इसलिये यह बात स्पष्ट है कि आज का व्यक्ति प्रधानतया आर्थिक रूप से प्रबल होता जा रहा है । आर्थिक दृष्टिकोण की प्रधानता के कारण चारों और से सामाजिक मूल्य भी बदलते जा रहे है, यही कारण है कि आधुनिक भारतीय समाज में अर्थ प्राप्ति के लिये मानवता विरोधी अनेकानेक कुप्रवृतियाँ, विषलताएँ पनपती – फूलती और फलती जा रही है ।

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ :

जैसा कि पूर्ववर्ती विवेचन से भी निर्दिष्ट किया जा चुका है कि भारतीय नवोत्थान का अंकुर अतीत की गहराइयों के पुनरावलोकन प्रवृति के रूप में किया गया । जिसमें संक्रान्तिकालीन पुनर्जागरण बेला में बहुत सारी मान्यताएँ लड़खड़ा कर धराशायी हुयी और इसमें निहित पुरातन युग सत्य आँखों से ओझल रहकर भी इस संक्रान्ति की बेला में अन्वेषित होकर नवजागरण स्वरूप में अभिव्यक्त हुआ । बीसवी शताब्दी सामान्य जीवन में असन्तोष और, बुक्षधा का युग माना गया है, उस असन्तोष और बुक्षधा के पीछे काव्य सिद्धांतों की एक बृहत सामाजिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक पृष्ठभूमि रही है । प्रथम तथा द्वितीय विक्त युद्ध के कारण मानवमूल्यों का विघटन तीव्रता से हुआ, जिसके प्रभाव से प्राचीन मान्यताएँ खण्डित होने लगी, मानव मूल्यों के तीव्र विघटन से अनास्था, कृष्ठा, असन्तोष, वेदना के स्वर काव्य में उभरते रहे । प्रथम विश्वयुद्ध की विभिषिका, इन स्वरों को आहुति दी, परिणामतः कवियों की जीवन निष्ठा, सौंदर्य

बोध और अनुभूति पर कुठाराधात हुआ और उनका स्थान निराशा, वेदना, अवसाद, अनिश्चितता, आकुलता, मानवद्रोही व्यक्तिवाद ने ले लिया । इस सांस्कृतिक विधटन से आच्छादितकाल से अधिकांश काव्य परिचित हुए । दृढ़ता भारतीय संस्कृति की अपनी विशिष्टता रही है । कितने ही विदेशी आक्रमण यहाँ हूए लेकिन अभेददूर्ग की तरह भारतीय संस्कृति अटल रही । जब हमारे देश में पूर्णरूपेण औद्योगिकरण नहीं हुआ था तब भी दोनों महायुद्धों का हमारी संस्कृति पर कोई आधात नहीं पडा था, केवल आर्थिक व्यवस्था में किंचित उलट फेर हुए । भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में हिंसा का भी गौणस्थान प्राप्त हुए । फलस्वरूप भारतमें सांस्कृतिक विघटन का कुत्रिम वातावरण तैयार किया गया । धर्मवीर भारतीने 'अंधायुग' में विधटनशील तत्वों का विशद वर्णन किया है ।

वर्तमान युग के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक संघर्ष तथा वैयक्तिक स्वतंत्रता की माँगे शुन्य ह्रदयों की चीखों और पुकारों ने नये कवि को अवसाद के कुहासों में लपेट दिया । विफलता में बँधा आज का कवि छटपटा रहा है । सिर्फ निराशाजन्य अनुभूतियाँ ही उसके पास व्यक्त करने को शेष रही है । आज हिन्दी काव्य क्षेत्र में हिन्दी कवियों को न जाने क्या दु:ख मिला है कि वह जीवित रहते हुए भी अपने को मृतक मानते है, इसलिये अधिकांश ''कवियों के काव्य में निराशा, कसक, वेदना, अन्तइंद्र, अवसाद, उदासी, दु:ख, विफलता, बिखराव से आबद्ध अपने मानस को नदी-तल की रेत के समान तुच्छ मानता है । जो किसी भी क्षण बह जाने की अवस्था में है ।''[१२] भारतीय संस्कृति मूलत: धर्मप्रधान होने से उसके धर्म का अभेद तथा अटूट सम्बन्ध माना गया है ।

आज पश्चिम की भोगवादी संस्कृति पूर्व को आज्ञा की दृष्टि से निहारने लगी है । व्यक्ति अपने स्थायी अकेलेपन की भटकन से निराश होकर समूहजीवन के प्रयोगों में रूचि लेने लगा है । परिग्रह की भावना को त्यागकर, अपरिग्रह के द्वारा जीवन की वास्तविकता शान्ति और आनन्द प्राप्ति के लिये दिखाई देता है । अतः इससे स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति अपने मूलस्वरूप एवं अस्तित्व की रक्षा के लिए प्रयत्नशील हो उठी है । उसके उज्जवल भविष्य की आशा की जा सकती है । आज चारों और चोर बाजारी, नफाखोरी, झुँठ, बेइमानी, हिंसा आदि वृतियों एवं प्रवृत्तियों के अत्याधिक प्रभाव के कारण भारतीय जीवन अनेक प्रकार की समस्याओं की ज्वालाओं से जलता हुआ दृष्टिगत हो रहा है । इसका उप-शरण, त्येन त्यक तेन भुंजिथा के आदर्श पर आधारित भारतीय संस्कृति के पुनःउद्धार द्वारा ही किया जा सकता है । यह उल्लेखनीय है कि युग जीवन के सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक आदि आयामों का प्रभाव समकालीन साहित्य पर पूर्णतया पड़ा, जो कि हमारे परवर्ती अध्ययन का विषय है ।

साहित्यिक परिस्थियाँ :

साहित्य किसी भी युग की सामूहिक चेतना का परिणाम तथा प्रतिबिम्ब होता है । जिस प्रकार किसी भी काल के साहित्य में परोक्ष रूप से उस काल की विशेषता सन्निहित एवं संचित रहती है । उसमें युग की आकांक्षाएँ सामाजिक जीवन की बहुमुखी प्रवृत्तियाँ, राजनीतिक गतिविधिया तथा जीवन्तचेतना, धार्मिक नैतिक जीवन दृष्टि तथा साथ ही वैयक्तिक आकांक्षा तथा युग की प्रतिक्रिया आदि सभी का

प्रतिफलन होता है । जिस काल में जो विशेषता रहती है, वही उस काल की चेतना कहलाती है । आज के साहित्य में जीवन के आदर्शो और सम्बन्धों के प्रति बौद्धिक दृष्टिकोण और शंकालुता अधिक मिलती है । गणतन्त्र ने मानों मनुष्य के प्रत्येक कार्य अथवा चिन्तन के क्षेत्र में स्वतंत्रता की चेतना जमा दी है, अत एवं साहित्य में भी सर्वत्र मौलिक और परम्परागत मान्यताओं और आदर्शो और भावों को आज के लिये अनावश्यक तथा निरर्थक बोझ रूप माना जाने लगा है । साहित्य युग का अनुवर्ती नहीं रहता, उसमें युग अनुरूपता रहती है, अनुगुणता रहती है तथा उसके युग का प्रभाव अनेक तत्त्वों के साथ मिलकर नवीन और जीवन्त बन जाता है । प्रत्येक युग में एसा साहित्य भी मिलता है जो परम्परा के नाम पर प्रेरणा शुन्य रूढ़ियो और विधि निर्देशों से लिपटा रहना चाहता है । ऐसे साहित्य में युग आकांक्षाओं के प्रति शंका और उपहास का भाव रहता है । साहित्य का कार्य मनुष्य की चेतना का विस्तार करके उसे परिष्कृत करना है, क्योंकि प्रत्येक काल के मानव जीवन में नयी समस्याएँ, नवीन सम्बन्ध, नवीन विचारों की परीक्षा और नवीन दायित्व बोध रहता है । साहित्य का कार्य होता है – नवीन समस्याओं का समाधान करना, नवीन समस्याओं को उचित दिशा निर्देश देना, नवीन विचारों की परीक्षा और नवीन सम्बन्धों का ग्रहण और व्यवस्थापन । हिन्दी साहित्य में रीतिकालीन और छायावादी दोनों काव्यकला की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे फिर भी उनकी कलात्मक मान्यताओं के विरूद्ध प्रतिक्रिया हुई ।

आज स्वतंत्रता और समता की भावना फैल चुकी है । सामान्य से सामान्य जाति भी अपने अधिकारों के लिए सजग है । युग–युग के

शोषण पाश से मानव मूक्त होने का प्रयास कर रहा है । साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का युगखत्म हो चुका है । आज वर्तमान युग में जो भी साहित्य लिखा गया उसमें समस्त जनता के मनोवेग क्रमिक और श्रमिक की आकाक्षाएँ इत्यादि प्रधान है, क्योंकि आज नवीन साहित्य के विधायक ये ही है ।

भवानीप्रसाद मिश्र का कविताकाल लगभग प्रगतिवादी रहा । यह आंदोलन के कुछ बाद प्रकट होता है । प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन आर्थिक विषमताओं को व्यक्त करने तथा आर्थिक स्थितियों को बदलने की दिशा में एक कदम था । इसी पर विचार करने से पूर्व इसकी पृष्ठभूमि में सर्व प्रथम भारतेन्दुयुग का आगमन हुआ, जो मध्ययुगीन तथा युगीन चेतना का सन्धि स्थल माना गया । यही से साहित्य का प्रवेश द्वार है । प्रजातांत्रिक भावना में वैयक्तिकता के तत्त्व अंकुरित होना भारतेन्दुयुगीन परिस्थितियों की उपज है । अंग्रेजी साम्राज्यवाद की औद्योगिक इकाइयों से नये-नये आर्थिक वैषम्य फूटे, ग्रामिण आर्थिक योजनाएँ विलंब में पड़ गयी । भारतीय उद्योग-धन्धों का दम घूट गया । धीरे धीरे समाज में मध्यमवर्ग का विकास हो चला । स्वतंत्रता की मांग अब कुछ ज्यादा ही बढ़ने लगी । भारतेन्दु एक व्यक्ति नहीं, व्यक्तित्व थे, संस्थाओं के जनक नहीं, स्वयं एक संगठित संस्था थे । व्यक्तिवाद जीवन में आने से मौलिकता के रूप सभी साहित्यकारों तक पहुच गये थे । अपनी साहित्य चेतना का परिचय कवियों ने अपने व्यक्तित्व के अनुरूप दिया है ।

साहित्यकार अपने देश के प्राचिन गौरव के प्रति सचेत रहकर भी वर्तमान देश दशा के प्रति अत्यन्त धुन्ध बने रहे । द्विवेदीयुग के

कवियों की रचनाओं में जहाँ भारत के भव्य स्वरूप की झांकियाँ है वही अंग्रेजी शासन के अत्याचार, उत्पीड़न तथा इनके विरूद्ध संघर्ष, किसान मजदूर आंदोलन, गाँधीहत्या, मंहगाई आदि काव्य के विषय रहे । इस युग का कवि अपने चारों ओर देश की जनता को पल-पल में सावधान करता रहा । समाज में व्याप्त कुरीतियों के बहिष्कार का प्रयत्न करता रहा । राजनीतिक और आर्थिक शोषण द्विवेदी काल की एक प्रमुख समस्या रही । जैसा कि लक्ष्य किया जा चुका है कि भवानी प्रसाद मिश्र का कविता काल उस समय आरम्भ हुआ, जब हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी आन्दोलन अपने पूर्व विकास की स्थिति में था । अतः युगीन काव्य की पृष्ठभूमि के रूप में हम प्रगतिवाद तथा उसके परवर्ती काव्य आन्दोलनों पर यहाँ विचार करेगें ।

प्रगतिवाद :

चिन्तन के क्षेत्र में जिसे साम्यवाद कहा जाता है, अनुभूति के क्षेत्र में वही प्रगतिवाद है । प्रगतिवाद साम्यवादी दर्शन की साहित्यिक या भावात्मक अनुभूति है । प्रगतिवाद वह गतिशील सामाजिक चेतना है, जो शोषण के बल पर सामान्य जन की प्रगति में प्रतिशोध पैदा करने वाली पूंजीवादी व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह करती है, और एक समतामूलक विकासशील सामाजिक व्यवस्था में दृढ़ विश्वास रखती है । प्रगति, चेतना, शोषितों, पदलितो के अधिकारों का समर्थन करती है और सामाजिक साम्य के सिद्धांत की पृष्टि करती है । पूंजीपतियों के विरूद्ध विद्रोह और क्रांति की प्रेरणा, ईश्वर धर्म, नियतिवादी आदि शोषण के सामन्ती हथकण्ड़ो का निरन्तीकरण शोषितों

के प्रति करूणा यथार्थोमुखीता, श्रमनिष्ठा आदि इनकी प्रमुख विशेषताएँ है । इस साहित्यिक आन्दोलन की अपनी कुछ सीमाएँ भी है । १९३८ ई. में पेरिस Progressive Righters Association का अधिवेशन ई.एम.फास्टर की अध्यक्षता में हुआ । उससे प्रेरणा पाकर भारत में भी १९३६ ई. में सज्जाद जहीर और डॉ. मूल्कराज आनंद के प्रयत्नों से प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन मुंशी प्रेमचंद की अध्यक्षता में लखनऊ में सम्पन्न हुआ । इस सम्मेलन मे दलित मानव का पक्ष लेनेवाले साहित्य को प्रगतिशील साहित्य कहा जाने लगा ।

प्रगतिवादी काव्य की सामान्य प्रवृत्तियों से श्री मिश्रजी चिर परिचित है, क्योंकि वे स्वंय प्रगतिवादी के प्रबल समर्थक रहे है । प्रगतिवादी काव्य के स्वर में शोषक व शोषित वर्ग विभाजन पूरी तरह विधमान है, कवि का विश्वास है कि सामाजिक विषमता का मूल कारण असमान अर्थ व्यवस्था है, प्रगतिवादी काव्य धारा गद्य तथा पद्य दोनों क्षेत्रों में बही, प्रगतिवाद, साहित्य को अपने में ही एक लक्ष्य स्वीकार करके उसे साध्य न मानकर मानवीय मूल्यों और वर्तमान सामाजिक सम्बन्धो में एक आमूल परिवर्तन भी क्रमिक वैधानिक विकासवाद द्वारा नहीं बल्कि उद्देश्य के सहित सामाजिक और सांस्कृतिक के द्वारा घटित करना चाहता है । उनके अनुसार सच्ची सामाजिक स्वतंत्रता का उदय ऐसा ही होगा जो मानव के द्वारा मानव के शताब्दियों से होने वाले शोषण को हमेशा – हमेशा के लिये खत्म कर देगी ।

प्रयोगवाद :

यह धारा सम्भावनाओं से पूर्ण होते हुये भी न तो अभी तक इसका उचित विकास ही हुआ है, और न ही उचित नामकरण, वैसे देखा जाये तो 'तार सप्तक' के प्रकाशन के बाद से कविता की इस धारा का जन्म माना जाता है, तथा अज्ञेय को इसका प्रमुख उन्नायक माना जाता है । '' 'तार-सप्तक' में सात कवि संग्रहित है, वे किसी एक समूह के नहीं, किसी एक दल के नहीं । उनकी एकता होने का कारण यही है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं है, किसी मंजिल पर पहुँचे हुये नहीं है, अभी राही है, राहों के अन्वेषी ।''[१३] अज्ञेजी ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि उनकी कौन-सी मंजिल है, जिनके वे अन्वेषी है, वह जिस राह के राही है, वही ठीक या उपयुक्त नहीं है, अतएवं वह किसी अच्छी राह की तलाश में है, इसी लिये वह राह ही उनकी मंजिल होगी जिसे वे खोज ने में लगे है ।

'तार-सप्तक' में गजानंद माधव मुक्तिबोध, नेमिचंद, रामविलास शर्मा, अज्ञेय, भारतभूषण अग्रवाल, गिरिजाकुमार माथुर और प्रभाकर माचवे इन सात कवियों की कविताएँ संग्रहित है ।

दूसरे 'तार-सप्तक' में अन्य सात कवियों में सर्वप्रथम भवानीप्रसाद मिश्रने नयी कविता के विषय में की गयी आलोचना का खण्डन करते हुए कहते है - प्रयोगवाद का कोई वाद नहीं होता, पर अब प्रयोगवाद के नाम से यह धारा बह निकली तथा अनेक उदीपमान कवियों के रूझान इस ओर है । धर्मवीर भारती, वीरेन्द्र मिश्र तथा भवानीप्रसाद मिश्र इसी धारा के सफल कवि माने जाते है ।

मिश्रजी की काव्य चेतना क्रमशः प्रयोगवादी तथा नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में प्रवाहित हुई है, उनकी कविता में कवि का निजी मानवतावादी दृष्टिकोण परिलक्षित होता है । वे मार्क्सवादी चिन्तन को वही तक स्वीकार करते है, जहाँ वह जनवादी है तथा विध्नसात्मक रचना के स्थान पर शक को नहीं मानते, मिश्रजी युगीन पृष्ठभूमि के प्रति जहाँ उत्साही है वहाँ वह पुरातत्त्व के संग्रहणीय पक्ष के प्रति आस्थावान भी है ।

समकालीन कवि और उनमें भवानीप्रसाद मिश्रजी का स्थान :

समकालीन शब्द अंग्रेजी के कांटेम्परेरी (Contemparary) का हिन्दी पर्याय है, जिसका अर्थ एक ही समय या अपने समय का समवयस्क है । काल-दर्शन की दृष्टि से समकालीनता की लघुतम व्याप्ति एक क्षण में समाविष्ट होती है, किन्तु समय के प्रवाह को समकालीनता की परिघि के बाहर रखना भी नितांत असम्भव है । समकालीनता का अर्थ एक काल में साथ-साथ जीना नहीं है । समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला करती है, समस्याओं और चुनौतियों में भी केन्द्रिय महत्त्व रखनेवाली समस्याओं की समझ से समकालनीता उत्पन्न होती है, समसामिकता की अवधारणा इससे मिलती झुलती होते हूए भी भिन्न कही जा सकती है ।

समकालीन आधुनिकता का वह विशिष्ट भाव-बोध है, जिसके द्वारा युग में निहित परिवेश की जीवन से सन्निकटता की गहन अनुभूति होती है । उक्त तथ्य को आधुनिकता के संदर्भ में और भी अधिक

स्पष्ट किया जा सकता है । ''आधुनिकता एक युग विशेष का भाव है, जब कि समकालीनता वर्तमान से उत्पन्न स्थिति विशेष का आयाम है, सम-सामयिकता की सीमा संकीर्ण एवं संकुचित है ।''[१४]

इससे प्रवर्तमान जीवन से प्रत्यक्ष साक्षात्कार का बोध सन्निहित रहता है । हमारा मन अपने समय के मानव मूल्यों से अध्यधिक प्रभावित रहता है । प्रायः सभी समकालीन साहित्यकारों ने अपने समय की राजनैतिक, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक और वैयक्तिक सामाजिक समस्याओं तथा परिस्थितियों से प्रभावित होकर उन्हें नये दृष्टिकोण के अनुरूप व्याख्यायित तथा रूपायित करने का प्रयत्न किया है । पुरातनता के प्रति विद्रोह और नवीनता के प्रति आग्रह का स्वर ही समकालीन यथार्थ का प्रमुख पहलु है ।

यदि हमें सामयिकता को आधुनिकता के परिवेश में देखना हो तो उसे अत्याधुनिकता कहा जा सकता है ।

समकालीन यथार्थ को देखे तो भवानीप्रसाद मिश्रजी दूसरे 'तार-सप्तक' के कवि है । उनके समकालीन कवियों में शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादूरसिंह, नरेशकुमार महेता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती है ।

इन कवियों का संक्षित परिचय निम्नलिखित है -

(१) शकुन्त माथुर :

शकुन्त माथुर के काव्यों को 'दूसरे तारसप्तक' में स्थान प्राप्त हुआ है । शकुन्त माथुर एक गृहिणी के रूप मे रहकर घर में अपना

समय पास करने के लिए काव्य लिखा करती थी । उनके काव्यों में मन के भावों का प्रस्तुतीकरण तो हुआ है, साथ में जीवन की कड़वी वास्तविकता और सामान्य जन की समस्याओं को भी स्थान मिला था ।

> ''कभी एक ग्रामीण घरे कन्धे पर लाठी
> सुख-दुःख की मोटी-सी गठरी
> लिये पीठ पर
> भारी जुते कहे हूए
> जिन में से थी झाँक रही गाँवों की आत्मा,
> जिन्दा रहने के कठिन जतन में
> पाँव बढ़ाये आगे जाता ।''[१५]

इनके काव्यों में आकांक्षाएँ, भावनाएँ, विस्तृत रूप से प्रस्तुत है । माथुर के काव्यों मे जन-जन की वेदना व्यक्त होती है । काव्यों में जीवन के वास्तविक वातावरण और परिस्थितियों का भी चित्रण हुआ है।

(२) हरिनारायण व्यास :

कवि के रूप में हरिनारायण व्यास बड़ा नाम है । उनके काव्यों में कल्पना तत्त्व के साथ यथार्थ तत्व भी देखने को मिलते है। स्वप्न की दुनिया इन काव्यों में रंग बिखेरती दिखायी देती है । उनके काव्यों में इन्सान के हर एक पहलू पर विचार किया गया है ।

> ''मूक शिशुओं के आधार की प्राणदा पयधर
> नभ का चाँद बनदर हो गयी है दूर ।

देखती जिन को सरल मुदृ स्वच्छ आँखे
ऊँगलियाँ मुडती पकड़ने
उस गगन के चाँद को ।''[१६]

इन काव्यों में कवि का व्यक्तित्व प्रकट होता है, उनसे उनके मन के भावों को वाचा मिलती है। इनके काव्यों में प्राकृतिक उपादानों की झलक मिलती है । उनके प्रतीक-व्यंजनाये भी प्रकृति-प्रदत्त होते है । कवि के मुताबिक प्रकृति, स्वयं सौदर्य की प्रतिमा है । कवि के काव्यों की भाषा में ग्रामीण शब्द एवं सरल भाषा का प्रयोग हुआ है ।

(३) शमशेर बहादूर सिंह :

इनके साहित्य में प्रमुख रूप से 'उदिता', 'बात बोलेगी', 'हम नहीं', 'कुछ कविताएँ', 'कुछ और कविताएँ', (कविता-संग्रह) 'दोआब' (लेख-संग्रह) आदि है ।

उनके काव्यों में पाश्चात्य प्रभाव दिखाई देता है । इन्होंने ज्यादातर कविताओं में 'तकनीक' का प्रयोग किया है । उनका मानना था कि हरेक चीज की अपनी भावना, अपनी भाषा होती है, उसे उसी रूप में प्रस्तुत करना चाहिए । काव्यों में कहीं - कहीं आध्यात्मक भी दिखाई देता है ।

सामान्य मनुष्य की परेशानियों को आवाज देने का काम इनकी कविताओं ने किया है ।

''घिरते आकाश को ताकता हताश
गहरे नभ में चाँद खोता जाता है, अन्धकार
चुप-चुप हँसता आता सब ओर ।''[१७]

(४) नरेशकुमार महेता :

नरेशकुमार महेता के साहित्य में मुख्य रूप से कहानी-संग्रह, उपन्यास और नाटक एवं कविता संग्रह महत्त्वपूर्ण है ।

प्रयोगवादी कविता में भारतीय संस्कृति को उजागर करनेवाले कवि के काव्यों में विश्वशांति की बात देखने को मिलती है । महेता ने काव्यों में अवसरवादिता और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का सशक्त रूप प्रस्तुत किया है । महेताजी की कविताओं में नये प्रयोगों को स्थान मिला है । जैसे -

> ''चाँदी के चन्दा ने पूनम दुध पिलाकर
> मेरे जमुन अंगूरों को नव रसवान बनाया ।
> आओं मृत पति चन्द्र सूर्य तुम
> अपनी धूप चाँदनी के सौ-सौ चीवर फैलाते ।''[१८]

नरेशकुमार की कविताओं में प्रकृति का महत्त्व दिखाई देता है । समाज की अधोगति और पतन, व्यक्ति की मानसिक स्थिति आदि का चित्रण भी इनके काव्यों में मिलता है ।

(५) रघुवीर सहाय :

रघुवीर सहाय जी ने अनेक पत्र-पत्रिकाओं में संपादन कार्य किया है । सम्प्रति नवभारत टाइम्स के विशेष संवादाता रहे । कविता, कहानी और निबन्धों का एक संग्रह 'सीढ़ियों पर धूप' प्रकाशित हो चुका है ।

इनके काव्यों में विशेष रूप से सादगी, सरलता, सीधापन दिखाई देता है । राष्ट्र के प्रति स्नेह भी इनके काव्यों में कहीं - कहीं देखने को मिलता है । उनकी कविताओं में वास्तविकता की गूंज है । कविता में विचार वस्तु खून की तरह दौडता दिखाई पड़ता है । जैसे -

''यह कहाँ आ गया बस यों ही चलते - चलते ।
मैं कितनी दूर निकल आया अपने घर से
घूँधला दिखालाई पडता है । बाहर-भीतर
कुहरा छाया है, जाडों की भारी संध्या सी यह विस्मृति ।''[१९]

(६) धर्मवीर भारती :

भारती जी १९६० से 'धर्मयुग' के सम्पादक रहे । भारती जी ने कविताएँ, उपन्यास, कहानी और नाटय समीक्षाएँ, विदेशी कविताओं का अनुवाद आदि में अपनी कलम चलाई है । काव्य संकलन 'ढण्डा लोहा', 'सात गीत वर्ष', 'कनुप्रिया', 'अन्धायुग', 'युगबोध' आदि है ।

वास्तविक परिस्थिति के प्रति लगाव उनके काव्यों में प्रमुख स्वर रहा है । सामान्य इन्सान को ध्यान में रखकर काव्य रचनाएँ की गई । देश की समकालीन परिस्थितिओं के प्रति और समस्याओं के प्रति अंगूलि निर्देश किया है । देश प्रेम के साथ काव्यों में अछंद और प्रतीकों के माध्यम से बात कहना उनकी विशेषता रही है ।

''साँझ के झटपुट में ।
जब कि दूर आस्मा पर एक धूआँ सा छा रहा था -
तारे अकुला रहे थे, चाँद धरो रहा था ।
चोट इतनी गहरी थी
कि बादलों के सीने से खुन उबला आ रहा था ।''[२०]

इन कवियों के अलावा जिनका पहले, दूसरे और तीसरे सप्तकों में महत्वपूर्ण योगदान रहा ऐसे प्रमुख कवि निम्नलिखित है -

अज्ञेय :

अज्ञेय का नई काव्य सृष्टि में विशेष महत्व रहा है । अज्ञेय के काव्य की कुछ विशेषताओं में नई काव्य सृष्टि में प्रकृति के विविध रूपों, गतियों और मुद्राओं का सफल अंकन है । यद्यपि ये रूप गतियाँ और मुद्राएँ लेखक की आंतरिक भावना से सम्पन्न है, परंतु उनमें यथार्थता का पक्ष भी पुरी तरह से नास्वर हो गया है । अज्ञेय जी ने अपने काव्यों में अनेकानेक व्यंजक शब्दों का आविष्कार भी किया है । तीसरी विशेषता उनके काव्य में व्यक्ति चेतना में रहस्यात्मकता, दीप्ति और निष्ठा का सन्निवेश करना है ।

''जितनी स्फीति इयता मेरी झलकाती है
उतना ही में प्रेत हूँ ।
जितना रूपाकार सारेमय देख रहा हूँ
रेत हूँ ।
फोड़-फोड़कर जितने को मेरी प्रतिभा
मेरे अनजाने अनपहचाने
अपने ही मनमाने
अंकुर उपजाती है -
बस उतना में खेत हूँ ।''[२१]

अज्ञेय एक विशिष्ट शब्द शिल्पी है । परंतु उनके छंद और लय की गतियाँ सर्वत्र उतनी समृद्ध या समरस नहीं है । अनेकबार उनकी पंक्तियों में गद्य की लय वर्तमान रहती है ।

गिरिजाकुमार माथुर :

गिरिजाकुमार माथुर के काव्यों में नए छंदों, नई हिन्दी – उर्दू मिश्रित भाषा और नए रूपचित्रों का प्रयोग देखने को मिलता है । माथुर जी की कविताएँ छायावादी कवियों की भाँति उनमें एक स्वप्नभंग और मांसलता उस समय भी थी । उनके परवर्ती काव्य में इन्ही प्रवृत्तियों का विकास दिखाई देता है। उन्होंने काव्य में भाव की अपेक्षा काव्य कौशल के क्षेत्र में अधिक सूक्ष्मता से काम किया, भाषा में अधिक मार्दव लाए है ।

''आज जीत की रात पहरूए, सावधान रहना,
खुले देश के द्वार अचल दीपक समान रहता ।

ऊँची हुई मशाल हमारी आगे कठिन डगर है ।
शत्रु हट गया, लेकिन उसकी छायाओं का डर है,
शोषण से मृत है, समाज कमजोर हमारा घर है
किन्तु आ रही ढ़यी जिन्दगी यह विश्वास अमर है
जल गंगा में ज्वंर लहर तुम प्रवहमान रहना
पहरूए सावधान रहना ।''[२२]

माथुरजी प्रमुखतः एक गीतकार है जिनका नई कविता और 'तार सप्तक' में महत्वपूर्ण योगदान रहा है । भाषा के स्तर पर माथुर जी बोलचाल के अधिक समीप है । इसलिए यथार्थवादिता का आभास उनमें स्पष्टतः दिखाई देता है ।

गजानन माधव मुक्तिबोध :

मुक्तिबोध के काव्यों में वैविध्यमय विकासस्रोत देखने के लिए भिन्न-भिन्न काव्यरूपों को यहाँ तक कि नाटयतत्त्व को कविता में स्थान देने की आवश्यकता बताते है । मुक्तिबोध विद्रोही और कटुतापूर्ण अनुभूतियों से अनुप्राणित लेखक है । वह अंततः वैयक्तिक प्रतिक्रियाओं के अभिव्यंजक कवि है । उनके काव्य में उग्रता हावी हो गई है । अनेक काव्यरूपों का मुक्तिबोध जी ने प्रयोग किया है । उनके काव्य प्रयोग चारूतारहित और उबड़ खाबड है । मुक्तिबोध की भाषा में लय और संगीत की अपेक्षा चिल्लाहट का अधिक प्रयोग मिलता है ।

''अधूरी और सतहीं जिन्दगी के गर्म रास्तो पर
हमारा गुप्त मन
निज में सिकुड़ता जा रहा
जैसे कि हब्शी एक गहरा स्याह
गोरों की निगाहों से अलग ओजल
सिमट कर सिकर हो जाना चाहता हो जल्द ।''[२३]

मुक्तिबोध सर्वथा भिन्न स्तर पर समूचे इतिहास और मानवीय विकास की स्थिति को वर्तमान जीवन यथार्थ के संदर्भ में विश्लेषित कर सकते है ।

कुँवर नारायणसिंह :

कुंवर नारायणसिंह के काव्य में वैचारिकता का अभिनिवेश होते हुए भी शिल्पात्मक पक्ष मजबुत बना है । वे प्रकृति के रूपकों का

स्वतंत्र प्रयोग करते है तथा अनेक परिवेश प्रधान रचनाओं में उन्होंने मुक्त आसन के आधार पर सुन्दर काव्यात्मक व्यंजना की है । उनकी काव्य रचनाएँ अस्तित्ववाद से प्रभावित रही है -

> ''हम एक इशारा है दो भिन्न दिशाओं में,
> हम से होकर सदियों के प्रश्न गुजरते है,
> हम एक व्यवस्था है क्षण-भंगुर जीवन की
> जो हर क्षण सपनों से जीवित रहते है ।''[२४]

इनके काव्य संग्रहों की विशेषताएँ यह रही है कि उनका आरम्भ माध्यम की प्रशस्ति से होता है । इनकी दृष्टि कहीं-कहीं निराशावादी भी दिखाई देती है ।

समकालीन काव्य में मैंने अज्ञेय संपादित 'तार-सप्तक' के कवियों को ही प्रधानता दी है, उनमें भी प्रथम तार-सप्तक से तीसरे तार-सप्तक के प्रमुख कवियों का ही परिचय दिया है ।

भवानीप्रसाद मिश्र का स्थान :

अपने समय में मिश्रजी 'कल्पना' आकाशवाणी और गाँधीवाण्ड़मय आदि सम्पादक मण्डलों से जुड़ रहे । वे सहज संवेदना के कवि है और उनकी भाषा एवं अभिव्यक्ति में लोकजीवन का प्रभाव है । मिश्रजी के प्रमुख काव्य संग्रहों में 'गीत-फरोश', 'चकित है दुःख, 'गाँधी पंचशती', 'बुनी हुई रस्सी', 'त्रिकाल संध्या' और 'परिवर्तन जीये' आदि है ।

भवानीप्रसाद मिश्र 'दार्शनिक' स्तर पर अद्वैतवादी एवं वाद के स्तर पर गाँधीवादी है ।

मिश्रजी सप्तक के प्रमुख कवि है । उनका व्यक्तितत्व सीमित भाव परिणामों में संयमित रहा है ।वे समाज की बहिमुखी जीवन गति से अनुरक्त थे । वे जीवन की अनेकता पर विश्वास करते थे । उनकी रचनाओं में सर्वत्र सामाजिक और मानवतावादी चेतना का पुट देखने को मिलता है । उनके काव्य का सौंदर्यविधान कल्पना से प्रसारित है । उनका मानना था कि - ''कवि के लिये यह जरूरी है कि वह जैसा अनुभव करे वैसा लिखे -

वह कहते है कि -

''जिस तरह हम बोलते है,
उस तरह तू लिख
उसके बाद भी
हम से बड़ा तू दिख ।''[२५]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि भवानीप्रसाद मिश्र का कविताकाल स्वान्त्रयोत्तर युग से शुरू होता है । आधुनिक हिन्दी कविता की विकास यात्रा के संदर्भ में यदि आधुनिक हिन्दी कालखण्ड पर विचार किया जाये तो उनकी काव्य चेतना क्रमश: प्रयोगवादी तथा नई कविता के परिपाश में प्रवाहित हूई है । कवि का निजी व्यक्तितत्व उनके मानवतावादी दृष्टिकोण को परिलक्षित करता है । वे मार्क्सवादी

चिन्तन को वहीं तक स्वीकार करते हैं, जहाँ वह जनवादी है तथा विध्वंसात्मक रचना पर शक नहीं रखते । वे समसामयिकता के प्रति यहाँ उत्तरदायी है, वहाँ पुरातनता के स्पृहणीय पक्ष के प्रति आस्तावान भी है । अतः यह कहा जा सकता है कि उनकी कलाचेतना आधुनिक काव्य चेतना के तत्त्वों से निर्मित हुई है और भाव योजना, गतिशील विकास और संतुलित जीवन दृष्टि तथा समसामायिक जीवन की रूचि अभिरूचि अन्तस, संघर्ष एवं अन्तप्रक्रिया से अनुप्राणित है ।

इससे स्पष्टतः हम कह सकते है कि भवानीप्रसाद मिश्र का हिन्दी काव्य जगत में महत्त्वपूर्ण एवं अद्वितीय स्थान है ।

अतः इस अध्याय में भवानीप्रसाद मिश्र के जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालते हूए उनकी युगीन पृष्ठभूमि को स्पष्ट करने की कोशिश की है । इसके साथ ही उनके समकालीन कवियों के काव्यगत विशेषताओं और उनमें मिश्रजी के स्थान को स्पष्ट किया है ।

दूसरे तार-सप्तक ने उन्हें विशेष ख्याति दी साथ ही हिन्दी के प्रमुख गाँधीवादी कवियों में इनका नाम अग्रिम रहा है ।

संदर्भ ग्रंथसूची

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
१.	भवानीप्रसाद मिश्र एक काव्ययात्रा-प्रथम संस्करण	डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी	पृ.११
२.	आज के लोकप्रिय कवि : भवानी प्रसाद मिश्र	विजय बहादूरसिंह	पृ.०३
३.	भवानी प्रसाद मिश्र एक काव्ययात्रा-प्रथम संस्करण	डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी	पृ.१०
४.	आज के लोकप्रिय कवि : भवानी प्रसाद मिश्र	विजय बहादूरसिंह	पृ.०६
५.	गीत-फरोश	भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.३६
६.	वही	भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.४६
७.	वही	भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.१७९
८.	बुनी हुई रस्सी(भूमिका)	भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.७-८
९.	व्यक्तिगत	भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.१६०
१०.	आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौदर्य	डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल	पृ.३१४, ३१५
११.	भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में सामाजिक चेतना	श्रीमति मिथलेश कश्यप	पृ.११७
१२.	सातगीत	धर्मवीर भारती	पृ.१२९
१३.	तार-सप्तक की विवति तथा पुनरावृर्त्ति	अज्ञेय	पृ.११

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
१४.	भवानीप्रसाद मिश्र के काव्यों में सामाजिक चेतना	श्रीमति मिथलेश कश्यप	पृ.१२३
१५.	दूसरा तार सप्तक 'दोपहरी'	शकुन्त माथुर	पृ.३२
१६.	दूसरा तार सप्तक	हरिनारायण व्यास	पृ.६४
१७.	दूसरा तार सप्तक	शमशेर बहादुरसिंह	पृ.८५
१८.	दूसरा तार सप्तक	नरेशकुमार महेता	पृ.१३२
१९.	दूसरा तार सप्तक	रधुवीर सहाय	पृ.१४९
२०.	दूसरा तार सप्तक	धर्मवीर भारती	पृ.१८०
२१.	आंगन के पार द्वार	अज्ञेय	पृ.४१
२२.	गिरिजाकुमार माथुर	पन्द्रह अगस्त	१९४७
२३.	चाँद का मूँह टेढ़ा है	गजानन माधव मुक्तिबोध	पृ१४८
२४.	'हम'	कुंवर नारायणसिंह	पृ.४७
२५.	छायावाद का पतन	डॉ. देवराज	पृ.४१

अध्याय–२
भवानी प्रसाद मिश्रजी के साहित्य का परिचय

अध्याय–२
भवानी प्रसाद मिश्रजी के साहित्य का परिचय

- प्रस्तावना
- गद्य रचनाएँ
  - (१) जिन्होंने मुझे रचा
  - (२) कुछ नीति कुछ राजनीति
- पद्य रचनाएँ
  - (१) गीत–फरोश
  - (२) चक्ति है दुःख
  - (३) अंधेरी कविताएँ
  - (४) गाँधी पंचशती
  - (५) बुनी हुई रस्सी
  - (६) खुश्बु के शिलालेख
  - (७) व्यक्तिगत
  - (८) परिवर्तन जिये
  - (९) अनाम तुम आते हो
  - (१०) ईदं न ममं
  - (११) त्रिकाल संध्या
  - (१२) कालजयी
  - (१३) शरीर कविता फसले और फुल
  - (१४) मान सरोवर दिन
  - (१५) जल रही है सड़कों पर बतियाँ
  - (१६) सम्प्रति

अध्याय-२
भवानी प्रसाद मिश्रजी के साहित्य का परिचय

प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्य काल में अनेक ऐसे प्रभासूर्य है, जिनकी काव्य रश्मियों ने अपने युग को आलोकित किया है । किसी भी कलाकार की लेखनी यदि सशक्त है तो वह अपने युग में स्पंदन लाने व उचित दिशा निर्देश के लिए स्थायी प्रेरणा दे सकता है । आधुनिक कविश्री मिश्रजी भी ऐसे ही आलोकित, लोकप्रिय व सशक्त कवि कहे जा सकते है । दीर्ध साहित्य यात्रा के अन्तर्गत जीवन के अनेक संदर्भो एवं परिवेशों को काव्यांकित अभिव्यक्ति देने का उनका प्रयास सराहनीय कहा जा सकता है । उनकी सबसे बडी विशेषता है अपने देश व जीवन के प्रति यथार्थता तथा जागरूकता । इन दोनों स्तरों पर कवि अनुभूति और चिन्तन को ग्रहण करने में समर्थ हुआ है । मिश्रजी ने वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्त्व देते हूए उन्हें जीवन की यथार्थता से जोड़ा है, जैसा कि पिछले अध्याय में कहा जा चुका हैं कि उनकी काव्य प्रतिभा का उन्मेष स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्ष पूर्व ही हो गया था । काव्य चेतना की दृष्टि से वह समय हिन्दी साहित्य जगत में मूल्यों का उन्नायक या प्रवर्तक काल था ।

भवानी प्रसाद मिश्र ने साहित्य की विविध विधाओं में सहजता के साथ सृजन यात्रा की है । काव्य और गीत के साथ-साथ निबंध और संस्मरण आदि लिखकर उन्होंने यह सिद्ध किया कि वे सर्वतोमुखी प्रतिमा के धनी है। इनकी प्रत्येक कृति हिन्दी साहित्य की एक समर्थ कृति है । अत: यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि वे एक अच्छे

कवि तो थे ही बहुत अच्छे गद्य लेखक भी थे । सरस और चुस्त भाषा में लिखे ऐसे अनन्य निबंध है जो उनके चिंतन और दर्शन को स्पष्ट करते है । 'जिन्होंने मुझे रचा', और 'कुछ नीति और कुछ राजनीति' मिश्रजी के ऐसे ही गद्य संग्रह है । जिन का अब हम विस्तृत रूप से परिचय प्राप्त करेगें -

गद्य रचनाएँ :

(१) जिन्हों ने मुझे रचा :

'जिन्होंने मुझे रचा' का प्रकाशन सन् १९८१ ई. में हुआ । पं. माखनलाल चतुर्वेदी, पं. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और श्री पदुमलाल पुन्नालाल बक्शी से संबंधित संस्मरणपरक लेखों का यह संग्रह उनकी पहली गद्य रचना है । इस संग्रह की प्रथम रचना पं. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के व्यक्तितत्व और कृतित्व से संबंधित है । उन्होंने नवीनजी को 'द्विधाहीन कवि: सुविधाहीन व्यक्ति' से संज्ञायित किया है । नवीनजी के व्यक्तितत्व पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है - ''बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का नाम आते ही आंखों के सामने एक तराशे हुए आदमी का चित्र खिंच जाता है । छह - फूट लम्बा, व्यायाम से सधा-तया बलिष्ठ शरीर, विशाल वक्षस्थल, वृषभस्कंध, दीर्धबाहु, कुछ लाली लिए हुए चिट्टा रंग, उन्नत माल, नुकीली नासिका, बड़ी और पैनी आंखे, खिंचे हुए होठ और तेजयुक्त प्रभावशाली मुख मंडल । नवीनजी को कई बार तो देखते ही बनता था । पौढषेय सौदर्य के वे मानों आदर्श थे । उनको देखकर लगता था जैसे किसी सही कल्पनाशील मुर्तिकार ने अपनी सारी कल्पना को

समेह कर एक मूर्ति गढ़ना तय किया था ।' अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने फिर लिखा - साफ धुला खद्दर का कुर्ता - पाजामा पहने, सिर पर तिरछी टोपी दिये, मूंह में पान दबाये आहिस्ता - आहिस्ता गंभीरता से सिगरेट पीते कभी - किसी समाज में पहुच जाते तो बड़े से बड़ा आदमी छोटा लगने लगता था ।''[१]

इस संग्रह में मिश्रजीने आगे नवीनजी के जीवनदर्शन को प्रस्तुत किया है । उनके संघर्ष, जीवन उपार्जन, काव्य साधना, राष्ट्रीय भावना और जेल यात्राओं के बारे में लिखा है । और उन्हीं जेल यात्राओं में लिखि गए काव्य कृत्तियों के बारे में लिखा हैं ।

संग्रह का दूसरा संस्मरण 'एक भारतीय आत्मा' चतुर्वेदी जी से सम्बन्धीत है । चतुर्वेदी जी से संबंधित संस्मरण का शीर्षक मिश्रजीने 'एक और अद्वितीय माखनलाल जी' दिया हैं । वास्तव में कवि का यह संबोधन दोनों के बीच के निकटय - संबंध को दर्शाता है । कवि ने अपने इस संस्मरण के प्रारंभ में ही लिखा है कि ''मैं आज पं. माखनलाल चतुर्वेदी के उपर संस्मरण लिखने बैठा हूँ । पं. माखनलाल चतुर्वेदी से में पहलीबार सन् १९३२ में मिला और फिर १९४२ से १९४५ तक की अवधि के सिवाय ऐसा कोई वर्ष नहीं बीता जिसमें उनसे तीन-चार बार मिलने का अवसर न आ जाता हो । इस तरह लगभग पैतीस - छतीस वर्ष में उनके घनिष्ठ संम्पर्क में रहा, लगभग परिवार के एक लड़के की तरह । कवि चतुर्वेदी जी के सहज स्नेह एवं वात्सल्यवत् प्रेम के कारण उन्हें 'दादा' कहा करते थे - 'दादा मध्यप्रदेश और विशेषतः निमाड़ तथा मालवा के हिस्से में बड़े भाई को कहते है और मेरी जन्मभूमि बुदेलखंड में 'दादा' पिता को कहते है, माखनलाल

जी की मेरे मन में जो तस्वीर है, 'वह ऐसी ही एक मिली-जुली तस्वीर है बडे भाई और पिता की ।''[२] अपनी छोटी-छोटी मुलाकातों से लेकर लम्बी जेल-यात्रा तक की मुलाकातों से लेकर लम्बी जेल-यात्रा तक की मुलाकातों के मधुर संस्मरणों को उन्होंने जिस सहजता के साथ बिताये हर क्षण और अनुभूति मिश्रजी को प्रेरणा देते है और उनकी रचना-प्रक्रिया में सहायक बनते है ।

चतुर्वेदी जी ने जिस युग में लिखना प्रारंभ किया, वह राष्ट्रीय चेतना का युग था । जिन लोगों के सम्पर्क में वे रहे, उन सबकी नस-नस में राष्ट्रप्रेम कूट-कूट कर भरा था । इस परिवेश से प्रभावित होकर, चतुर्वेदीजी की आत्मा में जो स्फुरण हुआ, उसने उन्हें वाणी से ही नहीं, कर्म से भी राष्ट्र-सेवी बना दिया । ''भारतीय आत्मा के नाम से इन्होंने कविताये लिखीं । देशभक्ति के लिहाज से वे भारतीय आत्मा थे किन्तु देश की संस्कृति का विचार हो तो वे महान भारतीय आत्मा थे ।''[३] इस तरह विवेच्य संस्मरणपरक लेख में उन्होंने चतुर्वेदी जी की खूबियों तथा खामियों का वर्णन किया है । चतुर्वेदी जी की रचनाओं को लेकर विशेष उलझन उन्हें उनके अभिव्यक्ति पक्ष को लेकर है । उन्होंने संकेत दिया है कि ''माखनलालजी जहां समझ में आते है, वहां भी असाधारण होते है और जहां वे समझ में नहीं आते वहां भी असाधारण होते है । 'केदी और कोकिला' से लेकर 'वेणु तो गूंजे धरा' या 'विजुरी आंज रही' तक की कविताये ऐसी ही कवितायें है, जिनमें से कुछ पूरी समझ में आकर असाधारण है और कुछ अपने अभिप्रायगर्भित धुंधलेपन के कारण असाधारण है ।''[४] यह संस्मरण भारतीय आत्मा के संबंध में खुला दर्पण है तथा हिन्दी साहित्य के

लिए एक अमूल्य निधि । अपने इस लेखमें उन्होंने बार-बार चतुर्वेदी जीके प्रभाव को अपने ऊपर स्वीकार किया है, जहां वे कहते है कि एक बार दादाने अंकोला (वर्धा) के प्रांतीय साहित्य सम्मेलन के अध्यक्षीय पद से कहा था - ''भवानी तरूण साहित्यिक है, तरूण चिंतक है, युग इसके सामने है और हाथ में कलम । मैं उसे प्रेरित करता हूँ कि वह अपने युग में ही खड़ा न रहे, इतिहास में जिये और जो युग में खड़े है, उन्हें आगे बढ़ने के लिए बाध्य करे ।''[५]

इस संग्रह का तीसरा संस्मरण हिन्दी के पुरोधा पदुमलाल (पुन्नालाल बख्सी) से संबंधित है । बख्सी जी हिन्दी साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र थे । उनका व्यक्तित्व स्वभावत: सरल, संकोची - आकर्षक तथा प्रभावी था । अपने संकोची प्रवृति के कारण बख्सी जीको किसी भी नये काम या नये व्यक्तियों से जुड़ते हुए घबराहट होती थी । बख्सीजी ने मध्यप्रदेश के खैरागढ़ में १९०६ में जन्म लिया । छह वर्ष की अवस्था में उन्होंने अक्षर ज्ञान प्राप्त किया और लगभग अक्षर ज्ञान के साथ ही तत्कालीन कथा-साहित्य के पाठक हो गए । सोलह-सत्रह वर्ष की अवस्था तक वे अंग्रेजी, हिन्दी और बंगला के लेखक बन गए । बाईस वर्ष की उम्र में बी.ए. पास करके चौबीस वर्ष की उम्र में हिन्दी की तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ पत्रिका 'सरस्वती' के सहायक संपादक बने और उसके दो वर्ष बाद ही प्रधान संपादक । छह वर्ष तक महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे संपादक की परंपराओं को कायम रखते हुए पत्रिका को नया आयाम दिया । इस प्रयत्न के दौरान वे छोटे-बड़े तमाम लोगों के स्नेह और कोप के भोग बने, फिर यह देखकर कि कोप धना हो रहा है वे अपने जन्मस्थान लौट आये और

वहाँ एक छोटी-सी जगह में शिक्षक हो गए। शिक्षक तो वे 'सरस्वती' के संपादक होने के पहले भी राजनांदगांव में थे। सरस्वती के सम्पादक रहते हुए भी उनका शिक्षक स्वभाव गौण नहीं था। शाला में वे विद्यार्थीयों का दिशा-दर्शन करके उन्हें गढ़ते थे, सम्पादन करते हुए उन्होंने नये अनेक लेखकों का दिशा-निर्देशन किया और उन्हें गढ़ा। ऐसे नये कवियों और लेखकों में सुमित्रानन्दन पंत, गिरिजादत्त शुकल 'गिरीश' तेजरानी दीक्षित, सत्यवती दूबे, रामानुजलाल श्रीवास्तव और इलाचन्द्र जोशी आदि सर्वप्रमुख है।

इन संस्मरणों में भवानी प्रसाद मिश्र ने प्रत्यक्ष - अप्रत्यक्ष रूप से यह स्वीकार किया है कि हिन्दी के इन स्वमानधन्य व्यक्तित्वों का उनके ऊपर व्यापक प्रभाव पड़ा है और यत्र-तत्र यह प्रभाव उनके साहित्य में आसानी से देखा जा सकता है। 'जिन्हों ने मुझे रचा' के प्रकाशक ने अपने प्रकाशकीय में लिखा है कि - ''भवानीप्रसाद पर तीनों का प्रभाव कुल मिलाकर एक-दूसरे का पुरक हुआ। माखनलालजी से मिले तब तक भवानीप्रसाद एक छोटी-सी मित्र-मंडली तक ही जाने जाते थे। माखनलाल जीने जब उन्हें सुना तो कहा 'नवीन' तो तुम्हें सुनकर पागल ही हो जायेगा। बाद में नवीनजी ने अपने हृदय की समस्त उदारता और स्नेह की तरलता देकर उन्हें अपनाया। इन दो साहित्यिक महारथियों के प्रियपात्र को बख्सी जी ने मध्यप्रदेश साहित्य सम्मेलन के अध्यक्षीय पद से हिन्दी की निधि कहा। स्वभाविक था कि एक लगभग अनजाने कवि को इन सबसे सहारा मिला और वह निंदा - स्तुति के फेर में पड़े बिना अपने ढ़ंग से लिखता चला गया। कवि भवानीप्रसाद को यह ऋण -

स्वीकार बहुत दिनों से अनिवार्य लग रहा था । इन संस्मरणों को लिखकर उन्होंने अपनी इसी आंतरिकता को वाणी दी है ।''[६]

(२) कुछ नीति कुछ राजनीति :

'कुछ नीति और कुछ राजनीति' पं.भवानी प्रसाद मिश्र का बहुचर्चित, लब्धप्रतिष्ठ और भाषणबद्ध निबंध संग्रह है । इसका प्रकाशन सन् १९८३ में हुआ । इसमें मिश्रजी के कुल बारह निबंध संग्रहीत है, जो अपने कलेवर में लधु होते हुए भी व्यापक आधार प्रस्तुत करते है । इसके अधिकांश निबंध गांधी, गांधी-दर्शन, गांधीवाद, सत्य के प्रयोग, अहिंसा और गाँधी-नीति से सम्बन्ध है । इसका कारण यह है कि मिश्रजी स्वयं मन और कर्म से गाँधीवादी है तथा उनका अधिकतर समय गाँधी - वाङमय या गाँधी-साहित्य के अन्वेषण संपादन में बीता है । अन्य निबंधों में लय तालस्ताप दर्शन, लोकतंत्र में तंत्र तथा निर्माण की नयी दिशा प्रमुख है ।

आज का युग विज्ञान का युग है । नित नये वैज्ञानिक आविष्कार ने सम्पूर्ण विश्व-मानव को अंचभित कर दिया है । विज्ञानीकरण, कम्प्यूटरीकरण और तक्नीकी विकास के कारण आज उद्योग धंधे, व्यवसाय एवं कृषि के मानदंड एवं तौर-तरीके एक दम भिन्न हो गए है । साथ ही व्यक्ति - व्यक्ति के बीच आधुनिकीकरण और रहन-सहन की सुविधाओं में लगातार, अविराम वृद्धि ने विभिन्न जातियों - उपजातियों, देशो और महादेशों के मध्य भयानक गहरी खाइयाँ खोद डाली है । परिणामतः आज मानव-जाति के समक्ष कभी न अंत होने वाली चुनौतियाँ है, जो उस से मुँह चिढ़ा रही है । हमारी नैतिकता और संस्कृति के धवल पृष्ठ तक उसके आगोश में समा चुके है ।

मारक प्रक्षेपास्त्रों के निर्माण, ध्वंसात्मक अणु-युग की कल्पना, विश्वविजयी बनने की ललक और मानव कल्याणकारी दृष्टि के अभाव ने आज के हृदयशून्य संसार को भविष्य के धुप्प कुहरें में ढकेल दिया है । परिणामस्वरूप हम अपनी संस्कृति अपने दर्शन को ही आज पिछड़ेपन का पर्याय मानने लगे है और एक सीमा तक उसको अनदेखी करने लगे है । पं. भवानी प्रसाद मिश्रने अपने इन लेखों में इसी मूल्यपरक चिंतन की बहुआयामी व्याख्या की है ।

साहित्य की नवीन विधाओं में एक विधा महान-ख्यात पुरूषों का जीवन चित्रण भी है । व्यक्ति चला जाता है पर उसका व्यक्तितत्व रह जाता है । इस भौतिक शरीर की रचना प्रकृति के पांच तत्वों के संयोग से हुयी है -

''क्षिति जल पावक गगन समीरा ।
पंच तत्व यह रचित सरीरा ॥[७]

तत्त्व में तत्त्वमिल जाते है, पर शाश्वत आत्मा बनी रहती है । आत्मा का हनन कोई नहीं कर सकता । गीता के गायक श्री कृष्णने भी कहा है -

''नैनं छिन्दन्ति शास्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदर्पत्यापो, न शोषयति माढतः ॥''[८]

अभिप्राय यह कि जैसे कोई पुराने वस्त्रों का त्याग कर नवीन वस्त्र धारण कर लेता है, वैसे ही पुराने शरीर का त्याग कर आत्मा नवीन शरीर धारण कर लेती है । गीता के अनन्य अनुयायी गाँधीजी

भी जीवन और मृत्यु में कोई भेद नहीं मानते थे, कोई दूरी नहीं समझते थे । इसीसे भारतीय जीवनधारा में गाँधी-दर्शन को जीवन का आध्यात्मिक आधार माना गया है और पं. भवानीप्रसाद मिश्रने कहा कि - " गाँधी कोई काल्पनिक पुरूष नहीं है, वह एक ऐतिहासिक सत्य है ।"[९] गाँधी की मृत्यु पर विश्वविख्यात वैज्ञानिक आइन्सटाईन ने कहा था कि आगे आनेवाली पीढ़ियां मुश्किल से यह विश्वास कर सकेगी कि इस प्रकार का हाड़-माँस का पुत्तला इस भूमि पर जन्मा था । एक बार लंदन टाइम्स ने भी लिखा था कि - "भारत के सिवा किसी दूसरे देश या हिन्दू धर्म के सिवा किसी अन्य धर्म में गाँधी जैसा आदमी हो ही नहीं सकता था ।"[१०] इसीलिए गाँधीजी विशेषरूप के हमारे अपने हो जाते है । भवानीप्रसाद मिश्र तो यह मानते है कि देश या दूनिया के लिए उन्होंने कई तरह से बहुत सा काम किया है । वे एक जबर्दस्त राष्ट्रनेता थे । वे दासता हे हमारे मुक्तिदाता सिद्ध हुए । उन्होंने प्रेम का जो संदेश दिया हैं, वह अमूल्य है ।

मिश्रजी के निबंधो में से यह फलित होता है कि 'गाँधीजी ने हमें अनेक विचार और कर्म क्षेत्रों में बढ़ने की दृष्टि प्रदान की । इनमें प्रजातंत्र, सत्याग्रह और सर्वोदय प्रधान है । विवेच्य संस्मरण के अन्य निबंधों में भी उनका यही दृष्टिकोण प्रस्तुत हुआ है ।

कहा जा सकता है कि 'कुछ नीति और कुछ राजनीति' में मिश्रजी के संग्रहीत निबंध लधु पर सारगर्भित है, जिसके शब्द-शब्द लोकमंगल का संदेश देते है । इसमें एक ओर जहां गांधी एवं गांधी-नीति की महनीयता, उसकी प्रासंगिकता पर विचार किया गया है वही दूसरी ओर समस्त मानव जाति के लिए विश्व-बंधुत्व का अमर संदेश दिया

गया है । विवेच्य रचना के प्रकाशन के शब्दों में ही मेरा निवेदन है कि ''मिश्रजी की कालजयी कविताओं की तरह उनका गद्य भी अत्यंत सहज, सरस और प्रांजल है। हिन्दी गद्य की वर्तमान दुर्दशा के दौर में ये लिखित भाषण सांस्कृतिक, नैतिक और राजनीतिक मूल्यबोध के साथ ही आधुनिक हिन्दी गद्य का सुललित, पठनीय और विचारणीय रूप भी प्रस्तुत करेगा और साहित्य की श्रीवृद्धि करेगा - ऐसा विश्वास है ।''[११]

पद्य रचनाएँ :

भवानी प्रसाद मिश्र जी के काव्य का उन्मेष सन् १९३० ई. के आस-पास होता है । 'गाँधी-पंचशती' में कवि ने अपनी कविताओं के नीचे अपना सृजन वर्ष भी दिया है । 'सहसा' नामक उन्की कविता २४ जनवरी १९३० में लिखी गयी थी । तथा इसी वर्ष २६ जनवरी को 'स्वतंत्रता दिवस' के रूप में भी मनाया गया था । कविने अपने आरम्भिक लेखन तथा छायावाद का संकेत इस प्रकार दिया है -

> ''जिस तरह से हम बोलते है,
> उस तरह तू लिख,
> और उसके बाद भी
> हमसे बडा तू दिख ।''

'कवि' कविता की यह संकल्प वाणी आगे की काव्य-यात्रा में तमाम आवर्तन-विवर्तन झेलकर विस्तार पाती है । मिश्रजी की कुछ कविताएँ पं. ईश्वरी प्रसाद के सम्पादकत्व में निकल ने वाले 'हिन्दू पंच' (कलकत्ता) में इनके हाईस्कूल पास होने से पहेले ही प्रकाशित

हो चुकी थी । इसके बाद देवनागरी लिपि में कलकत्ता से ही ज्वालादत्त शर्मा ने कुछ उर्दू कवियों की कविताओं के संग्रह की अच्छी भूमिकाएँ देकर प्रकाशित करवाए थे । सन् १९३२ - ३३ में पं. माखनलाल चतुर्वेदी से उनका परिचय हुआ और वे कभी-कभी 'कर्मवीर' नामक पत्रिका में अपनी कविताएँ प्रकाशित करवाते रहे । इसके कुछ समय बाद 'आगामी काल' नामक पत्रिका में भी इनकी कविताएँ प्रकाशित होती रही ।

मिश्रजी का सबसे पहला काव्यसंग्रह (सन् १९४६) 'गीत-फरोश' सामने आया, इसके बाद उन्होंने कविताओं के प्रकाशन की परवाह नहीं की । लेकिन अस्वस्थ होने के बाद उनकी कविताएँ पड़ी न रह जाए इस डर से वे हर साल में एक-एक संग्रह प्रकाशित करवाते रहे । इस तरह हम 'गीत-फरोश' काव्य संग्रह से ही उनकी काव्ययात्रा का व्यवस्थित आरम्भ मान सकते है। अब तक प्रकाशित काव्य संग्रहों की संख्या सोलह है ।

(१) 'गीत-फरोश' (१९४६), (२) 'चकित है दु:ख' (१९६८) (३) 'अंधेरी कविताएँ' (१९६८), (४) गाँधी पंचशती (१९६९), (५) बुनी हुई रस्सी (१९७१), (६) 'खुश्बु के शिलालेख (१९७३), (७) 'व्यक्तिगत' (१९७४), (८) 'परिवर्तन जिये' (१९७६), (९) 'अनाम तुम आते हो' (१९७६), (१०) 'ईद न मम्' (१९७७), (११) 'त्रिकाल संध्या' (१९७८), (१२) 'कालजयी' (१९७८), (१३) 'शरीर कविता फसले और फुल' (१९८०), (१४) 'मानसरोवर दिन' (१९८१), (१५) 'जल रही है सड़कों पर बतिर्या (१९८१), (१६) 'सम्प्रति' (१९८२) सन् १९८३ में उनका अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित हुआ । इनके

अनुशीलन से ज्ञात होता है कि रचनात्मकता की एक सी लहरें थोडे बहुत बदलाव के साथ उनकी सृजन शक्ति का साक्ष्य बनकर प्रस्तुत हुई ।

(१) गीत-फरोश :

सन् १९४६ ई. में 'गीत फरोश' नामक नई पुरानी कविताओं का (सुन्दर बगीचा सा) प्रथम काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ । नयी कविता के काल में इतनी सशक्त कविताओं का एक साथ संकलन इससे अच्छा कोई दूसरा तब तक आया नहीं था, अतः इसकी बडी धूम रहीं । 'गीत-फरोश' कविता मंचों तथा काव्य प्रेमियों के बीच बड़ी लोकप्रिय हुई । इस संग्रह में प्रकृति पर इतनी ज्यादा कविताएँ थी और वे भी एक दम नये ढंग की जैसे 'सतपुडा के जंगल, 'नर्मदा के चित्र', 'सन्नाटा', 'आषाढ़', 'मेघदूत' आदि आँखों के सामने तैरने लगती है । पढ़कर ऐसा लगता है की मानों हिन्दी कविता ने अपना खोया हुआ रूप फिर से प्राप्त कर लिया हो । अपनी निजी अनुभूतियों को 'घर की याद', 'बाहिर की होली', 'तेरा जन्म दिन' जैसी कविताओं में इस ढ़ग से व्यक्त किया है कि उनकी स्मृतियों के बिम्ब बादलों में तश्ति से कौंध उठते है । इस काव्य संग्रह ने यह सिद्ध कर दिया है कि कविता को सार्थक बनाने के लिए जीवन के बृहत्तर और महत्त्वपूर्ण अनुभवों को सहज सरल भाषा में रखना उसे प्रेषणीय बना सकता है । मानवीय सृजनात्मक क्षमता के नये-नये आयामों के लिए यह आवश्यक है कि कवि सही रूप से जमीन पर खड़ा हो और उसे सही खुराक मिले । 'गीत-फरोश' कविता संग्रह की कितनी ही कविताएँ अनेक-बार कवि सम्मेलनों के मंच पर, गोष्ठियों और आकाशवाणी केन्द्रों से पढ़ी

गयी है । परन्तु जब-जब ये कविताएँ पढ़ी गयीं तब-तब श्रोताओं ने इन्हें रूचिपूर्वक सुना और हर बार एक नया चित्र उपस्थित किया । यह पाठ्य काव्य के साथ-साथ श्रव्य काव्य भी कहा जा सकताहै । कवि की यह धारणा है कि जो केवल पाठय काव्य है वह काव्य दीर्धजीवी नहीं हो सकता । मिश्रजी एक स्थल पर स्वयं कहते है - ''तुलसीदास यदि श्रव्य न होते, कथावाचक गाँव-गाँव में कथा न करते घर-घर तुलसीदास का पाठ न होता हर साल जो रामलीला के रूप में मंचों पर दूहरायी नहीं जाती, तो उनकी भी वहीं गति होती जो जायसी के 'पदमावत्' की हुई ।''[१२] एक इसी तरह 'गीत-फरोश' की कविताएँ जगह-जगह पढ़कर सुनाई जाती है । इस संग्रह की 'गीत-फरोश' शीर्षक कविता सर्वाधिक लोकप्रिय हुई है । 'गीत-फरोश' नामक संग्रह की सबसे प्रमुख विशेषता कविताओं में बोल चाल है संवाद है, शब्दों को एक-दूसरे के साथ जोड़ने की ताकत है । जिसका जीता जागता चित्र इनकी कुछ पंक्तियों में मिलता है ।

''जी हाँ ! हुजुर में गीत बेचता हूँ
मै तरह-तरह के गीत बेचता हूँ,
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूँ....''

x x x x x

''जी गीत जनम का लिखूं, मरण का लिखूं
जी गीत जीत का लिखूं शरण का लिखूं,
यह गीत रेशमी है, खादी का है,
यह गीत पित्त का है, बादी का ।''[१३] (गीत-फरोश)

इस संग्रह की अंतिम कविता 'गीत-फरोश' है, जिसके नाम पर संकलन का नामकरण हुआ है । यह कविता भवानी प्रसाद मिश्र की विशिष्ट उपलब्धि है । पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था पर इसमें करारा व्यंग्य है । कवि इसमें गीत-फरोश हो गया है । घर-घर जाकर गीत बेचनेवाले की भूमिका पर यह कविता लिखी गयी है और पूरी नाटकीयता के साथ मिश्रजीने इसमें उसका वर्णन प्रस्तुत किया है । कवि की लाचार और विवश वाणी इन शब्दों में अभिव्यक्त हुई है ...

"जी हाँ । हुजुर में गीत बेचता हूँ ।"

इनकी अन्य कविताओं को देखे तो कवि ग्रामिण आर्थिक-परिवेश से इस प्रकार प्रभावित हुए है कि - "अभावग्रस्त शिशु माँ की छाती से चिपटे है और माँ चक्की पीस रही है । गाँव इसमें झोपड़ी है घर नहीं है ।" यह 'गाँव' नामक कविता सन् १९३७ ई. की रचना है । जीस में भारतीय उद्योग-धंधे नष्ट कर अंग्रेज अपना माल भारत में डाल रहे थे । गाँवों की करूणा पूरी कविता में मानवीय संवेदना के साथ ग्रामीण दर्दूशा का यथा-तथ्य चरित्रांकन हुआ है -

"गाँव इसमें झोपडी है, घर नहीं है,
झोपड़ी की फटकिर्या है, पर नहीं है,
धूल उठती है, धूएँ से दम धूटता है,
मानवों के हाथ में मानव लुटा है,
सो रहा है शिशु कि मां चक्की लिए है,
पेट पापी के लिए पक्की किये है
फट रही छाती ।"[१४] (गाँव-गीत फरोश)

निश्चय ही मिश्र जी का यह ग्राम्य वर्णन भारतीय ग्रामों की दु:खद स्थिति का यथार्थ चित्र उपस्थित करता है । 'दैनिक' कविता में आज की अमानवीय, असंतुलित और अमर्यादित जीवन स्थितियों पर तीखा व्यंग्य है । 'नववर्ष' रचना में कवि ने ईश्वर से याचना की है कि वह हमारे भीतर विचारों की ज्वाला प्रज्ज्वलित कर दे जिससे असमय ही हमारी अस्मिता नष्ट न हो जाये तथा भाग्य पर असमय ही क्रंदन न करना पड़े –

''उठे हम और उठ जाये जगत से भाग्य का रोना
सुलग उठे हमारे प्राण की भटट्ी कि तब गल जाये यह सोना
कि जिसकी नींव पर पशुता
हवेली बाँध सिर ताने खड़ी है ।''[१५]

'सत्यकाम' कविता मानवीय धरातल पर गाँधीवादी चेतना की पुकार है । कवि ईश्वर से आशीष चाहता है कि उसकी जीवनधारा अभय हो, वह लहरो से जुझे अवश्य किन्तु, उसके ओठों पर फरियाद की भाषा न हो । यथा –

''कभी प्रलय के क्षण मे,
प्रभु से रखो न निर्बल आशा ।
आने पाये नहीं होठ पर
भीख मांगती भाष ।''[१६]

कवि इस संग्रह में यह भी आशा एवं अभिलाषा व्यक्त करता है कि यदि वह संसार के निमित कुछ भी काम आ सका तो अपना जीवन धन्य मानकर प्रभु के प्रति निवेदित होकर प्रसन्न होगा । कवि के शब्दों में –

''कितने ही भवानी यहाँ आये है, गए है मुर्ख,
तेरी ही न दूनिया में गीत कुछ नये है मूर्ख
तेरा स्वभाव यदि दु:ख से भर आने का है
सावन के बादल-सा यदि नभ भर में छाने का है ।
मंगल-विधाता के चरणों में माथा टेक,
तेरे प्रयत्न से प्रसन्न हुआ कोई एक ।''[१७]

इसके साथ ही 'गीत फरोश' की अन्य कविताओं में देश-प्रेम, भक्ति-दर्शन और उपदेश के स्वर भी मिलते है । सहज और सरल भाषा में इतनी सशक्त रचनाए हिन्दी साहित्य में कम देखने को मिलती है ।

२. चकित है दु:ख :

स्वतंत्रता प्राप्ति के अनन्तर भवानीप्रसाद मिश्र का दूसरा काव्य संग्रह है - 'चकित है दु:ख' जिसमें कविने अपने जीवन के समस्त भाव-अनुभावों के सत्य को प्रस्तुत किया है। इस संग्रह की रचनाओं में व्यष्टि का सुख-दु:ख समष्टि में लीन हो गया है तथा आजादी के बाद का टुटता-बिखरता भारत 'चकित है दु:ख' की कविताओं में धुम रहा है । इसकी कुछ रचनाओं में एक ओर धोर व्यक्तिवादी चेतना के विरूद्ध सामाजिक स्वातंत्र्य की अनुगूंज है तो दूसरी ओर युगानुरूप शाश्वत जीवन-बोध की मधुर आवाज भी है । कुछ कविताये निर्माणपरक दायित्व लेकर प्रस्तुत हुई है तो कुछ में जीवन का अवसाद और क्षोभ भी अभिव्यक्त हुआ है ।

'चकित है दु:ख' में कवि की दृष्टि युगीन संदर्भो तक ही सीमित नहीं है प्रत्यत जीवन के अंतिम छोर तक उसका फैलाव है । उनकी चेतना यहाँ नये सिरे से उद्‌घाटित हुई है । जीवन की कटु अनुभूतियों ने कवि के सामाजिक यथार्थ को गति दी है और उसके तेज को बल दिया है । कवि की एक-एक पंक्तियाँ, उसके शब्द हर शब्द गहन-अंध में भटके निश्चेष्ट प्राणों के लिये ललकार है । कवि का कथन है कि व्यक्ति प्रत्येक परिस्थिति में सामाजिक परिवेश से बंधा है । समाज या समुदाय से हटकर वह कुछ नहीं कर सकता । इसी लिये वह मानव-समाज को जन-जीवन के बीच आने की सलाह देता है । कवि की यह वैचारिकता उसकी ''अदेय यह सपना'' नामक रचनामें दिखाई देती है, जहाँ कवि का स्पष्ट दृष्टिकोण है कि -

''उठो इस एकांत से
दामन छुड़ाओ महज इस शांत से
चलो उतरकर नीचे की सड़क पर
जहाँ जीवन सिमटकर बह रहा है
साहस की दिशा में
जहां अतर्कित प्रेम है
कठोरताओं पर तरल है
सबके बीच में जीवन सरल है ।''[१८]

इस संकलन मे मानवीय संवेदना और उसकी निष्ठा से सम्बन्धित गीत भी है । यहाँ कवि हमारे अहं को वयं में परिवर्तित होते देखना चाहता है । मानवी अपनी यश और लिप्सा का जीता - जागता उदाहरण है । अपनी यश: गाथा में डुबा हुआ वह केवल आत्मश्लाधा

का शिकार है । प्रस्तुत रचना में कवि इन मान्यताओं का विरोध करता है, जहाँ व्यक्ति केवल अपनी ही आत्म-श्लाधा में डुबा है तथा संकीर्णता के कारण दूसरों की महत्ता व इयता को स्वीकार नहीं करता । कवि की मानसिक वेदना यहाँ छटपटाती हुई दिखाई देती है । संग्रह की कुछ कविताये ऐसी भी है, जिसमें कवि की उदासी और निराशा रूपायित हुई है । कवि का क्षोभ समाज की उन परिस्थितियों पर है जिनमें कविता, आस्था तथा चेतनादि के लिये आज की परिस्थितियों में कहीं कोई गुंजाईश नहीं है । उन्हें कोई भी आदमी 'आदमकद' (आदमीयत की ऊँचाईवाला) नहीं दिखाई देता । यथा-

''ना निरापद कोई नहीं है
ठीक आदम कद कोई नहीं है ।
न तुम, न में, न वे,
कोई है, कोई है, कोई है,
जिसकी जिंदगी दूध की धोई है
ना दूध किसी का धोबी नहीं है ।''[१९]

डॉ. रामाधार शर्मा का विचार है कि ''मिश्र जी के काव्य में आस्था के सभी आधार टूटे नहीं है । निराशा की तरंगों के भीतर जीवन की सप्राण धारा बहती रही है । जीवन के जलते हुए पथ पर कवि को प्रेम की छाया प्राप्त है । प्रेम को मिश्रजी ने जीवन शक्ति के रूप में स्वीकार किया है ।''[२०] यथा -

''इस एकाकार शून्यता में
तुम भर दीखती हो

गिरस्ती समेटे
बचाये कुंकुम
जलते हुए माल पर ।''[२१]

व्यंग्य मिश्रजी की कविताओं की विशिष्टता है । 'चकित है दु:ख' में बहुत थोड़े पर चुभने वाले व्यंग्य मिलते है, नये कवियों से वे कहते है –

''तुम्हारा कुछ ठीक नहीं है
अहसान तुम दिनभर में
जाने कितने लेते हो, मगर लेते इस तरह हो,
जैसे दे रहे हो कमबख्त समाज को अपना कन-कन
अहसान किसी का यहाँ तक कि
अपने पैदा होने का तुम नहीं मानते ।''[२२]

इस संकलन की कुछ रचनाये कवि को मृत्यु से साक्षात्कार और संत्रास की स्थिति का बोध भी कराती है । ऐसी रचनाओं में कवि को पास आती हुई वृद्धावस्था का तीव्र बोध हो रहा था । 'समझा हूँ' शीर्षक कविता में वह एक चींटी के माध्यम से इसकी अभिव्यक्ति दे सका है । कवि ने चींटी के महा-प्रयाण के माध्यम से संत्रास और त्रासदी का भयानक चित्र अंकित किया है । कवि की मृत्यु कामना भी कई स्थलों पर स्थापित हुई है, किन्तु गीता के 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचनम्' से प्रभावित कवि अपराजेय आत्मा को फिर से प्राप्त करना चाहता है, जिससे यह शरीर नव्य, नवीन वस्त्र धारण कर सके । यथा –

''आत्मा मेरे उठो, रूके व रहो अब और
यों कि घेरे रहे तुम्हे यह शरीर
जलाता हुआ ओर - छोर
काली धनी रात का ।''[२३]

'चकित है दु:ख' में कवि की अभिव्यक्ति बडी सहज, सरल और अनायास है ।

३. अंधेरी कविताये :

'अंधेरी कविताये' भवानीप्रसाद मिश्र का तीसरा काव्य संकलन है । जो १९६८ में प्रकाशित हुआ । इस काव्यसंग्रह में कुछ छोटी कुछ बड़ी उनकी पचपन कविताये संकलित है । संग्रह की रचनाओं में निराशा और उदासी के स्थान पर आशा और उल्लास की किरणे है । मृत्यु की पृष्ठभूमि में लिखी गई ये कवितायें वस्तुत: जीवन की उजली व धवल कविताये है, इन कविताओं के बीच कवि की अस्मिता उद्घाटित होती है तथा कवि का थका हुआ शरीर और अवसाद में डूबा हुआ अंतस यहां ऐसी दृष्टि पाता है जो सब कुछ आलोकित कर देता है । अवसाद और निराशा को दूर ढकेलते हुए इन कविताओं में कवि सर्वथा नये, सुंदर और सहज संसार में प्रवेश करता है । श्री यदुनाथ सिंह लिखते है कि ''अंधेरी कविताये' एक ऐसी मन:स्थिति की सृष्टि है, जिसमें उजाले से अंधेरे में जाने की आकांक्षा, एक सेतु का काम करती है, जिसमें एक ओर कवि का आलस्य है और वह उसके जीवन को एक पूर्व निश्चित धारणा से अनुरूप अग्रसर करने के लिये दबाव डालता है । दूसरी ओर कवि का परिवेश और जीवनप्रवाह

अपने सशक्त आग्रहों के साथ उपस्थित है । दोनों के बीच विपर्यय न होने के बावजूद संगति के सूत्र अत्यंत सूक्ष्म है । कवि की अस्मिता पलायन और जीवन के साथ संलग्नता के द्वन्द्व में जिन आयामों के साथ उद्घाटित होती है, वे अपने आप में बिलकुल नये और अछूते है ।''[२४] कवि की भी अवधारणा है कि उसकी भावनायें, संवेदनायें और आत्मचिंतन की भूमि का अंत निराशा के अंधकार में नहीं होता किन्तु सहजता, जागरूकता और जीवंत सक्रियता में होता है । इसी कारण वह अपनी धवल मानसिकता और सूक्ष्म अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने की जोखिम स्वीकार करते हुए कहता है -

''ख्याल जो कभी
बना नहीं है
मन जो अभी
मना नहीं है
दू:ख जो अभी
धना नहीं है
शब्दों में कहना है
और कहता है अभी
शुरू किये देता हूँ
तमाम जोखिमें ली है
एक और
जोखिम लेता हूँ ।''[२५]

पं. भवानी प्रसाद मिश्र इस काव्य संकलन में एक विशिष्ट भूमिका में है और वह भूमिका है प्राकृतिक - सौदर्य से दूर जीवन से सीधे

साक्षात्कार की । कवि यहाँ पहुंचकर प्रकृति के राशि-राशि धवल सौंदर्य और उसकी रंगीनियों में खोना नहीं चाहता बल्कि जीवन से सीधा और सच्चा सम्पर्क चाहता है । यही कारण है कि कवि को शैलमालाओं से अधिक सुंदर हल के बैल ढीलते हूए किसान तथा पगदंडी पर खेतों से लौटती कृषक औरतें प्रतीत होती हैं । वह उसमें निर्माण की श्रृंखला देखत है, इसलिए तो कहता है कि -

''सिर पर बोझा लिये जा रही है एक औरत
कंधे पर हल धरे लौट रहा है एक किसान
निर्माण खुद तुम हो
जितनी देर तुम हो
उतनी देर निर्माण है, शांति है, समय है ।''[२६]

इस संग्रह में सामान्य जीवन की पूरजोर पकड़, परिवेश के प्रति लगाव और मानव-मूल्यों के प्रति प्रतिष्ठा के भाव कवि की नजरों के सामने रहे हैं । 'संग्रह के खिलाफ' रचना में उनकी यह दृष्टि द्रष्टव्य है । तेज बहती हूई हवा, राहमें चलता बूढ़ा राही और व्यर्थ शलियारीमें भौकते हुए कुत्ते कवि को लिखने नहीं देते । यह सब संग्रह के खिलाफ है । कवि अनुभव करता है कि कविता लिखने से ज्यादा जरूरी है भौंकते हुए कुतों से राहगीर की रक्षा करना । उनकी मान्यता है कि जब तक बूढ़े आदमी को - 'सुरक्षित जगह' में पहूँचाकर मानवीय व्यवहार न दिया जाये, तब तक कविता लिखने की साधना अधूरी है । यहाँ कवि का प्रतिपाद्य है कि - ''मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है । यथा -

''एक बूढ़ा आदमी
चल रहा है सड़क पर
बदल दिया है उसका रंग
बती के भटमैले उजाले नें
और कुत्ते उस पर भौक रहे हैं ।

जी नहीं होता इन सबके बीच
लिखते रहने का
कुत्तों को भगाऊँ जाऊँ
बूढ़े आदमी को भीतर बुलाऊँ ।''[२७]

अतः अंधेरी कविताये की कई कृतियों में मृत्यु से साक्षात्कार करके कविने जीवन के ठोस सत्य को समझा है । उनकी दृष्टि में कविता के लिये हवा, रश्मि, फूल, प्राकृतिक सौंदर्य ही आवश्यक नहीं, मृत्यु – गहंवर मै बैठकर भी कविता की सर्जन की जा सकती है । तभी तो कवि जीवन को सांसो का एक छंद कहता है । उसे देह का मोह नहीं, वह विश्वास के साथ मृत्यु को अंगीकार करने के लिये भी तैयार है । कवि जीवन के शेष क्षणों को कविता लिखकर इसलिये ''काट'' रहा है कि मृत्यु के बाद पुनः नई देह मिलेगी । वे कहते भी हैं कि फल टपकता है पैंड़ से और जमीन फलों जाकर न जाने कितने नये नये वृक्षो, फूलों और फलों को जन्म देता है । अतः कवि की दृष्टि में फल का टपकना और जमीन में उसका समाहित हो जाना शुभ है, अशुभ नहीं । मौत का सामना होने पर वह धबराता नहीं है वरन् अदम्य साहस और असीम शौर्य का परिचय देता हुआ कहता है –

"घड़ी राख होने की आये
बुरा इसमें कुछ नहीं है
बुरा यह है

कि मन राख होने से धबराये
मैं खुश हूं कि वह नहीं हो रहा है ।"[२८]

अंधेरी कविताये आशा, विश्वास और मानव के भविष्य की महत्तम संभावनायें लेकर उपस्थित हुई है । मिश्रजी की इन रचनाओं में अनुभूति का स्वर उनकी अबतक की रचनाओं की अपेक्षा बहुत प्रखर और सुस्पष्ट है । कविताओं में केवल चिंतन की मुद्दा ये नहीं है, वास्तव में चिंतन एवं आत्मचिंतन है । इसके अलावा अंधेरी कवितायें बहुत ही गहरे निथरे हूए दु:ख की तथा जीवन के अंत से साक्षात्कार की कविताये है किन्तु मिश्रजी ने यह दु:ख कुछ इस तरह आत्मसात किया है कि उसका जो भी अंत कविताओं तक पहुंचता है, वह एक अंतरमन की करूण चीख नहीं बन पाती, उसमें शिशिर की रात के सुदूर बजते हूए किसी अनाम तंतुवाध का संगीत है जो हमारे शरीर पर भय के कांटे नहीं उभारता, एक अकथ उदासी का मौन प्रदान करता है । उसमें हमें कहीं भी धोर निराशा, अतिरंजित भय अथवा मृत्यु-प्रेम नहीं दिखाय देता ।

४. गाँधी पंचशती :

सन्-१९६९ में गाँधी शताब्दी समारोह के शुभ वर्ष पर भवानी प्रसाद मिश्र 'गाँधी पंचशती' लेकर उपस्थित हुए । इसकी अधिकांश रचनाये पुरानी हैं । कहा जा सकता है कि गाँधी पंचशती मिश्रजी की

नयी–पुरानी कविताओं की वह तिजोरी है, जिसमें उन्होंने अपने विचारों की संपत्ति को सुव्यवस्थित ढंग से रखा है । इसमें कविने राष्ट्रपिता गाँधी को अपनी श्रद्धांजली अर्पित की है । इससे कवि के उस चिंतन प्रवाह का भी संकेत मिलता है, जिसको कवि आरंभ से ही आग्रही रहा है । दूसरे सप्तक के वक्तव्य में उन्होंने कहा था – ''दर्शन में अद्वेत का वाद में गाँधी का और टेकनीक में सहज लक्ष्य ही मेरे बन जाये ऐसी कोशिश है ।''[२९] मिश्रजी शुद्ध गाँधीवादी कवि है । इस संकलन में कवि की पाँच सो से भी अधिक रचनाये हैं, किन्तु सभी रचनाये गाँधी या गाँधीवादी दर्शन पर आधारित नहीं है । कुछ तो ऐसी है जिनका गाँधीवाद या गाँधी–दर्शन से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है । उन कविताओं के संबंध मे राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर का विचार है कि – वे गाँधी पंचशती में शायद इसलिये पिरो दी गयी है कि वे गाँधीवादी कवि की रचनाएँ है । गाँधी अथवा गाँधीवादी विचारधारा के अधिक से अधिक पक्षों पर कवितायें लिखनें का मनसुबा कवि का नहीं था ... ऐसी कविताये काफी है, जिनका संपर्क गाँधीजी अथवा उनकी विचारधारा से जोड़ा जा सकता है । लेकिन, ऐसी कवितायें भी कम नहीं है, जो गाँधी विचारधारा की लपेट में नहीं आती । जिनके बारे में केवल यही कहा जा सकता है कि उनके भीतर जीवन की विभिन्न स्थितियों पर एक गाँधीवादी कवि की प्रतिक्रियायें व्यक्त हुई है ।''[३०] कविने भी स्वीकार किया है कि – ''गाँधी पंचशती में मैंने गाँधी पर कम गाँधी के विचारों पर ज्यादा लिखा है, गाँधी के विचार मेरे विचार बनकर कविता मैं उतरे हैं, जो एक बड़ी बात है ।''[३१]

आधुनिक युग में गाँधीवादी – दर्शन को जीवन का आध्यात्मिक आधार माना गया है और भवानीप्रसाद ने अपने साहित्य में इस

जीवनदर्शन को श्रद्धा से स्वीकार किया है । युग पुरूष गाँधी ने अपने कर्म - सौदर्य से बीसवीं शताब्दी के विश्व को जिस गंभीरता से आकृष्ट किया था, उसका असर भारत में नहीं बल्कि पश्चिमी देशों में भी देखने को मिलता है । तब से गाँधी एक व्यक्ति न रहकर समस्त राष्ट्र में व्याप्त एक शुद्ध सात्विक वातावरण के पर्याय माने जाने लगे थे । मिश्रजी ने अपनी गाँधी-विषयक कविताओं में इस वातावरण को ध्वनित और गूजित करने का सफल प्रयास किया है । कवि की मान्यता है कि 'अणु-आयुधों की होड़ में लगे देश यदि गाँधी जी के बताये सह-अस्तित्व और सर्वोदय के सिद्धांत को स्वीकार नहीं करेगें, तो संसार का विनाश अवश्य हो जायेगा । गाँधीजी के सामने संसार के कल्याण का ध्येय था । उनकी दृष्टि में अहिंसा, सत्य, प्रेम और समता के द्वारा ही विश्व कल्याण संभव था ।" वास्तव में गाँधीवाद का भूल-मंत्र ही सत्य और अहिंसा के माध्यम से विजयश्री पाना रहा है । कवि को इस बात का पूर्ण विश्वास है कि गाँधीदर्शन वह पीयूष स्रोत है, जो सुधारस बहाकर बंजर-भूमि को भी शार्दूल - उपत्यका में बदल देगा - इस लिये वह कहते है कि -

"ये कवितायें इस प्रतीति से लिखी जा रही है
कि मेरे देश में कुछ ऐसे गहरे तत्त्व ही नहीं हैं
जो देश के जड़ से जड़ अंगों में समाये हुए है
जिन्हें जरा-सा पानी मिल जाये समय पर
तो देखेंगे आप कि वे सूखें नहीं है हरषाये हूए है
और उत्स तो पड़ा है लगभग खुला गाँधी के विचारों का
उस पर पड़ी एक चट्टान को थोड़ी-सी शक्ति लगाकर

खिंसका - भर देना है बस
कल-कल छल-छल हो जायेगा सब
हरी-भरी उपत्यकाओं में
बदल जायेगें हमारे दशे के बंजर विस्तार ।''[३२]

कविने गाँधीजी के रूपाकार को देखकर 'दर्शन' शीर्षक कविता में उनकी सात्त्विक और आध्यात्मिक वृत्ति को सहजता से उतार दिया है -

''देह तुम्हारी क्षीण, किंतु बलहीन नहीं हो,
तुमसे आत्मा लब्ध हुई तुम दीन नहीं हो ।
साधारण-सा रूप किंतु दीपितश्री ऐसी
इन आँखों को किसी देह में दिखी न जैसी !
पलकें उठती है तो लगता है कि रूका सब,
अंगुली उठती है तो लगता है कि झुका सब ।
तुम्हें देखकर लगता है भारत को देखा
आज़ादी की अंकित है, भारत पर रेखा ।''[३३]

कवि की यह भाव-चेतना गाँधी जी को एक साधान्य साधारण मानव-मूर्ति के रूप में देखना चाहती है । गाँधीजी पर थोपा गया देवत्व का बाना उन्हें किसी भी दृष्टि में उचित नहीं लगता हैं क्योंकि उनकी अवधारणा है कि देवत्व से संपन्न प्राणी अपनी निजी अस्मिता खो देता है । कवि का यह भी कथन है की देवत्व - बोधयुक्त मानव अपना सर्वस्व किसी को नहीं सौंपता, किन्तु गाँधीजी ने लोक-कल्याण और समाज के हित हेतु अपना सर्वस्व सौंप दिया था । यथा -

''तुम्हें देवता कहें तो तुमने
पल-पल पर संघर्ष किया है जो मानव बनने का अपने
अहोरात्रि जागृत प्राणों से
क्रिया-राशि को सहज समन्वित करके ढाले है जो सपने
द्वार-द्वार पर अलख जगाया है जो तुमने
अलख जगाया है तुमने जो गली-गली में
फिर से बुझी-बुझी आँखों में जोत भरी है
यह जो गाँव-गाँव में फिर से
गूंजित हुआ सुदर्शन चरखा
यह जो इनकलाब की वाणी से मुखरित
उपत्यका हरी है ।
तुम कोई देवता हो
शक्ति नहीं होती देवों में
एक साथ इतना देने की ।''[३४]

गाँधीदर्शन प्रगतिशील जीवन से सम्बन्ध है किन्तु, गाँधीजी की प्रगतिशीलता भिन्न है । कवि की अवधारणा है कि प्रगति प्रकृति का चिरस्थायी नियम है, विकासशील है तथा शुद्ध कर्म एवं शुद्ध धर्म से प्रेरित है । कवि यह भी मानता है कि केवल शोषक और शोषित के वर्ग-संघर्ष से प्रगतिशीलता नहीं आती । वर्ग-संघर्ष सामाजिक यथार्थ का पर्याय बनकर अब और अधिक नहीं छल सकता । शुद्ध कर्म और शुद्ध धर्म कभी हिंसा नहीं कराती । जबतक गाँधी-दर्शन के आधार पर उत्तम साधनों का उपयोग नहीं होगा तब तक उत्तम या विशिष्ट लक्ष्य की प्राप्ति भी संभव नहीं । कवि के शब्दों में -

''प्रगति अंश है, गूढ़ प्रकृति के प्रकट मर्म का
इसे वर्ग संघर्ष आदि से पैदा करना
निश्चय ही गतिहत होना है
दिख सकती है प्रगति किसी को कुछ दिन इसमें
किंतु प्रकारान्तर से तो यह मृतवत होना है
प्रगति, साध्य-साधन का सामंजस्य यही तुमने बतलाया
हमने बहुत अधूरे ढंग से
पालन इसका किया, किन्तु फिर भी जो पाया
कितना पाया ।''[३५]

गाँधी पंचशती में कवि की एक रचना है 'साम्यवादी मित्र से' कवि ने इसमें साम्यवादी मित्र से जी खोलकर बाते की है और कहा है कि प्रगतिवादी यदि शोषित-पीड़ित वर्ग से प्रति अपनत्व है, सामाजिक - न्याय का प्रतीक है, तो स्वीकार्य है । आगे अपनी बात को और स्पष्ट करते हूए कहते है कि साम्यवाद यदि ऐसी आर्थिक व्यवस्था है, जिससे व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के बीच शांति कायम होती हो तो वंदनीय है । किन्तु, कवि को उनके सिद्धांत पर शक है । इसी से वे कहते हैं -

''यदि दलित वर्ग के प्रति अपनापन प्रगतिवाद
तो तुम मुझको इस घेरे में ले सकते हो
यदि हो सामाजिक न्याय अर्थ इस हलचल का
तो थोड़ा जिम्मा उसका भी दे सकते हो
यदि प्रगतिवाद उपकरण आर्थिक है कोई ऐसा जिससे
अपना विकास कर सके व्यक्ति बाधा विहीन

यदि राष्ट्र-राष्ट्र के बीच शांति हो ध्येय प्रगतिवादी दल का
तो उस दल का हूँ एक अंग मैं भी अदीन
यदि कहों कि पूँजीवाद खत्म करता है यह
तो एक ध्येय की तरह मुझे वह प्रिय होगा
पर पूंजी छोड़े व्यक्ति राज्य रख ले उसको
तो सोचों फिर यह तत्त्व कहां सक्रिय होगा ।''[३६]

गाँधी दर्शन अन्यायी के खिलाफ जनमत तैयार करता है, उन्हें संगठित करता हैं और जनशक्ति से अन्यायी को हटाना अपना धर्म मानता है । अपने विचारों की व्यावहारिकता को गाँधीजी सिद्ध कर चुके थे और देश उनकी शक्ति से स्वतंत्रता भी पा सका था । इसके अलावा आजादी में क्रांतिधारा का भी हाथ था, लेकिन सर्वोपरि कार्य गाँधी का था । जो गाँधीवाद से यहा अर्थ निकालते है कि एक देश दूसरे देश पर चढ़ाई करे और आक्रांत देश शत्रु का मुकाबला शस्त्र से नहीं, अहिंसा से करे, ऐसा 'गाँधी पंचशती' का कवि सही मानता है तथा पूर्ण विश्वास के साथ कहता है -

''अगर तुम्हे लड़ना है तो लड़ो
हम नहीं लडेगें ।
तुम हमारी सीमा में बढ़ो
हम नहीं बढेंगे ।
मगर अपनी सीमा में हम रहेगें अचल,
सहेगे हम, तुम बरसाओं गोलियां,
हर एक इंच नयी जमीन पर तुम्हें लाशें मिंलेगीं,
लाशें जिन्होंने जिन्दा रहते गोली नहीं चलाई ।''[३७]

गाँधी पंचशती की रचनाओं में सरल, सहज-स्निग्ध भाषा का प्रयोग करते हूए मिश्रजी ने गाँधीजी को उसके सहयोगियों, सहकर्मियों के त्याग, तपस्या की सुंदर झाँकी प्रस्तुत की है । व्यक्ति - विशेष के चरित्र को अंकित न करने का प्रयत्न होने पर भी ज्यादातर रचनाओं में गाँधी-युग की छटा दिखायी देती हैं । ऐसी ही रचनाओं में 'बा' शीर्षक कविता है, जिसमें कस्तुरबा का सादगी से भरा जीवंतरूप दिखाई देता है -

"कुसुमादपि कोमल बापू, क्यों वज्रादयि कठोर हो तुमसे
चाहे जितनी सही रही हों उनकी बाते,
किंतु तुम्हारा त्याग सोचता हूं तो जी थर्रा जाता है
बापू ने तो जो कुछ छोड़ा कितना सोच-समझकर छोड़ा,
मूक्त हो गई वह तो जाकर, किन्तु दुःखी हूँ
उसको खोकर में किस हद तक ।"[३८]

देश की एकता और अखंडता के लिए गाँधीजी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी की वकालत की थी । भाषा में देश की आत्मा होती है, इससे गाँधीजी पूर्ण परिचित थे । व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का विकास राष्ट्रभाषा से ही संभव है, इसी से गाँधीजी के शब्दों में ही कवि अंग्रेजी बोलने वालों से कहते है -

"मेरे फूल बहुत बतियाना अंग्रेजी में बंद करो
यदि माली समझा नहीं निरर्थक मर जाओगे
और अगर वह समझ गया तो कलम तुम्हारी वह बांधेगा
और वक्त के पहले ही तुम झर जाओगे ।"[३९]

'गाँधी-पंचशती' की अंतिम दो-सौ लधु काव्य-कणिकाये 'वचन-छाया' के अन्तर्गत समाहित कर दी गयी है । लधु से लधु रचना भी बृहत् अर्थबोध के गाभीर्य से युक्त है । गहन-चिंतन में डूबी ये काव्य-कणिकायें जीवन के विशाल आधारफलक को प्रस्तुत करती है ।

इस तरह 'गाँधी-पंचशती' गाँध के विचारों पर लिखी गयी एक अति महत्त्वपूर्ण रचना है, जिसमें गाँधी के भारत की समस्त संस्कृति झाँक रही है । गाँधी की इसी गाँधीवादिता को कविने लगभग पांच सौ आठ (तीन सौ आठ कवितायें और दो सौ वचन-छाया) कविताओं में बांधने का प्रयास किया है । 'गाँधी पंचशती' में उनकी कविता का जो स्वरूप प्रकट हुआ है, वह मिश्रजी के प्रखर व्यक्तित्त्व और चिंतन का परिणाम है । निःसंदेह 'गाँधी पंचशती', युग-बोध, भाव-बोध ए वं नवीन दिशा-बोध की दृष्टि से भवानी प्रसाद मिश्र की एक महत्त्वपूर्ण रचना है ।

५. बुनी हुई रस्सी :

गाँधी पंचशती के बाद भवानी प्रसाद मिश्र का पांचवां काव्य-संकलन 'बुनी हुई रस्सी' का प्रकाशन सन् १९७१ ई. में हुआ । इस संकलन में भवानी प्रसाद मिश्र की एक सौ अढाइस चुनी हुई छोटी-छोटी कविताये हैं । इस काव्य संकलन पर मिश्रजी को सन् १९७२ ई. का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था । यह काव्य संकलन कवि की भावनाओं की मार्मिकता और उसकी अभिव्यक्ति के प्रसार में बहुत अधिक सहायक है । इसका वैशिष्ट्य यह है कि इसमें कविने अपनी रचना - धार्मिता के सम्बन्ध में तथ्यों का उल्लेख भूमिका स्वरूप

किया है, जिसका सम्बन्ध कवि और उसकी कविता से है । इसमें कवि का अनुभव संसार आत्म-चिंतन के स्तर तक पहुचा हुआ है । इस संदर्भ में प्रस्तुत काव्य- संकलन के आवरण पृष्ठ पर लिखी पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य है - ''अनुभव हम सबको होते रहते है । और ज्यादातर तो ऐसा होता है कि हमें दबाते रहते है, धेरते रहते है और अकेला पड़ जाना एक उत्सव है । किंतु, उस अकेले पड़ जाने से भीतर-बाहर सब जगह गुंगा हो जाना या समुदायों के अनुकरण में जुट जाना एक मृत्यु है ।''[४०] इसमें संशय नहीं कि मिश्रजी ने अपने शांत अकेलेपन से संघर्षरत रहकर आत्मचिंतन की भूमि पर जो अनुभव प्राप्त किया है उसे उन्होंने शब्दों के द्वारा बाटा और सहज काव्य का निर्माण किया । बुनी हुई रस्सी मिश्रजी की छोटी-छोटी कविताओं का संकलन अवश्य है, पर उसके अत्यंत सीमित कलेवर में भी बाते उन्होंने बहुत विस्तृत और व्यापक रूप से कीए है ।

'बुनी हुई रस्सी' में कवि की प्रतीक बहुला रचनाये है । संग्रह की प्रथम कविता है - 'बुनी हुई रस्सी' इस कविता के आधार पर ही संकलन का नामकरण हुआ है । प्रस्तुत कविता में कवि ने यह स्पष्ट किया है कि 'बुनी हुई रस्सी' को यदि उल्टा धुमा कर देखे तो रेशे अलग-अलग देखे जा सकते है, किन्तु कविता के सारे रेशों को समेट कर देखा जाता है, जो कवि के ठोस अनुभवों का संश्लिष्ट रूप होता है - यथा -

> ''बुनी हुई रस्सी को धुमायें उल्टा
> तो वह खुल जाती है

और अलग, अलग रेशे देखे जा सकते है
इसके सारे रेशे....

मगर कविता को कोई
खोले ऐसा उल्टा...

तो साफ नहीं होंगे हमारे अनुभव
इस तरह....

..... हर बिखरे अनुभव के रेशे को
समेट कर लिखता है ।''[४१]

उपर्युक्त कथन से एक कदम आगे भवानीप्रसाद मिश्र की कविता है, जहाँ वे कविता को अनुभव करने की एक प्रक्रिया मानते है । प्रस्तुत संकलन की भूमिका में वे कहते है - ''मैं कवि नहीं हूँ मैं कविता नहीं लिखता, कविता मुझको लिखती है । मैं कुछ दिनों से कविता को किसी अनुभव की अभिव्यक्ति नहीं मान पा रहा हूँ, बल्कि यह देख रहा हूँ कि वह अनुभव की अभिव्यक्ति का प्रयत्न न होकर अनुभव करने की एक प्रक्रिया है । मुझे लगने लगा है कि कविता अपने को व्यक्त करने का साधन नहीं है, कविता एक तरफ का जानना है, जो लिख चुको तब हस्तगत होता है । कविता लिखने का मेरा उद्देश्य अब यही जानना हो गया है ।''[४२] बुनी हुई रस्सी की लगभग सभी रचनायें इसी अनुभव - संसार से घुली, धवल और निश्चल रचनायें है । कवि का यह मत है कि अनुभवों की व्यापकता, विविधता और महनता अपने संश्लिष्ट रूप में ऐसी कविताओं को जन्म देती है जिसमें सहज मानवीय चिंतन और अनुभूति की अभिव्यक्ति होती है -

''कुछ नहीं होता जीवन में
कविताओं में कुछ होता रहता है
बांधता-खोलता रहता हूँ उनमें
कुछ गांठे सी
शब्दों को कभी लहर कर देता हूँ
पंक्तियों को कभी छंद
कभी कर देता हूँ जैसे द्वारबंद
एकाध शब्द को उढ़का कर
.... ज्यादात्तर उसके घेरे में से निकल पाये,
तो उनमें कुछ होता रहता है ।''[४३]

नयी कविता के कवियों पर बहुधा यह आरोप लगता रहा है कि वे अतिशय बौद्धिक हो गये है । किंतु मिश्रजी की कविताये इस अतिशय बौद्धिकता से सर्वथा मुक्त और सहज है । उन्होंने अपनी रचनाओं में बौद्धिक संतुलन कायम रखने का प्रयास किया है । वे दर्शन और सिद्धांत की बड़ी-बड़ी बाते नहीं कहते लेकिन एक संवेदनशील कवि के नाते सरल और मार्मिक अभिव्यक्ति देते है ।

आदमी अपने विचारों को हंमेशा से सर्वोपरि मानता आया है । किन्तु समाज में व्यक्ति विशेष की रूचि ही सबसे बढ़कर नहीं है । कवि की दृष्टि है कि व्यक्ति के इस सीमित दायरे से आगे जाकर हमें व्यापक चिंतन और मनन की सामाजिक भूमि पर उतरना होगा और परस्पर स्नेह तथा सौहार्द की कामना करनी होगी -

''जो ऐसे बैठे रहते है
या धूमते है अपनी ही रूचियों में
वे नहीं जानते कि आदमी को तो....
बहुत खटना होता है
यहाँ आकाश तक बढ़ना पडता है
यहाँ पाताल तक घटना होता है ।''[४४]

मिश्रजी का यह कथन कि यदि बसंत की रंगीनी हमें दिखायी नहीं देती तो इसका अभिप्राय यह नहीं कि धरती पर कहीं बसंत है ही नहीं । हम अपनी हताशा और निराशा को दूसरों पर आरोपित नहीं कर सकते । यदि हमें जीवन की समशता को समझना है तो हमें सामाजिक परिवेश से जुड़ना होगा । जो लोग समाज से अलग रहकर कमरे में बैठकर मन के अवचेतन के अनुसार तुरंत निर्णय लेते है, उनका दृष्टिकोण नितांत निजी और एकांगी होता है । स्पष्ट है कि भवानी प्रसाद मिश्र अपने काव्य-वितान में विराट आधार-फलक लेकर चले है । उनहोंने जो भोगा है, देखा है, सो लिखा है । 'बुनी हुई रस्सी' की कवितायें कवि के जीवन की समग्रता की सहज अभिव्यक्ति है । शायद इसीलिए अपनी कविताओं में, वे, मैं, मेरे और तेरे में कोई अंतर नहीं मानते । उनके इस व्यापक सत्य की व्यंजना निम्न पंक्तियों में सुनाई पड़ती है -

''फर्क नहीं कर पा रहा हूँ मानों
धने कुहरे - जैसे इस अंधेरे में
मै मेरे और तेरे में
और यह परिस्थिति

दर्शन से नहीं
अदर्शन से पैदा हुई है ।"[४५]

वे भारतीय सभ्यता और संस्कृति के परम हिमायती है । कवि का मत है कि विदेशी अंधानुकरण पर आधुनिकता का नशा हमारे बौद्धिक दिवालियेपन का प्रतीक है । फैशन और आधुनिकता के नाम पर अपनी वैभवशाली संस्कृति को तिलांजली देना, पाश्चात्य शैली पर आधारित क्लबों में डांस करना, सुरा-सुंदरी में डुब जाना हमारी संस्कृति व आचरण के विरूद्ध है । कवि कहता है कि वास्तव में इस तरह का जश्न मनाना अपनी सुसंस्कृति को दफन करना है ।

इस संग्रह कि कुछ कवितायें मृत्यु का साक्षात्कार भी प्रस्तुत करती है । जन्म और मृत्यु प्रकृति के शाश्वत नियम हैं । कवि इस तथ्य से पूर्ण परिचित है । कवि की यह आकांक्षा है कि उसके मन का विस्तार सबसे योग्य बना रहे । वह आजीवन जन-जीवन से जुड़ा रहे । कभी-कभी वह सोचता है कि उसने अपने जीवन में ऐसा कुछ नहीं किया है, जिस पर वह गर्व कर सके । वह सोचता है कि उससे तो अच्छे पत्थरों पर लिखे - खुदे नाम है, जिन्हें लोग चाहे - अनचाहें या इच्छा-अनिच्छा से पढ़ लेते है, पर हमें कौन पढ़ेगा, जो किताबों में बंद है । फिर भी, कवि को यह विश्वास है कि एक दिन ऐसा आवश्य आयेगा जब उनकी कवितायें अपनी अलग राह बनाकर अपने महत्त्व की इयत्ता को प्रकट कर सकेंगी -

"अनन्त की शाखा से
टूट कर पत्ते की तरह
बह गया जो ख्याल

कि ख्याल जो धूप गया है अभी
आखिर मेरा है
बनाकर राह इन सबके बीच से –
फिर दिखने लगेगा
पानी पर अबतक से अनजानी
कहानी लिखने लगेगा ।''[४६]

इस तरह भवानी प्रसाद मिश्र का पूरा कवि व्यक्तित्व 'बुनी हुई रस्सी' की कविताओं में बोल रहा है । प्रस्तुत काव्य संकलन में मिश्रजी की कविता का वर्ण–वर्ण जीवन की रागात्मक अनुभूतियों से बंधा है तथा अनुभवों की बुनावट का ढंग काफी अच्छा है । कवि की इन विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने लिखा है कि – ''कविताओं में कवि बांसुरी की तरह बजता है, नर्मदा की तरह रहता है, पवन की तरह चलता है और पत्ते की लय में बंधकर रचता है । एक आदिम सुगंध के बल पर जीने की जिजीविषा ने कविता में एक ऐसा नाद उत्पन्न कर दिया है, जो मोहता भी है और रीझता भी ।''[४७] कवि का यह वैशिष्ट्य उसकी कविता की सहज भाषा के कारण है । 'बुनी हुई रस्सी' का कवि भाव और भाषा की दृष्टि से सहज है, इसमें संदेह नहीं ।

६. खुशबू के शिलालेख :

सन् १९७३ में प्रकाशित 'खुशबू के शिलालेख' में भवानी प्रसाद मिश्र की बाईस कवितायें संकलित है । यह कवि का छट्टा काव्य संकलन है । इसमें कवि की पांच लंबी कवितायें समाविष्ट हैं जो

विचारों के प्रवाह एवं स्वस्थ चेतना की अभिव्यक्ति में हिन्दी काव्य में अति विशिष्ट है । संग्रह को देखकर लगता है जैसे कवि को आदमी की अपराजेय शक्ति और साहस पर अटूट विश्वास है और ठीक इसके विपरीत अकर्मण्य और गतिहीन जीवन से उन्हें भारी क्षोभ है । उनका मानना है कि आदमी के पास काल से अलग हटकर एक दिव्य जीवन-दृष्टि है, जो सर्वथा स्वतंत्र है । कवि यह आस्था व्यक्त करता है कि जब व्यक्ति - व्यक्ति के बीच आस्था के स्वर छूट रहे है तब आवश्यकता है जीवन से जुडने की, वर्तमान से संपृक्त रहने की, इसलिए कवि चाहता है कि हम वर्तमान से जुड़े रहें, तब जीवन में उठनेवाले अंतहीन तूफान हमें उखाड़ नहीं सकेगें, हमारी इयता को छीन नहीं सकेंगे, क्योंकि धरती, आसमान, सागर - सबके मनचाहे सृजन में व्यक्ति समर्थ है ।

कविने संग्रह की भूमिका भी कविता के रूप में दी है, जिसे उन्होंने 'प्रारंभिक' कहा है । कवि की यह एक बहुत सशक्त और मार्मिक रचना है । इस कविता में कवि आत्म चिंतन एवं विश्लेषण के फलक पर जीवन की उस निन्द्वन्द्व स्थिति का चित्रांकन करता है, जहाँ राग-द्वेष से रहित और निंदा - स्तुति से परे सजग गीतों की वह कामना करता है । दर्द कवि के लिए एक व्याज-मात्र है । भीतर का ताप कर्मो की रेखा से शीतल होता है और स्नेह के सागर में तथा अखिल सृष्टि की पीड़ा में कवि स्वयं को समाहित कर देता है । यथा-

''भीतर का ताप सहो
उसे शब्दों में मत कहो

शीतल उसे करो
कर्मो की रेखा में
सेवा की शिखरिणी से...
स्नेह के समुन्द्र तक –
उसको उतरने दो....।''[४७]

'खुश्बू के शिलालेख' जिस पर काव्य-संग्रह का नामकरण हुआ है, संग्रह की विशिष्ट कविताओं में एक है । इस काव्य संकलन के सम्बन्ध में दिनकर सोनवलकर का कथन है कि – ''हिन्दी की लम्बी कविताओं के संकलन में इसे महत्वपूर्ण स्थान देना ही होगा । मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' यदि समकालीन जीवन की त्रासदी का दस्तावेज है तो 'खुश्बू के शिलालेख' मनुष्य की आत्मीय चेतना के उन्नयन का उद्घोष है ।''[४८] यह ध्यान देने योग्य है कि खुशबू के शिलालेख का साहित्यिक वशिष्ट्य प्रकृतिकाव्य का नव्य नवीन और आधुनिक आयाम प्रकट करने में है । यहाँ तक पहुंचकर कवि अपने शब्द देवता से आदिम-सुगंध मांगता है ।

'एक तरफा वातचीत जीवन के प्रमुख से' शीर्षक कविता में कवि का आत्म-साक्षात्कार प्रस्तुत हुआ है । अपने थके और जीर्ण-शीण शरीर से कवि यह अनुभव करता है कि सांसारिक देह से वह मुक्त हो जाये तो अच्छा होगा । बार-बार के हृदयाघात ने उन्हें थोड़ा अशांत कर दिया है । इसीलिए वह जीवन के विरूद्ध होकर जीवन के प्रभु से मृत्यु का निवेदन करता है । कवि सामाजिक वैषम्य और उसकी उष्णता से भी अशांत-आक्रांत है । वह देखता है कि एक और आकाश के सितारों से अधिक आदमियों की संख्या है, जिस

कारण समाज में रोटी का प्रश्न ज्वलंत है और दूसरी ओर पुजा - अर्चना के नाम पर दूध से अभिषेक होता है । यथा -

''तुम्हारे लिए जुटाये गए है
पुजा के नाम पर
फूल और रत्न
और शराब और खुन
अभिषेक होता है कहीं तुम्हारा दूध से
कहीं काटे जाते है सिर तुम्हारे लिए
पशुओं के और आदमियों के
लड़ते है तुम्हारा नाम लेकर लोग
और तो और मेरे ही देश में ।''[४९]

यहाँ कवि की मानवतावादी दृष्टि बड़ी व्यापकता के साथ उद्‌घाटित हुई है । कवि इन पंक्तियों में यह स्थापित करना चाहता है कि वास्तव में आदमी का आदमी बनना बड़ा कठिन है । इस संबंध में उनका दृष्टिकोण है कि आदमी का सही अर्थ है - दूसरों के दु:ख-दर्द को समझना और उसमें सहभागी होना । जो आदमी अपने सुख-दु:ख से ऊपर उठकर सहज जीवन जीता है, दया, माया, ममता, करूणा आदि मूल्यों को समझता है, वह श्रेष्ठ है । वह कहते है -

''जीना चाहिये सहज
बनना चाहिये मगर बड़ा नहीं
आदमी का बनना असल में
उसकी रूचियों का बनना है

दया और करूणा और ममता
कोई ऐसी चीजें नहीं है
जिन्हें हम मुट्‌ठी में धरें
या जेबों में भरें फिरें
और फेकें जहाँ-तहाँ लोगों पर ।''५०

इस कविता का अंत जीवन की एक जीवंत आस्था में हुआ है, जो यथार्थ - बोध से युक्त है । संकलन की अंतिम लम्बी कविता 'शब्दों के तल्य पर' है । यह कविता हमारी भावनाओं को अंतिम ऊँचाई तक ले जाती है । इस कविता में भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने कवि की उस चरम अभीप्सा को व्यक्त किया है, जो सर्वकाल के किसी भी महाकवि की परम सिद्धि का लक्ष्य हो सकती है । यानी कि कवि के शब्द की अंतिम सार्थकता इस बात में होती है कि उसका लिखा शब्द यांत्रिक हो । वह मात्र शब्द न रह जाये, बल्कि अपने को अतिक्रांति करे अपनी उद्‌गम-स्वरूपा, अर्थातीत ध्वनि में मुक्त होकर, सृष्टि में अपने भाव-बोध को मूर्त कर दे । कवि अपनी अभीलाषा को व्यक्त करते हुए कहता है -

''आकाशवाणियां लगने लगे
छोटे-बड़े पक्षियों के गीत
अनधीत भी तत्त्व
मुझ पर अपनी आत्मा खोल दें
कल्पनायें आकाश से उत्तरकर
धरती भर अपने डैने तौल दें
और लगने लगे कि अब

ऊपर उठने ही वाली है सारी पार्थिवता
शिवता जब जहाँ नजर डालूं
वहीं दिख जाये
तब कोई एक ख्याल जो मेरा है
सार्थक हो और लिख जाये
सूर्योदय हर संदेह की रीढ़ में ।''[५१]

और कविता के विस्तार में, कवि आगे अपने अबतक लिखे शब्दों को सिद्ध नहीं मानता प्रत्युत सिद्धि के उस शिखर तक पहुँचनें की एक मात्र रचना- प्रक्रिया मानता है । अपने काव्य की अंतिम अभीष्ट-सिद्धि को कवि, कविता के शेष में सारांशित करता हुआ कहता है -

''मेरे शब्द पहले खुले - खुले से थे
अब है ढंके - ढंके से
तीसरी जो अवस्था है रहस्य की
चाहता हूँ वे अब उसे लेकर
मेरे भीतर उतरे
बचे नहीं अब
मेरे पास कहने लायक दिन
कहने लायक रातें इसलिए
कुटिया में केवल अब शीत-ताम-वर्षा से
बचूं नहीं
रचूं अपने आस-पास के रहस्यों को
समेटकर नयी-नयी किरनें

खुलें मुझ पर रितुएं
साधक के मन में खुलनेवाले
मंत्रों के रहस्यों की तरह
लिख दूं किसी पंक्ति में वृक्ष
तो पूरी की पूरी सतह हरहराये
या मेरी कविता के वन का वातावरण
वातहीन क्षण की तरह
स्तब्ध हो जाये ।''[५२]

इन पंक्तियों में कवि के शब्द को एक सहज और अमोध काव्याभिव्यक्ति प्राप्त हूई है । कवि बिना किसी दबाव या तनाव के यहाँ अभीक स्थिति में आ गया है । इस संग्रह की लधु कविताओं में सामने का बकुल, मिलता-जुलता बेवक्त की शहनाई, तीनों अच्छी हैं, दिन तक की राते, पक्के घर पक्के आदमी, कितने दिनों चार चाँद और दरिद्र दृश्यों के बीच आदि महत्त्वपूर्ण रचनाये हैं । इससे स्पष्ट है कि 'खुशबू के शिलालेख' में भवानी प्रसादमिश्र की सृजन-क्षमता यहाँ शिखर पर है और वह एक साथ सौन्दर्य और आनंद की अनुभूति देता है । कहा जा सकता है कि भावना, वैचारिकता और ध्वनियों, के सूक्ष्म अर्थो की त्रिवेणी है - 'खुशबू के शिलालेख'

७. व्यक्तिगत

व्यक्तिगत काव्य संकलन का सम्पादन १९७४ ई.स. में हुवा । इस काव्य-संग्रह की अधिकांश कवितायें स्वभाव में 'बुनी हुई रस्सी' तथा 'खुश्बू के शिलालेख' से मेल खाती है । इस संकलन की रचनाये भी बीमार बिस्तर की जीवंत व सधी हूई कविताये हैं । स्वयं कवि

का कहना है कि ''उन दिनों मैं बिस्तर पर रहता था । इसलिये कविताये मन में धूमती रहती थी।' संग' की कुछ रचनाये ऐसी भी है जिसमें लगता है जैसे अध्येता कविता के साथ बोल-बतिया रहा हो । यहाँ कविने अपने व्यक्तिगत जीवन के स्वप्नों को रूप देने के लिये कवितायें नहीं की है प्रत्युत संकलन की प्रत्येक कवितामें उन्होंने राष्ट्र और समाज की पीड़ा को स्वर दिया है । कवि का व्यक्तिगत भी कितने विशाल और व्यापक 'कैनवास' पर हो सकता है, इसका प्रमाण ये रचनायें है । प्रश्न उठता है कि सामाजिक और जागतिक भावों का कवि व्यक्तिगत कैसे हो सकता है ? यों, कवि ने कहा है कि - ''मैं अनुभव करता हूं कि आज की समूची कविता का स्वर नैतिक है और नीति तो एक से मिलकर दूसरे तक जाती है इसलिये आज के व्यक्तिगत से व्यक्तिगत कविता की आत्मा सामाजिक है, सामाजिक ही नहीं जागतिक है ।''[५३] कविने संकलन में अपनी जीवन-दर्शन का संकेत दे दिया है । संकलन की पहली कविता ही उदारणार्थ देखी जा सकती है, जहाँ कवि प्रकृति के संपूर्ण परिवेश को एक विराट स्तर पर देखता है - यथा -

''मैं कुछ दिनों से
एक विचित्र
सम्पन्नता में पड़ा हूँ
संसार का सब कुछ
जो बड़ा है
और सुंदर है
व्यक्तिगत रूप से मेरा हो गया है ।''[५४]

उल्लेखनिय है कि 'व्यक्तिगत' की कवितायें लय में जीवंत स्वर में सम्पन्न और शिल्प में सुधड है । कवि–कर्म के प्रति सहज सजगता की भावना यहां दिखाई दे जाती है और ऐसा प्रतीत होता है मानों कविता अपने भीतर से समग्र जीवन को रूपायित कर रही हो । यहाँ अपनी मान्यताओं के अनुरूप वे काव्य–सृजन कर सके है । संवेदना की सूक्ष्म पकड़ और परिवेश के प्रति जागरूकता के कारण ही कवि सामाजिक परिवेश का सूक्ष्म एवं जीवंत चित्रण कर सका है । डॉ. संतोषकुमार तिवारी ने कहा है कि – ''कवि नम्रता, अश्लीलता अवचेतन की कुंठाओं से बचकर अपनी अभिव्यक्ति देना चाहता है । न तो वह फ्रांयड का शिकार होना चाहता है और न अनास्था का गायक । वह अपनी आदर्श अभिव्यक्ति देना चाहता है ।''[५५] कहा जा सकता है कि नये कवियों में मिश्र जी सर्वाधिक शील और आदर्श के कवि है । जैसे –

''अभिव्यक्त करना अपने को
एक बात है
उघाड़ा होना दूसरी बात
दूसरी बात को हमेशा
बचाना चाहता रहा हूँ
मेरा शब्द गाये
अंदर – बाहर सब कुछ
मगर संभालकर शील को ।''[५६]

'व्यक्तिगत' के कई चित्र पारिवाररिक आत्मीयता का बोध कराते है । ये चित्र कवि को अतीत की मंजुल स्मृतियों में सराबोर कर देते

है । इन स्मृति-बिंबों में एक ओर दिनकर, बच्चन और जैनेन्द्र प्रभृत्ति मित्रों की आत्मीय चर्चा है तो दूसरी ओर अपने घर-गृहस्थी की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति । इसमें मानों वे घर-संसार का सत्य प्रकट करते प्रतीत होते है । 'बहुत छोटी जगह' शीर्षक कविता में उन्होंने लिखा है कि -

''बहुत छोटी जगह है घर
जिसमें इन दिनों इजाजत है मुझे चलने-फिरने की
घर में रहने वाले
सात जनों के मन
लगातार सात मिनिट भी
निश्चिंत नहीं रहते ।''[५७]

इस काव्य संकलन में कवि की कुछ प्रकृति-परक रचनायें भी संग्रहीत हैं । प्रकृति की हरीतिमा और विजन वन के सूर्यास्त का सौदर्य चित्रण यहाँ बड़ी खूबी के साथ हुआ है । कवि की दृष्टि में प्रकृति की हरियाली हमारे नीरस मनोभावों को सरस और सहज बना सकती है । 'नहीं' शीर्षक कविता में कवि को ऐसा भान हो रहा है, जैसे कभी वह कचनार के फूलों की तरह खिलखिला उठा है तो कभी वह वृक्षों के वृंतों की तरह लचीला हो लहराने लगा है -

''मैं खिड़की खोलते ही सहज भावसे
समूची फिजा में घुल गया हूँ
कमरें में खड़ा हूं मगर
कचनार के फूलों की तरह
जैसे रात-भर टपकते रहकर

ओस से धुल गया हूँ
और गीला हूँ
वृक्ष के वृतों की तरह लचीला हूँ
झूम रहा हूँ कमरें में
बाहर की हवा की तरह
लहर–लहर धूम रहा हूँ ।''[५८]

'व्यक्तिगत' काव्य संकलन में भावनाओं व विचारों का सुंदर सामंजस्य है । कविताये त्रिपदी है तथा अर्थो और ध्वनि – संकेतों में अनुरूप कविने सार्थक शब्दों का उपयोग किया है । इसमें कवि व्यक्तिगत धरातल पर सामाजिक चेतना व आशा–आकांक्षा को लेकर चला है ।

(८) परिवर्तन जिये :

'परिवर्तन जिये' काव्य संग्रह की कविताओं को भी 'व्यक्तिगत' से उपजा रोग खाए जा रहा है । आदर्शों से नीतियों से कवि का मोह भंग नहीं है और शीलभंग की छूट कवि दे नहीं सकता । यह कविता जीवन की झंझटों से लड़ती – तड़पती, रीझती–खीझती गृहस्थित नहीं है, बल्कि पवित्रता के चक्कर में पड़ी पवित्रता है, जो अपने देवता के लिए बलिदान देने का सपना पाले हुये है । समय का, परिवेश का, बोध इन कविताओं में लौट रहा लगता है और पक्षी की तरह बींसवी शताब्दी में बहते हुए खुन को देखकर कवि का चैन टुट गया है । क्योंकि अपने उन गांधीवादी विचारों का कचूमर निकलना मिश्रजी से देखा नहीं जाता । व्यक्तिवाद ने आदमी को दूर कर दिया है तभी तो –

''भदरंगी एक तंगी
नंगी खड़ी है सबके सामने
यह तंगी
जितनी तन की है,
उससे ज्यादा मन की है ।''[५९]

इस तंगी ने आदमी का ऐसा बुरा हाल कर दिया है कि गमी (दु:ख) नियम बन गया है और खुशी अपवाद । देश के व्यक्तिवाद ने ऐसा बुरा हाल कर दिया है कि परिस्थितियों की निराशा से टूटते हुये आदमी को आस्था की यह आवाज प्यास से तड़पते हुये राही को रेगिस्तान में शीतल जलधारा के समान है । इसलिए दरिन्दों से भयभीत होने का नहीं, बल्कि उसे भगाने की जरूरत है । 'रामबाण' कविता में अपनी जीवन दृष्टि का सारांश देते हुए -

''यात्राएँ
खेद से खिन्न तक की,
रोको
बिन्दु-बिन्दु ही सही,
इन सिंघुओं को
सोखो ।''[६०]

यहाँ पर कवि की भाषा में बहुत कुछ उपज तथा उबल रहा है । इन कविताओं का कथ्य सम्भावना मूलक है । अभावों के बादलों को फाडकर मन आस्था का सूर्य चमकता दिखायी देता है । इस संग्रह की अधिकतर कविताओं में सबेरा और प्रकाश भरा अंधेरा दूर भाग रहा है।

(९) अनाम तुम आते हो :

यह काव्य संग्रह सन् १९७६ ई. में प्रकाशित हुआ । मिश्रजी ने इस काव्य संग्रह की कविताएँ श्रद्धेय महादेवी वर्मा जी को समर्पित करके लिखी है । इस संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें प्रायः मिश्रजी ने बेहतरीन जीवन को तारतम्य देकर काव्याभिव्यक्ति के रूप में हमारे समक्ष रखा है, यह उनकी मौलिकता की परिणति नहीं, प्रारम्भ ही कहना उचित होगा । यह उनके आनेवाले हर काव्य में यह बात अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही है । मिश्रजी जीवन की साकारात्मकताओं को कुछ इस तरह गूंथते है कि पाठक को इस तरह से पढ़ना, सुनना या मूलना अपने भाग्य को सामने खड़ा देखकर बेचैन और चकित हो जाना है ।

'अनाम तुम आते हो' की अधिकांश कविताएँ उनकी रचना के इस तत्त्व को अधिक स्पष्टता से प्रकट करती है कि अपने जीवन तथा अपने आसपास के भोगे हुये यथार्थ को व्यक्त करने में मिश्रजी ने सर्वथा 'मैं' सर्वनाम का उपयोग करते हूए उससे भरी है ।

> ''छार हो जाता है प्याला
> ओठों तक आते-आते कई बार ।
> टूट जाता है समूचा आदमी
> आदमी तक जाते-जाते कई बार ।''[६१]

इतना ही नहीं इन्हें पढ़कर यह प्रतीत होता है कि उदात तो साधारण ही है । इस अर्थ में मिश्रजी को जब कवि कहना अधिक उचित होगा, लेकिन उस अर्थ में नहीं जिसमें राजनीति कवि को

घसीटती है । लम्बी कविताओं का काव्यसंग्रह होने पर भी भाषा में एक प्रकार का अनुक्रम है देखिए -

''चौसठ बरस भी कम नहीं होते
अमाओं को रोने के लिए
इसीलिये अब मैं थोडा व्याकुल हूँ
'न होने' के लिए ।''[६२]

यह एक घटना होकर भी एक विचार भी है । अध्यात्मक व्यवहार आदर्श जितने भी जीवन के पहलू हो सकते है, सभी अपनी इन लम्बी-लम्बी कविताओं में उस ताकत के साथ मिल-जुलकर बह रहे है, बहा रहे है -

''बहाव का आधार पानी है
विचार का वाणी है
विचार रम न जाये
पानी की धारा थम न जाये
तो सब ठिकाने लग जाते है ।''[६३]

मिश्रजी ने छोटी-छोटी पंक्तियों को त्रिदियों में बाँधर लय में दौड़ाया है । इन कविताओं में अभिव्यक्ति के विस्तार के साथ ही साथ एक चुप्पी, एक शान्ति सी है । और यह आत्मीयता हमें कवि की तरह भीतर से बाहर लाकर खड़ा कर देती है । इस संग्रह की कविताओं में विचित्र लापरवाही के बीच सहज संयम की जो सरस्वती बह रही है, उसे केवल शिल्प की संज्ञा देने से उस विशिष्टता का वर्णन नहीं होता ।

(१०) इदं न मम :

इस काव्य संग्रह का प्रकाशन सन् १९७७ में हुआ । इस काव्य संग्रह की कविताएँ कवि के मन की उथल-पुथल को एक खास तरह से सामने लाती है । कवि का वह कथन इन कविताओं को पढ़कर मानना पड़ता है कि - ''उसने मुझे रौंदा है, चाक् चढ़ाया है और गढ़ा है । वह पुराना है और मुझ में और मेरे आस-पास है इसलिए टटका है । मेरा है, मगर तुम्हारा अधिक है । इन कविताओं में तब भी विकलता यहाँ तक कि चंख्लता या प्रखरता भी नहीं है । इसी अर्थ में ये कविताएँ 'इमोशन रिफलेकटेड इन ट्रेन्ल्विलिटी' है ।''[६४] इन कविताओं में पुनः पुराना संसार जीवित हो उठता है । पुराने दर्द में सबके होने का आभास है -

> ''सब रफ़ू किया जा रहा है,
> समूचा जीवन,
> नये सिरे से,
> जिया जा रहा है ।''[६५]

'इदं न मम' ये मेरा नहीं है, ये तात्पर्य जिन भावानुपूर्तिँयों को इनमें स्थापित किया गया है वे कवि की व्यक्तिगत तो है नहीं वरन् देश की असंख्य जनता की भाव चेतना एवं विफलता ही दृष्टिगोचर होती है । और कवि उस विफलता के प्रति संवेदनशील है। देखिए-

> ''कविता टिकेगी
> क्योंकि
> कोई शरीर नहीं है वह मेरा

वह मेरी
आत्मा ही नहीं,
आधात्म है,
वह मेरे भीतर से उपजकर
बाहर को भेटती है
बाहर को भेंटकर
समूचे को भीतर समेटती है
मगर मेरी नहीं है ।
मेरी व्यक्तिगत किसी इच्छा की
चेरी नहीं है
इसलिए वह टिकेगी.... ।''[६६]

इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ अपनी बोधशक्ति की व्यस्तता का संकेत देती है । अंधेरे से जुझने पर भी उनकी आँखें उजाले पर है और प्रकृति रंग के चित्र कवि आंकता है । इस संग्रह में 'समय गंधा', 'छन्द यात्रा', 'विचित्र', 'कठिनाई', 'रातभर सूरज', 'एक स्थिति', 'स्पर्श', 'स्वर का शिल्पी', 'वह सफेदफूल', 'विचार का पंछी' आदि ढेर सारी चकित कर देनेवाली कविताएँ है । इस काव्य-यात्रा में गति भी है और पोढ़ापन भी । अभिव्यक्ति के इतने उजले कमल भवानी प्रसाद मिश्र ही नयी कविता में खिला सके हैं । शायद इस रंग ढंग से, इतनी सादगी से और खामोशी से कोई भी नयी कविता का कवि इस शैली से नहीं खिला सका है । रूप भरकर प्रवालवणों छंद वेपु बंधी स्वर हो गये है ।

(११) त्रिकाल संध्या :

आपातकाल के दौरान जेल की सींखचों में लिखी गई कवितायें 'त्रिकाल संध्या' में संग्रहीत है । इन कविताओं में कवि की मानसिक अंतर्व्यथा, देश की दुर्दशा और राष्ट्र-धर्म की सच्चाई का प्रकाशन बड़ी ही सहजता से हुआ है । जून १९७५ में जब पूरे देश में आपात स्थिति की घोषणा हुई, तो कवि को बड़ी ठेस लगी और उनका अंतरमन कराह उठा । श्री प्रमोदशंकर भट्ट ने लिखा है कि - "गाँधीवादी विचारक भवानीबाबु आपातकाल की घोषणा से जितने विचलित और उदास हुए, शायद जीवन में कभी न हुए होंगे । भवानी बाबु शायद विद्रोही कवि कभी नहीं रहे, विद्रोह करना उनका स्वभाव भी नहीं रहा । वे तो दु:ख और दर्द पीकर उसे अमृत के रूप में काव्य द्वारा प्रकट करते थे । पर, आपातकाल को कैसे आत्मसात करते । समझौतावादी होते तो वे राज्य-सभा के माननीय सभ्य होते या बडी साहित्यिक संस्था या किसी बड़ सरकारी पद पर होते । वे अपने विचारो में दृढ़ थे । उनकी कलम ने प्रण लिया और 'त्रिकाल संध्या' में उन्होंने आपातकाल का खुलकर विरोध किया । शासन की नजरों में वे विद्रोही बन गये ।"[६७] आपात स्थिति की जब जैसी भावना कवि के मन में उभरी, उन्होंने उसे शब्दों में बाँध लिया और यह क्रम अबाध गति से अठारह महीनों तक चलता रहा, कभी रूका नहीं । कवि की इस साधना ने सिद्ध किया कि तलवार की धार से कलम की धार ज्यादा तेज होती है । कवि ने राजनीतिक अत्याचार और व्यक्ति-सत्ता को कभी स्वीकार नहीं किया जिसका संकेत हमें निम्न पंक्तियों में मिल जाता है -

"वे एक हो व्यक्ति को
ऊपर उठाये चले जा रहे हैं
और अपने सर पर उठाय हुए उसे
उसकी गोद में पले जा रहे है
वे उस एक व्यक्ति को
पूरा देश कह रहे है ।"[६८]

'त्रिकाल संध्या' का मूल उत्स सरकार का जनता के प्रति अन्याय-भाव है । उस समय के बहुत सारे साहित्यकारों, राजनीतिज्ञों और प्राध्यापकों को जेल की काली कोठरी में कैद देख कवि-मन सत्य कहने को मजबुर हो गया है । इस समय समग्र क्रांति के नायक की जयप्रकाशनारायण की लौहा-वाणी का कवि के मन पर बड़ा गहरा असर पड़ा, जिसका प्रभाव हमें इस संकलन में दिखाई पड़ता हैं । लोकनायक के सम्बन्ध में कविने लिखा है ।

"यह दिन मैंने
सूरज को कम
तुमसे ज्यादा लिया
और इसीलिये मैंने
आज की रात को
सुबह हो जाने तक
दीपक का नहीं
तुम्हारा प्रकाश दिया
और जब सुबह हुई

तो औठों से फूटा
कृतज्ञ भाव से तुम्हारा नाम
जयप्रकाश ।''[६९]

इस समय साहित्य दरबार की चीज हो गई थी । डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल का कथन है कि – ''हिन्दी पत्र जब सरकार की मलाई खा रहे थे, तब कवि नामजद इन कविताओं में से, अधिकांश को गुजराती पत्र 'भूमिपुत्र' आदि में प्रकाशित करा रहा था । इसीकाल में भयभीत होकर बेचारे 'नागार्जुन' ने दल बदल लिया, मार्क्सवाद के गाल पर यह सीधी मुठ़ी की मार पड़ी थी । लेकिन, इस कठोर समय में भवानीप्रसाद मिश्र ने शब्द को सत्य एवं कर्म से विमुख नहीं होने दिया ।''[७०] सता के मूठ प्रहार से कंपकंपाता राष्ट्र निस्पंद था । किन्तु, इस भय प्रकम्पित युग में भी कविने झुकने का नाम नहीं लिया । यहाँ तक कि '' चार कौए उर्फ चार हौए' शीर्षक कविता में उन्होंने आपातकाल की लम्बी कहानी को थोडे में कह दिया । कविता में कविने चार व्यक्तियों पर सीधा व्यंग्य किया है । उन्होंने यह भी स्विकार किया है 'इस कविताने मेरे ऊपर वैसा उपकार किया है, जैसा 'गीत–फरोश' कविता ने किया था । मेरी दूसरी आपातकालीन कविताओं के प्रति इसने उत्सुकता जगा दी है ।' उदाहरणार्थ प्रस्तुत कविता –

''बहुत नहीं थे, सिर्फ चार कौए थे काले
उन्होंने यह तय किया कि सारे उडनेवाले
उनके ढंग से उड़े, रूके, खाये और गाये
वे जिसको त्यौहार कहे, सब उसे मनाये ।''[७१]

इस प्रकार डॉ. पालीवाल के शब्दों में ''प्रधानमंत्री से लेकर यशपाल कपुर तक का इतिहास और जयप्रकाश नारायण से लेकर संजय गांधी तक का काल-चक्र इन कविताओं में मुखरित है ।''[७२] त्रिकाल संध्या की हर रचना ने आपातकाल के बारे में ही कहा, ऐसा नहीं है । कवि के मन के कितने ही पहलू इन कविताओं में आये हैं । फिर भी, आपातकाल की भीषण-छाया सभी कविताओं पर किसी न किसी अंश में पड़ी है । अपने स्वाभाव के अनुसार उन्होंने उस छाया-रूप को बदला है, प्रकाश में बदला है । इसलिए उदास कविताये इस में है, मगर निराश कविताये इसमें कहीं नहीं है । इस तथ्य का अंदाज 'त्रिकाल संध्या' पढ़कर ही लगाया जा सकता है ।

(१२) कालजयी (खंडकाव्य) :

'कालजयी' भवानीप्रसाद मिश्र का सन् १९७८ ई. में प्रकाशित प्रथम खंडकाव्य है । छह संर्गो में बंटा यह हिन्दी साहित्य का ऐसा खंडकाव्य है, जिसमें ऐतिहासिक कथा के माध्यम से कविने नवीन प्रसंगों और संदर्भो को रूपायित किया है । खंडकाव्य का प्रथम संर्ग 'बीज' है । समस्या तथा समस्या के समाधान के लिए बिज रूप में ही वर्जित है यह संर्ग । इसकी कथा संक्षेप में कुछ इस प्रकार है - सम्राट बिन्दुसार के मन में एक समस्या बीज रूप में अस्तित्व ग्रहण करती है । समस्या है अपना उत्तराधिकारी वह किसे बनायें ? अशोक और सुसीम में कौन उपयुक्त होगा, राज्यारोहण के लिए ? वह स्वयं भी निर्णय लेने में समर्थ हो सकते थे मगर उनके मन में इस चिंता का क्या परिणाम होगा, वे जानते है । इसलिए उतराधिकारी चुनने की इस समस्या को वे राजगुढ के हाथों छोड़ देते हैं । राजगुरू आजीवक

अगले दिन की परामर्श-सभा में अपना निर्णय अशोक के पक्ष में सुना देते है । दूसरी और राजा बिन्दुकुमार समझते रहे कि राजगुरू ने यह निर्णय सुसीम के पक्ष में दिया है । उनका ऐसा मानना इसलिये स्वाभाविक कहा जा सकता है कि उनका मन सुसीम के प्रती अधिकाधिक मोहित था । उनके मन का यह भ्रम शायद तब टुटा जब उन्हें निर्णय के बाद यह संवाद मिला कि राजगुरू ने तो सिंहासन अशोक के पक्षमें दिया है । इस प्रकार बीज संर्ग समस्याओं में बीज-वपन का संर्ग है । 'अंकुर' संर्ग का प्रारंभ कवि ने सांझ की उस बेला से किया है जब बीज को अंकुरने के उदद्श्य से बोया जाता है । बिन्दुसार-शम्पा वार्तालाप के माध्यम से बीज के अंकुरने का आभास पाठक को मिल जाता है । पति-पत्नी की इस पारस्परिक वार्ता से जिस बीज का अंकुरण होता है वह अशोक की जमीन पाकर विकास की विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजर कर एक वट का रूप धारण करता हुआ छायादार बनता है और अंत में अपनी छाया से सबको सुख-शीतलता प्रदान कर काल-कवलित हो जाता है । बिन्दुसार का बोया बीज युद्ध मुखी न होकर शांति-मुखी बन गया । बीज के इस प्रकृति-परिवर्तन का कारण था शम्पा का यह उपदेश जिसे अशोकने 'वट'-संर्ग में स्वीकार किया है । इस तरह छह संर्गो के अंतराल में प्रियदर्शी अशोक की महानता स्थापित कर कथा समाप्त हो जाती है।

इतिहास प्रसिद्ध प्रियदर्शी अशोक की जीवनकथा के माध्यम से कवि ने इसमें लोक-मंगल की स्थापना का प्रयास किया है । कृति के पठन से भी स्पष्ट होता है कि लोक-कल्याण की भावना ही इसका मूल प्रतिपाध है । कवि ने इसमें इतिहास के साथ कल्पना का संयोग

इस कुशलता के साथ किया है कि उसमें प्राचीन और अर्वाचीन दोनों ही अर्थ सुरक्षित है । कवि का उद्‌देश्य इसमें केवल कथा-काव्य कहना नहीं है प्रत्युत उसमें कोई विशिष्ट अर्थ भरने का है । यह विशिष्ट अर्थ युद्ध एवं शांति की मंगलकारी मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा है । कवि कथा के माध्यम से युद्ध और शांति की स्थिति में अहिंसा की ओर अग्रसर है । हर युग की समस्या अपने समकालीन साहित्यकारों एवं कलाकारों के लिए एक चुनौती बनकर उपस्थित होती है । इस खंडकाव्य में यह चुनौती मानवतावादी मूल्यों का गहराता संकट है - जिसने मिश्रजी को प्रियदर्शी अशोक की मौर्यकालीन कथा की और उत्प्रेरित किया है । मिश्रजी यह भी अनुभव करते है कि युद्ध और विज्ञान के दबाव - प्रभाव से आज का मानव पीड़ित है । तथाकथित आधुनिक सभ्यता के आधुनिकीकरण ने मानव-मानव के बीच अपने और परायेपन की भावना को जन्म दिया है । पाश्चात्य देशों के इस तथाकथित सभ्यता के प्रभाव से बचने के लिए भारतीय मनीषियों ने समाज की मूलधारा में बैठकर सांस्कृतिक मूल्यों की व्याख्या और इसकी पुर्नरचना की ओर हमारा ध्यान मोड़ना चाहा है ।

कवि को देश तथा समाज को उचित दिशा निर्देश हेतु शांतिप्रिय बुद्ध के उपदेश अत्यंत समीचीन लगे । इसमें कवि ने बुद्ध के विचार यथा - सत्य, अहिंसा, प्रेम, करूणा, दया, माया, ममता आदि मानव-मूल्यों को नये अर्थ में प्रस्तुत किया है । भारतीय राजनैतिक इतिहास में अशोक के व्यक्तित्व में क्रूरता तथा करूणा का अद्‌भूत संगम रहा है । कुछ इतिहासकारों की यह मान्यता रही है कि कलिंग युद्ध में भीषण रक्तपात को देखकर अशोक का हृदय आत्मग्लानि से

भर गया था और अपने मन की शांति हेतु वह बौद्ध - धर्म को स्विकार किया था । किन्तु कुछ इतिहासकार यह मानते है कि बड़ी ही विषम परिस्थितियों में अशोकने राज्यभार ग्रहण किया था तथा उसकी योग्यता एवं कार्यदक्षता से जनता अति प्रसन्न थी। कविने अशोक की ऐतिहासिक कथा के सभी प्रसंगों को आधुनिक संदर्भ में नया अर्थ देना चाहा है । इतिहास में सम्राट बिंदुसार की अनेक रानियों का उल्लेख मिलता है, किन्तु कविने युनानी कन्या सुसीम की माता और अशोक की माता शम्पा - मात्र दो रानियों का ही उल्लेख किया है । इस प्रकार कविने अशोक के अनेक भाई-बहनों की जगह मात्र चार भाइयों (सुसीम, अशोक, महिन्द्र और तिष्य) को कथा में महत्व दिया है । कविने तक्षशिला विद्रोह दमन की प्रसिद्ध ऐतिहासिक धटना से अशोक को जोड़कर उसके व्यक्तित्व का करूणावादी विस्तार किया है । बिंदुसार अपनी इच्छा से सुसीम को राज्य देना चाहता था, पर अपनी बुद्धि एवं कार्य - कौशल से गददी का अधिकारी अशोक हुआ । कलिंग-युद्ध में अशोक को जो भीषण रक्त-पात करनी पड़ी उससे उसका हृदय तार-तार हो गया और अंततः उसे बौद्ध-धर्म की शरण लेनी पड़ी । मूल कथा से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कवि को कई कल्पनाये करनी पड़ी है । सुसीम को राज्य पर अधिकार करने का प्रयत्न, माता शम्पा के द्वारा अशोक को अहिंसा और प्रेम का संदेश प्रेषित करना, अशोक का शस्त्रहीन तक्षशिला विद्रोह-दमन, सुसीम की बर्बरता, अशोक का विदिशा की श्रेष्ठि कन्या देवी से प्रेम, खल्लाहट तथा राधागुप्त की चतुराई से राज्य पर अशोक का अधिकार, कलिंग-युद्ध और उसका अनुभव, बौद्ध धर्म में प्रवेश और आ. उपगुप्त

द्वारा अशोक की कथात्मक श्रृंखला में कहीं कोई असम्बन्धता दिखायी नहीं देती है । कवि की यह कल्पना कि करूणा और प्रेम के प्रति निष्ठा अशोक को बाल्यकाल से ही माता शम्पा के द्वारा मिले थे - बड़ी सुंदर है । 'कालजयी' में अशोक का तक्षशिला गमन के समय माता शम्पा के द्वारा उसे अहिंसा-विचार दर्शन दिया जाता है । शम्या कहती है -

''युद्ध यदि टलता है तो
निश्चय उसे टालना
क्रोध को उभारे कोई
देना उभरने मत
धीरज के साथ उस क्षण को संभालना ।
ऐसा कोई व्यक्ति नहीं
जिसको आत्मीय अपना
स्नेहयुक्त छलनाहीन आचरण
बना न ले,
स्वार्थहीन प्रेम निश्चय
इतना निरूपाय नहीं
करके समर्पित सब कुछ
उत्सव वह अपने मन की ममता का
मना न ले ।''[७१]

'कालजयी' में अशोक का चरित्र एक विवेकशील मानव के रूप में रूपायित हुआ है । भारतीय संस्कृति के प्रति उसमें गहरी निष्ठा है । यथा -

"अथ से इति तक
उद्‌गम से सागर तक की
संस्कृतियां समझी
वेद उपनिषद्‌ षड्‌दर्शन
मनु याज्ञवल्क्य - स्मृतियां समझा ।"[७२]

सम्राट अशोक को भारतीय संस्कृति की इसी चिंतन मुद्राने 'अयं-निजः' के भाव से ऊपर उठा दिया है । कलिंग-युद्ध के बाद तो वह यह भली-भाँति समझ लेता है कि युद्ध किसी समस्या का हल नहीं है । युद्ध की समस्या को आदमी यदि चाहे तो प्रेम से भी हल कर सकता है । अशोक के नये चरित्र में कवि ने यह दिखला ने की चेष्टा की है वह एक ऐसा प्रतिक पुरूष है जो पार्थिवता, भौतिकता और युद्ध की उन्मादता से खिन्न हो गया है यथा -

"पार्थिव प्रगति हुई मानव की
मानवता हर बार लजाई,
जितना सभ्य हुआ जो
उसने उतनी शक्ति बढ़ाई ।"[७३]

इसी से युद्ध के बाद अशोक आ. उपगुप्त से प्रभावित होकर बुद्ध-दर्शन की ओर अभिमुख हो जाते है । उन्होंने यह सत्य समझ लिया है कि हिंसा से मानव की आत्मा पर काबु नहीं पाया जा सकता है । आ. उपगुप्त सर्वोदय की भावना से भरकर कहते है -

''राजा तुम तो शक्तिवान हो
अपनी शक्ति मोंड़ों
ऐसे करो उपाय बढ़े सुख
हर अभाव को गहरा गोड़ो
और भाव के बीज
देश से देशांतर तक बोकर देखा,
राजा, तुम तो शक्तिवान हो
इस कलंक को घोकर देखो ।
इतना ही देखो दुःख क्या है
दुःख के स्रोत कहाँ से फूटे
दुःख दूर कैसे होता है ।''[७२]

उपर्युक्त कथन वास्तव में आ. उपगुप्त के न होकर कवि के है, जिसमें भारतीय संस्कृति के उच्चतम जीवन-मूल्यों की ध्वनि गुंजायमान है । और हमारी इस सांस्कृतिक धरोहर की मूल्यवान निधि को जन-जन तक पहुंचाने का संकल्प 'कालजयी' के माध्यम से कवि ने लिया है । दया, माया, ममता, करूणा आदि भारतीय संस्कृति के उच्चादर्श है । इन्हीं उच्चादर्शो की स्थापना के लिए कविने 'कालजयी' की सर्जना की है । ''भवानीप्रसाद मिश्र की भाषा भावानुकूल है । भाषा की सहजता के लिए भवानी प्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य उपन्यासकार 'राजा राधिकारमण प्रसादसिंह' की भाँति मशहूर है । यह भी एक कारण भावनाओं के अभिव्यक्तिकरण में कहीं व्यवधान पाठक को महसूस नहीं होता । लगता है, पाठक और काव्यगत इतिहास एक साथ एक बात बोल रहे हैं - अनुभव कर रहे है ।''[७५]

भवानीप्रसाद मिश्र की अन्य काव्यकृतियों में 'शरीर कविता फसले और फूल', 'मानसरोवर दिन', 'जल रही है सड़को पर बतियाँ' और 'सम्प्रति' प्रमुख है । इन काव्य कृतियों में भवानीप्रसाद मिश्र का जीवंत चित्र आज भी अपनी सहजता में बोल रहा है ।

संदर्भ ग्रंथसूची

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
१.	द्विधाहीन कवि, सुविधाहीन		
	व्यक्ति, जिन्होंने मुझे रचा	भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.१.२
२.	एक अद्वितीय माखनलालजी		
	जिन्होंने मुझे रचा	भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.४०
३.	वही	भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.४०
४.	वही	भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.५२
५.	वही	भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.४४
६.	जिन्होंने मुझे रचा	भवानी प्रसाद मिश्र	प्रकाशकीय
७.	श्रीमद् भगवतगीता		
८.	रामचरित मानस,	तुलसीदास	
९.	कुछ नीति कुछ राजनीति	भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.४७
१०.	अहिंसा की प्रतिमा		
	कुछ नीति कुछ राजनीति	भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.२३
११.	भवानीप्रसाद मिश्र का	डॉ. कृष्णदत्त	पृ.६०–
	काव्य संसार	पालीवाल	६७
१२.	'गीत–फरोश' परिचय	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	
१३.	'गीत–फरोश'	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.१८२
१४.	'गीत–फरोश'	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.५७
१५.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.४६
१६.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.१५३
१७.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.११५

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
१८.	चकित है दु:ख	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.४
१९.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.१७
२०.	भवानी भाई	डॉ. रामाधार शर्मा	पृ.२०९
२१.	चकित है दु:ख	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.२२
२२.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.६५-६६
२३.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.८९
२४.	भवानी भाई	यदुनाथ सिंह	पृ.२२३
२५.	अँधेरी कविताये	श्री भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.१
२६.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.३०
२७.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.१४३
२८.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.१४०
२९.	दूसरा सप्तक (वक्तव्य)	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.५
३०.	भवानीभाई,	रामधारीसिंह 'दिनकर'	पृ.२६६
३१.	नई दूनिया	२५ फरवरी १९७३	
३२.	गाँधी पंचशती	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.५
३३.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.११
३४.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.३१-३२
३५.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.८३
३६.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.१४८-१४९
३७.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.२२३-२४४
३८.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.२१४
३९.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.२४६
४०.	बुनी हुई रस्सी	आवरण पृष्ठ	

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
४१.	बुनी हुई रस्सी	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.१७
४२.	बुनी हुई रस्सी	भूमिका	पृ.७
४३.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.४९
४४.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.६५
४५.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.१०९-१११
४६.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.६३-६४
४७.	खुशबू के शिलालेख	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.१२
४८.	भवानी भाई	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.२९
४९.	खुशबू के शिलालेख,	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.८५-८६
५०.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.९७
५१.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.१४४
५२.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.१५६-१५९
५३.	व्यक्तिगत भूमिका	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.५
५४.	व्यक्तिगत	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.९-१०
५५.	भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य यात्रा	संतोषकुमार तिवारी	पृ.११९
५६.	व्यकितगत	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.१५९-१६०
५७.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.८२
५८.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.५८-५९
५९.	परिवर्तन जिये,	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.२०
६०.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.३१
६१.	अनाम तुम आते हो	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.१२
६२.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.६४

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
६३.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.६५
६४.	इदं न मम	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	
		१९७७, द्वितिय संस्करण	
		१५ अगस्त, १९८०	
६५.	इदं न मम	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.१०
६६.	वही	श्री भवानी प्रसाद मिश्र	पृ.११६
६७.	रविवार	प्रमोदशंकर भट्ट	
		१०-१६ मार्च, १९८५	पृ.३६
६८.	त्रिकाल संध्या	श्री भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.६३
६९.	वही	श्री भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.१०३
७०.	भवानीप्रसाद मिश्र का काव्यसंसार	डॉ. पालीवाल	पृ.८७
७१.	कालजयी	श्री भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.४०
७२.	वही	श्री भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.९२
७३.	वही (भूमिका)	श्री भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.९३
७४.	वही	श्री भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.९३
७५.	नई धारा	जुन-जुलाइ १९७९,पटना	पृ.६५

अध्याय–३
भवानी प्रसाद मिश्रजी के काव्यों में सामाजिक चेतना

भवानी प्रसाद मिश्रजी के काव्यों में सामाजिक चेतना

- प्रस्तावना
- सामाजिक चेतना का अर्थ
- युगीन चेतना तथा काव्य संदर्भ
- स्वातंत्र्योत्तर काव्य में यांत्रिक सभ्यता का प्रभाव
- मानवतावादी दृष्टिकोण
- कवि का सामाजिक आशय
- साम्राज्यवाद और नई सामाजिक चेतना
  - जातीय – असमानता
- समाज–व्यवस्था के अन्य पक्ष

  (१) आदिम साम्यवादी युग

  (२) दासत्व युग

  (३) सामन्तवादी युग

  (४) पूँजीवादी युग

  (५) समाजवादी युग

- भवानी प्रसाद मिश्रजी के काव्यों का सामाजिक परिवेश
    - सामाजिक समानता
    - सामाजिक विषमता
    - अर्थ -व्यवस्था
    - जाति - प्रथा
    - परिवार - प्रणाली
    - शहरीकरण
    - आम-आदमी की मानसिकता
    - साम्प्रदायिकता
- निष्कर्ष
- संदर्भग्रंथ सूची

अध्याय-३
भवानी प्रसाद मिश्रजी के काव्यों में सामाजिक चेतना

प्रस्तावना :

'चेतना' संस्कृत 'चेतन' में 'आ' प्रत्यय जोड़कर बनाया गया शब्द है । 'चेतन' शब्द 'चित्+पुच्+अन' के संयोग से बना है । अंग्रेजी भाषा में इसके लिए 'Consciousness' का प्रयोग होता है । अत: चेतना का शाब्दिक अर्थ है 'चित का विशेष भाव या चित की विशेष अनुभूति' । 'बृहद हिन्दी कोश' में 'चेतना' का अर्थ चैतन्य, ज्ञान, होश, याद, बुद्धि, चेत, जीवनी, शक्ति, जीवन, सोचना, विचारना आदि दिए गए है ।

'चेतना' अपने सामान्यार्थ में वस्तुओं, विषयों और दूसरे द्वारा किये जानेवाले कार्यो के प्रति सचेतना है । पर अपने विशेषार्थ में यह 'मान की वह वृर्ति या शक्ति है जिससे जीवन या प्राणी की आन्तरिक (अनुभूतियों, भावों, विचारों आदि) और बाह्य (घटनाओं) तत्त्वों या बातों का अनुभव या भान होता है ।' इसके अतिरिक्त दर्शन और मनोविज्ञान और कोशों में इसे भिन्न-भिन्न अर्थो में निरूपित किया गया है ।

'चेतना स्वयं को और अपने आस-पास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है ।'

सामाजिक चेतना का अर्थ :

जनसमाज की ज्ञानात्मिकता मनोवृत्ति का नाम सामाजिक चेतना है । समाज पशुओं से भिन्न लोगों के संध या समूह का नाम है ।

हेमचन्द्र ने इसका नाम 'सभा' किया है । डॉ. जंकशन के अनुसार 'समाज मनुष्यों की मैत्री या कम से कम शान्ति की दशा का नाम है ।''[१] व्यक्तियों के समूह को समाज कहते है पर जनता के आकस्मिक समूह को समाज नहीं कहा जाता । एकत्रित व्यक्तियों का सार्वजनिक उद्देश्य रहता है, यही उद्देश्य उन्हें संगठित रखता है और उन्हें पारस्परिक सहायता और सहयोग की आवश्यकता का अनुभव करता है । समाज के व्यक्तियों का पारस्परिक संबंध एकता या शांति पर निर्भर करता है । समाज निर्माण के लिए व्यक्तियों की अधिक संख्या होना अनिवार्य है और उनका सार्वजनिक उद्देश्य लक्ष्य साधन के लिए शांतिपूर्वक मिलकर काम करना है ।

जनजागरण का कार्य मुख्य रूप से सामाजिक चेतना सम्पन्न साहित्यकारों द्वारा होता है । समाज की प्रतिकूल परिस्थितियों में कुछ प्रतिभाएँ प्रज्जवलित प्रकाश स्तम्भ बनकर चमक उठती हैं । इनके आलोक में सारे समाज में जनजागृति की तरंगें लहराने लगती है । इन्हीं प्रतिभाओं को सामाजिक चेतना का वाहक मान सकते है । सामाजिक चेतना ही समाज को आगे बढ़ाती है । इसलिए यह वैयक्तिक चेतना के उपेक्षा श्रेष्ठ मानी जाती है । वैयक्तिक एवं आत्मनिष्ठ चेतना की तुलना में सामाजिक चेतना अधिक मूल्यवान है । व्यष्टि चेतना जब समष्टि पर छा जाती है तब वह सामाजिक चेतना बन जाती है ।

सामाजिक चेतना के द्वारा ही संस्कृति सुरक्षित रहेती है । सांस्कृतिक संस्कारों की सूरक्षा का कार्य सामाजिक चेतना सम्पन्न करती है । इस प्रकार समाज को सही मार्ग दिखाने का कार्य भी

सामाजिक चेतना ही करती है । कभी–कभी समाज अपने उच्च आदर्शो से विचलित हो कर पतनोन्मुख हो जाता है । तब सामाजिक चेतना की अंत: शक्ति ही उसे ऐसे पतन के दुष परिणामों की और संकेत करके पुन: खोये हुए मूल्यों को पाने के लिए प्रयत्नशील बनाती है ।

सामाजिक चेतना अभावात्मक या नकारात्मक नहीं होती । व्यक्ति मात्र में चैतन्य मूर्त है, परंतु रूढ़ि, अशिक्षा और अभावों के कारण यह दूष प्रभाव से मुक्त रहना ओर कुंष्ठा को अपनी अंतरवर्ति से तिरोहित बनाये रखना ही सामाजिक चेतना है । सामाजिक चेतना के आनयन के लिए जीवन का उत्सर्ग करना पड़ता है, तभी रूढ़ि बढ़ आध्यात्मिकता के स्थान पर नयी आध्यात्मिकता, नवसंस्कृति को जन्म देती है । सामान्य सामाजिक चेतना से हम किसी देश एवं कालविशेष से संबंधित मानव समाज में अभिव्यक्त, परिवर्तनशील जागृति समजते है । यह प्रतिक्रियात्मक भी हो सकती है । जनजीवन में लक्षित यह जागृति या सामाजिक चेतना तत्कालिन जीवन में उत्पन्न अप्रत्यासिद गतिरोध एवं गतिशीलता से उत्पन्न होती है । इसके पीछे सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक, सास्कृतिक आदि परिस्थितियों, प्रेरणात्मक हो सकती है । मनुष्य विचारशील प्राणी है । अपने विवेक बुद्धि का उपयोग यह निरंतर करता रहेता है । अेसा न होगा तो अस्तित्व और प्रगती के लिए चलनेवाले संघर्ष में वह कृतकार्य न होता, तथापि उसकी परंपरा प्रियता कुछ विषयों में इतनी जड़, भूत हो जाती है कि वह कुछ करना, बंधी लकिर से इधर–उधर हटना नहीं चाहता । परंपरागत प्रतिष्ठा संकेतों को ठुकराकर समाज की सुप्त विवेक शक्ति को जागृत करना साहित्य का उद्देश्य है ।

समाज में निहित विवेक शक्ति का जाग्रण साहित्य का लक्ष्य प्रेरणा हेतु है । समाज और व्यक्ति की क्रियाशीलता अथवा मानव में श्रद्धा रखना साहित्य का परम पुनित कर्तव्य है । परंपरा के बंधन टूटने के कारण निराशा और बेकारी आवारापन, बुरि से बुरि भावना और कुदृष्टि समाज को नास्तिक बनाति है और अश्रद्धा की भूमिका रचती है । इस नास्तिकता को लेकर परंपरा नहीं पनप सकती मानव जीवन की संजीवनी प्रतिभा होती है । वह किसी शब्द की दास्ता से परे है । जहाँ प्रतिभा है वहाँ मात्र शब्द का तेज नहीं, जिस हृदय में शब्द का प्रमाण अनुप्राणित होता है, वह सची प्रतिभायुक्त साहित्य के आयाम में सामाजिक चेतना की सत्य सृष्टि करता है । समाज को नयी दृष्टि और जीवन देता है ।

कवि नागार्जुन ने कविता को सामाजिकता के सम्बन्ध में एक स्थल पर कहा है कि – "कविता एक सामाजिक सम्पति है । प्रेमी–प्रेमिका का खिलवाड नहीं, जीवन का गहरा भाव योग ही धरातल पर अभिव्यक्त है । तभी कविता जन्मती है ।"[२] साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी है, वह सामाजिक विचारों तथा भावनाओं को सृष्टा और प्रेरक है, साहित्य समाज के सुख–दुःख, हर्ष–विषाद के ताने बाने से बुना जाता है । साहित्य जहाँ एक ओर समाज कि गति विधियों से प्रभावित रहेता है, वहाँ दूसरी ओर समाज में नयी प्रेरणा, नये विचार नये आदर्शों तथा तजन्य चेतना का विस्तार करता है । फलतः हम यह कह सकते है कि आरंभिक काल से ही साहित्य और समाज का अभिन्न सम्बन्ध रहा है । देश गत की मान्यताएँ, रीति, नितियों, नैतिक, आध्यात्मिक जीवनमूल्य सभी साहित्य में प्रतिबिंबित

होते है । साहित्य में यह यथार्थ बोध होने के साथ-साथ उसे गति ओर दीशा देने की क्षमता भी है । यदि काव्य को कवि के व्यक्तिगत अनुभवों की अभिव्यक्ति भी माना जाये तो भी वह व्यस्टी परक इसलिए नहीं है, क्योंकि वह एक ऐसे व्यक्ति की आत्माभिव्यक्ति है जो समाज का एक अंग है । जिसका व्यक्तितत्व और समाज की चेतनागत संस्कार अन्योन्यास्रित है ।

युगीन चेतना तथा काव्य सन्दर्भ :

स्वातन्त्र्योत्तर-युगीन समाज की नवीन चेतना का प्रभाव भवानी प्रसाद मिश्रजी के काव्य में देखने को मिलता है । सामाजिक वैषम्य से उत्पन्न पीड़ा का अनुभव आरम्भिक कविताओं से ही मिलने लगता है -

> ''एक दिन होगी प्रलय,
> मिट रहेगी झोपड़ी
> मिट जायेंगी नीलम निलम भी ।''

प्रत्येक कवि का भाषा-संसार अनुभवों के दायरे से बनता है । चूँकि लेखक समाज की इकाई होता है उसकी भाषा का अध्ययन ऐतिहासिक सामाजिक आधारों से किया जाता है । आज के संक्रान्तिकालीन युग में पारस्परिक जीवन मूल्यों के विपरीत युगानुरूप एक नया दृष्टिकोण विकसित हो रहा है । दो परस्पर भिन्न जीवन के प्रतिभाओं की आपसी टकराहट के फलस्वरूप भारतीय जनजीवन में जहाँ एक ओर प्रगतिशील जीवन मूल्यों को आत्मसात् किया जा रहा है, वहीं दूसरी ओर नवीन परिस्थितियों के आकस्मिक रूप से उत्पन्न

होने के कारण जीवन के स्थितिकरण की समस्या भी बलवती होती जा रही है ।

प्रत्येक देश का साहित्य भी उस देश की सामूहिक चेतना पर निर्भर करता है । व्यक्ति समाज की इकाई का मूलभूत आधार है । साहित्य के इतिहास के विभिन्न युग युगाविशेष के ही संदर्भ है । हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिककाल साहित्य के युग है । इन सभी युगों की प्रेरणाभूमि समाज ही रही है और व्यक्ति की समाज के प्रति उपेक्षा या समाज की व्यक्ति के प्रति उपेक्षा से व्यक्ति आत्म केन्द्रित हो जाता है । यह ''आत्म केन्द्रिता'' प्रथम तो काव्य के लिए एकन्तिका धारणा है, दूसरे इसकी पृष्ठभूमि में या प्रेरणा की भूमि में समाज ही तो है । हमारे यहाँ के नेताओं में स्वतंत्रता के साथ जो समानता का नाश जन्मा उसके मूल में यही प्रभाव है । सन् १९३४ में कोंग्रेसवाद की स्थापना और साथ ही कम्युनिस्ट पार्टी का जन्म इसी मनोभूमि के प्रतिफल हैं । कोई भी काव्य समाज से अलग नहीं है । समाज का प्रभाव किसी के काव्य में तो सायास दिखता है, तो कहीं स्वाभाविक या अवांछित रूप से । वास्तव में इन सब का सम्बन्ध जीवन-मूल्यों के अन्तरंग पक्ष और समाज का संबंध उसकी व्यावहारिक परिणति या बहिरंग पक्ष से है । कदाचित् इसी कारण साहित्य, कला, संस्कृति के उत्थान से सामाजिक सुधार की भूमिकाएँ भी प्रभावित हुयी हैं । राष्ट्रों में जब भी आन्तरिक जागरूकता का प्रश्न उठाया जाता है । तब समाज ही उसका आधार बनता है । समाज के दूसरे विकास का सोपान महात्मा गांधी के नेतृत्व में क्रियाशील सत्याग्रह आन्दोलन को स्वीकार

करते है । इसमें अछूतोद्धार, ऊँच्च शिक्षा एवं शिक्षा प्रसार को महत्व था ।

तीसरे सोपान का विकास द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त विकसित होती हुई सामाजिक दृष्टि से सम्बन्ध रखती हैं । स्वतंत्रता के उपरांत हमें प्रसार की बहुत ही विस्तृत भूमि उपलब्ध हुयी है । अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क ने आज हमारे नागरिक जीवन को पूरी तरह परिवर्तित कर दिया है । इसी समीपी सम्पर्क के कारण सामाजिक जीवन स्तर में एक नयी चमक आ गयी है । अन्तर्राष्ट्रीय विवाह, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जगत से सम्बन्ध उच्च वर्गो में नारी का योग, वैज्ञानिक और अभूतपूर्ण प्रसारद्वजीवन की यांत्रिकता आदि आज हमारे जीवन में आश्चर्य की बात नहीं है ।

भवानीप्रसाद मिश्रजी की कविता में आधुनिकता के तत्त्व भी दिखायी पड़ते है, लेकिन उन तत्त्वों का समावेश बिना अनुभूति की अपेक्षा विचार अंश रूप में हुआ है –

''मैं दम की, साहस की
हिम्मत की खोज में धूमी हूँ,
जहाँ – जहाँ शक हुआ कि,
दम है रूकी हूँ वहाँ ।''[३]

उपर्युक्त कविता में आधुनिकता का स्वर उनके व्यंग्यों में उपलब्ध होता है । उनके प्राय: आधुनिक समाज की ऊँच–नीच और भेद–भावों को लक्षित करके लिखे गये हैं । 'गीत–फरोश' नामक कविता में उन्होंने गीतों की किस्मों को सामाजिकता के धरातल पर जन–भेद के

रूप में रूपायित किया है और स्वयं को गीत–फरोश रूप में प्रस्तुत किया है । मिश्रजी के काव्य में आधुनिकता का समावेश या आधुनिकता के प्रति पूर्ण सचेष्ट है । इसके कारण पर यदि विचार किया जाये तो आज का युग एक व्यापक संकट की स्थिति से संक्रमण कर रहा है और यह संक्रमण की स्थिति ही आधुनिकता के प्रति जागरूक बना रही है । संकट की यह स्थिति आज के कवि का आकर्षक बिंदु है । संकट का यही बोध हमें आधुनिकता के प्रति जागरूक बनाता है । काव्य के अन्दर आधुनिक युग बोध की आवश्यकता इसी लिये हुई क्योंकि जहाँ पिछली तीन–चार शताब्दियों से विज्ञान ने मानव के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिये है, वहाँ इससे भी अधिक जीवन–दृष्टि तथा भाव–भूमि में परिवर्तन कर दिये हैं । इसके कारण आज मानव की दृष्टि जीवन की नई दिशा की ओर उन्मुख हो रही है, और इस जीवन दृष्टि ने कानव–प्रकृति को परिवर्तित कर एक नये परिवेश में उपस्थित किया है । परिणामस्वरूप स्वातन्त्रोतर काव्य में यांत्रिक सभ्यता का प्रभाव उत्पन्न हुआ जिसकी चर्चा यहाँ की जा रही है ।

स्वातंत्र्योत्तर काव्य में यांत्रिक सभ्यता का प्रभाव :

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिकता प्रत्येक काल में प्राप्त हो सकती है । देखने में प्राय: आता है कि काव्य में रूढ़ियों का विरोध, परम्परा की जड़ प्रवृत्ति को नकारना है और यह अस्वीकृति ही एक परम्परा में विधटन, संशोधन, परिवर्द्धन एवं परिवर्तन का दावा करती है । यह आधुनिकता एक ऐसा युग बोध है जो जीवन के साथ कंधे से कंधा मिलाकर यथार्थ अभिव्यक्ति को स्पर्श

करता है । समसामयिक काव्य में यांत्रिक प्रगति के बिना वर्तमान साम्राज्यवाद का विकास असम्भव है । कारण यहाँ आते ही अंग्रेजों बिना किसी रचनात्मक प्रस्तावना के भारतीय समाज व्यवस्था पर आधात किया । यांत्रिक प्रसाधनों का प्रयोग वे अपने हित में करना चाहते थे । भारत जैसे विशाल राष्ट्र का अधिक दिनों तक अपनी नीतियों में बंदी नहीं बनाया जा सकता था इसलिए यांत्रिक विकास के लिए हमने एक स्वतंत्र दिशा में कार्य करना आरंभ कर दिया । प्रथम महायुद्ध के उपरान्त इन क्षेत्र में शासन की अवरोधक नीति के उपरान्त भी प्रगति हुयी । राष्ट्र का मध्यवर्ग सबसे अधिक चेतना सम्पन्न वर्ग था । पं. जवाहरलाल नेहरू का वह कथन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है । ''नवीन यांत्रिक और औद्योगिक सभ्यता के विश्व अग्रदूत अंग्रेजो के प्रभाव से सामन्ती व्यवस्था पर आधारित यहाँ के मध्यवर्ग में एक नया उत्थान आया और अंग्रेज ही यहाँ भारत में क्रांति और परिवर्तन के प्रतिनिधि बन गये ।''[४] बहुत समय से सोयी हुयी मूर्छित में नया आविष्कार इस पश्चिम के माध्यम से आने वाली यांत्रिक सभ्यता के कारण सम्पन्न हुआ । स्वतंत्रता के पश्चात् पं. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक-एक के बाद दूसरी पंचवर्षीय योजनाओं ने नये-नये विशाल उद्योगों की स्थापना का पथ प्रशस्त किया तथा दूसरी ओर सरकारी नीति तथा अनुदान ऋण आदि के प्रोत्साहन से अनेक छोटे-बड़े निजी उद्योग धंधे खड़े हुए । इस नयी आर्थिक प्रगति ने जहाँ देश के आर्थिक जीवन को प्रभावित किया वहाँ परम्परागत समाज व्यवस्था तथा उसके गठन में अपूर्व परिवर्तन का पथ प्रशस्त किया । इसके कारण सामाजिक जीवन मूल्यों में स्पष्ट परिवर्तन भी आये । नये-नये सामाजिक - आर्थिक वर्गो तथा उनके

हित संघर्षों की भूमिका भी तैयार हुयी । यह उल्लेखनीय है कि भवानी प्रसाद मिश्र तथा अनेक अन्य आधुनिक कवियों के काव्य में यांत्रिक सभ्यता के प्रभाव से नव विकसित सामाजिक परिस्थिति का सटीक आकलन हुआ । वैज्ञानिक सभ्यता ने हमारे जीवन को यांत्रिक सुविधाएँ प्रदान की । राष्ट्र का मध्यम वर्ग सबसे अधिक चेतना सम्पन्न वर्ग था । इन सब परिणामों के फलस्वरूप एक बौद्धिक दृष्टि आयी । मिश्रजी ने यांत्रिक सभ्यता का विरोध तो नहीं किया, क्योंकि बौद्धिक विकास के कारण समाज का उत्तरोत्तर विकास होता गया । लेकिन मिश्रजी ने इससे उत्पन्न प्राचीन विकृतियों के प्रति विद्रोह उत्पन्न कर दिया तथा नवीन जीवन कल्पना में नये अर्थ की स्थापना के लिए सतत संघर्ष आरंभ किया, जो उनके काव्य संकलनों का पर्याय है । वैसे इस पुष्टि का निवारण अन्य दूसरे महापुरूषों के वक्तव्य से भी ज्ञात होता है । अंग्रेजों के आने से भारत में क्या परिवर्तन हुये इसका विवेचन स्वंय अरविन्द के कथन में मिलता है - ''भारतीय संस्कृति अपने उदय काल में पर्याप्त रूप से विकसित हुयी, किन्तु कुछ दिन के बाद एक स्थान पर आकर रूक गई, जहाँ से उसे पुनः विकास की आवश्यकता थी । हम लोग कभी पीछे मुड़ते और कभी-कभी अपने मार्ग से अलग हो जाते थे । हमें अपनी संस्कृति की कुछ मान्यताओं पर अश्रद्धा होने लगी थी जो इस यूरोपीय प्रभाव से खत्म हो गयी । भारतीय यूरोपीय सामाजिक पद्धति का अंधानुकरण करने लगे । भारत की सभ्यता, संस्कृति नष्ट तो नहीं हुयी पर यूरोपीय संस्कृति के आधात ने उसे प्रेरणार्थे अवश्य दीं - दो प्रेरणायें - (१) हमें एक बौद्धिक और पैनी दृष्टि मिली । (२) नव-निर्माण की दिशा

में उत्साह । (३) भारतीय सभ्यता संस्कृति के मूल्यों की पुनस्थापना और उन पर विजय पाने का अवसर ।''[५] इस तरह इस बौद्धिक दृष्टि ने मनुष्य तथा समाज के सम्बन्ध में हमें एक नया चिन्तन प्रदान किया । जिस पर प्रसंगानुसार आगे विचार किया जायेगा । आधुनिक चेतना का दूसरा प्रेरणा-स्रोत मानवतावादी दृष्टिकोण है, जैसा कि परवर्ती विवेचन से स्पष्ट है ।

- मानवतावादी दृष्टिकोण :

मानवतावादी दृष्टिकोण आधुनिक युग में एक नये सामाजिक संदर्भ का द्योतक है । नयी कविता का मूलाधार मानव-वैशिष्ट्य और उसका आस्थासूचक जीवन दर्शन है । इसकी उपलब्धि वैयक्तिक सत्य की अभिव्यक्ति और स्वत्व रक्षण की प्रबल चेतना है। आज जो विश्व-मानव धर्मो, सम्प्रदायों एवं जातियों वर्गो में विभक्त है । उसे मुक्त करके वैज्ञानिक उपलब्धियों के सहारे सामाजिक स्तर प्रतिष्ठित करना उसका प्रमुख लक्ष्य है । भले ही वह मानव किसी भी धर्म, जाति, भाषा और वर्ग का क्यों न हो । उसके सर्वांगीण विकास की दृष्टि से वह उसे पुरातन मूल्यों और रूढियों से मुक्त बनाने के लिए व्यंग्य प्रहार करते है ।आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का कथन है - ''कि मानवतावादी लेखक अधिक भावुक और आदर्श प्रेमी होता है । वह अपनी अपार सहानुभूति से पददलित मानव की अशेष निहित शक्तियों और संभावनाओं का आलेख करता है ।''[६]

मिश्रजी के कुछेक काव्य संग्रहों में मानवतावादी चेतना ने नये मानव की जिजीविषा को इतना प्रबल बना दिया कि उनकी कविता

जब तक जिन्दा है मनुष्य को कोई भी शक्ति नहीं मार सकती । मिश्रजी का दृष्टिकोण व्यक्ति में समष्टिवाला है क्योंकि उनके दृष्टिकोण में व्यक्ति समाज की इकाई है । उनके मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रमुख आधार समाज ही है, जिसके बिना वह अकेला नहीं रह सकता है । मिश्रजीने 'चकित है दु:ख' नामक काव्य, संग्रह के अन्तर्गत इसी कथन की पुष्टि की है कि –

''यहाँ अपने अपने के ख्याल को
घटना पड़ता है
यहाँ मिल जुल कर खटना पड़ता है
अपने को घटाओ
दूसरों के लिये अपने खटाओ,
कूटस्थ रहने से कुछ नहीं बनेगा
न तटस्थ रहने से,
समष्टि को जीने से सहने से,
जीता है आदमी,
अकेला तो सूरज भी नहीं ।''[७]

उपर्युक्त कविता जितनी व्यक्तिमूलक लगती है उतनी ही सामाजिक सामंजस्य से अनुप्राणित भी है । जितनी वह आत्मीय है उतनी ही वह समाज व्यापी तथा मानवीय भी है । मानवता के स्वस्थ विकास का जितना सुनियोजित कार्य आधुनिक काल के कवियों में पाया जाता है उतना अन्य किसी काल के कवियों में नहीं मिलता है । जिसका सशक्त रूप हमें धर्मवीर भारती के निम्न कथन से भी मिलता है –

"क्या हुआ दुनिया अगर मरघट बनी,
अभी मेरी आखिरी आवाज बाकी है ।
हो चुकी हैवानियत की इन्तहा,
लो तुम्हें मैं फिर नया विश्वास देती हूँ ।"[८]

मिश्रजी के काव्यों में मानवीय गरिमा को प्रतिष्ठित करने का आस्था-युक्त आग्रह तथा उज्जवल भविष्य के प्रति निष्कम्प विश्वास भी है और इसके अतिरिक्त जीवन के अछूते तथा अनजाने आयामों की ओर पाव बढ़ाने का साहस भी देखने को मिलता है । मिश्रजी के अनुसार - "श्रम परिश्रम एवं संकट ही मनुष्य का निर्माण करते है, कष्टों के बीच ही मानव प्रकृति की रचना होती है । यही उसका भाग्य है और यही उसकी बड़ाई है ।"[९] मनुष्य की परिभाषा करते समय भी कवि की दृष्टि में यही तथ्य रहा है -

"सीधी बात समय पर सूझे,
कठिनाई से बढ़कर सूजे,
दिशा समझकर चले बराबर,
उसे आदमी कहो सरासर ।"[१०]

ईसान के बिक जाने पर क्या शेष रह जाता है 'जो लोगों ने तो बेच दिये ईमान' नामक गीत की व्यर्थता स्वयंसिद्ध है । विश्व में शांति-स्थापना को अपना परम उद्देश्य घोषित करनेवाली शासन-व्यवस्थाएँ व्यवहार में युद्ध की भाषा में वार्तालाप करती है। तब मनुष्य का अस्तित्व संकट में होता है । इस संकट की अभिव्यक्ति कवि ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में की हैं, जिसका उदाहरण द्रष्टव्य है -

"भूलता भी कहाँ है मानव,
कि उसका दु:ख गहरा,
दु:ख उसका गीत ठहरा,
दो भयानक शक्तियों के बीच
है उसका बसेरा"

x x x x x

"मंगल विधाता है, वह दिन क्या न आयेगा
आज के इन दैनिकों की प्रतियों को छिपाएगा,
मानव जब अधीर होकर ।"[११]

कवि के अनुसार मनुष्य ने प्रगति की है किन्तु इस प्रगति की उपलब्धि क्या है । मानव-मानव के पारस्पीरक सम्बन्धों का लोप-धृणा, अविश्वास एवं भय का व्यापक प्रसार । ऐसी स्थिती में प्रगति के ऐरावत की गति एवं दिशा पर पुनविचार आवश्यक है । कहीं हम प्रगति की परिभाषा को समझने - समझाने में अनर्थ तो नहीं कर रहे हैं । मिश्रजी ने अपने काव्य संग्रहों में मानव व्यक्तितत्व के विस्तार की बात कही है । इस युग में मानव-सहानुभूति का क्रमश: तीव्रगति से लोप होता जा रहा है । व्यक्ति 'स्व' के कोहर में सिमटता जा रहा है । किन्तु ऐसा करके अपने लिये वह एक कारागार निर्मित कर रहा है । जब तक वह दूसरों के सुख-दु:ख से सम्बन्ध न रखेगा तब तक उसका अपना जीवन उल्लास रहित होगा -

"चार सिक्के प्यार के फेंको
तुम्हे मस्ती मिलेगी,

और मुँह पर हँसी हो,
तो और भी सस्ती मिलेगी ।''[१२]

भवानीप्रसाद मिश्र प्रयोगवादी कवि होते हुए भी परम्परा के जीवन्त तत्त्वों से सम्बन्धित है । मानव सहानुभूति एवं करूणा का प्रसार सन्तों ने जिस युग में किया था, वह युग भी धर्मान्धिता, राजनीतिक, कट्टरता, पारस्परिक धृणा एवं शक्ति के अहं से परिपूर्ण था । मानवीय चेतना वहाँ भी तिरोहित थी । आज की स्थिति वैज्ञानिक स्थिति के बावजुद मध्यकालीन स्थिति ने किसी भी रूप में भिन्न नहीं है । भवानी प्रसाद मिश्रजी की तरह आधुनिक युग के अन्य कवि भी करूणा एवं सहानुभूति के प्रचार की आवश्यकता अनुभूत करें तो निश्चय ही आश्चर्य नहीं होना चाहिये । इस सम्बन्ध में वेद, उपनिषद रवीन्द्र एवं गांधीजी की परम्परा से बहुत कुछ सीखा जा सकता है । विवेच्य कवि श्री भवानी प्रसाद मिश्र मानव गरिमा की स्थापना को आधुनिक युग के संकट-बोध के सन्दर्भ में आवश्यक मानते है -

''मान मानव का बढ़ाओं
उसे अम्बर तक चढ़ाओ
अंक ऐसे आंक दे वह
चाँद सूरज ढाँक दे वह ।''[१३]

इस तरह कवि की दृष्टि में मानवीय गरिमा की स्थापना के लिये करूणा एवं सहानुभूति का प्रसार अत्यन्तावश्यक है । आधुनिक युग में मानवतावादी दृष्टिकोण से सामाजिक समानता के मूल्यों की प्रतिष्ठा

हुई । मानवतावाद का इतिहास बताता है कि पुरातनता और आधुनिकता ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में मानववाद के विकास के सूचक हैं इसका अभिप्राय यह नहीं कि प्रचलित मानवतावाद में अमानवता के अंश विद्यमान रहते है वरन् पूर्ववर्ती मानवतावाद के कुछेक मूल्य नये युग के सन्दर्भ में अपना अर्थ खो बैठे है । जितने उर्ध्व एवं उदात्त मानवमूल्य होगें, भौतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर जितनी व्यवस्थित एवं प्रगतिशील जीवन दृष्टि होगी उतना ही श्रेष्ठ मानवतावाद होगा ।

''समस्त मध्यकाल में निश्चित सृष्टि और इतिहास क्रम का नियन्ता किसी मानवोपरि आलौकिक सत्ता को माना जाता था । समस्त मूल्यों का वहीं केन्द्रीय आधार था और मनुष्य की एकमात्र सार्थकता यही थी कि वह अधिक से अधिक उस सभ्यता से तादात्म्य स्थापित करने की चेष्टा करे ।''[१४]

जीनव (मानवता) सम्पन्न दृष्टि ही मानवता की संक्षिप्त सी परिभाषा है । अत: जब-जब मानवतावाद में ह्रांसशील तत्त्व जोर पकड़ेगे तब तब जीवन की स्वाभाविक गति अवरूद्ध हो जायेगी ।

कवि का सामाजिक आशय :

भवानीप्रसाद मिश्र की काव्य चेतना सामाजिक आशय और जनजीवन को आधार बनाकर चली है । उसमें एक जीवंत संवेदनशीलता है जो बाह्य तत्त्वों को ग्रहण करती हुई कवि की मानसिकता को संजोती है । इस अभ्यान्तरीकरण के बाद ही अभिव्यक्ति की स्थिति आती है । ''काव्य में साहित्य में चूँकि आभ्यान्तरिक जीवन दृष्टि

प्रकट होती है, इसलिए जब तक कि रचनाकार बाह्य अनुरोधों और आग्रहों को स्वीकार करके उनमें प्राप्त सत्यों के अनुसार जीवन का सामाजिकरण नहीं कर सकता तब तक वह जीवन दृष्टि से अर्थात् उन अनुरोधों और आग्रहों को अंतर में स्थान देकर उनकी क्रियाशील शक्ति से सामाजिकरण जीवन को काव्य में कलात्मक रूप से प्रकट नहीं कर सकता ।''[१५] मिश्रजी एकांत वैयक्तिकता के विरोधी है । वे व्यक्ति को एकातिकता, निराशा और अनास्था से निकालकर समाजोन्मुख और व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित करने के आकांक्षी है । उनके काव्य में 'चतुराई का वितान' और चमत्कारों में पड़ी गांठे नहीं है । उनकी 'वाणी की दीनता' व्यक्ति के जीने की लालसा और क्षमता को पहचानती है तथा यथार्थ से प्रेरणा लेकर युगानुरूप स्वस्थ तत्त्वों को समेटकर इतना विस्तार ग्रहण करती है कि कवि की वाणी एक व्यक्ति की वाणी न होकर समाज की वाणी बन जाती है । वह वस्तुतत्त्व को प्रमुखता देता है और साथ ही लोकतत्त्वाग्रही है । कवि ने अनुभवों का निचोड निकाल लिया है कि 'साधारण जन ठीक जन है' इसलिए उसका काव्य जनसामान्य का काव्य है । मिश्रजी जीवन में पूरी तरह उतरना चाहते है - 'घाट से हाट तक', 'हाट से घाट तक' क्योंकि निष्क्रिय और तटस्थ बैठना ठीक नहीं । उनका मत है कि - 'समष्टि को जीने से सहने से जीता है आदमी ।'' उन्हें इस बात का गहरा क्षोभ है कि 'आदम का जाया यह अपनी भी छाया से कम है' और 'ठीक आदमकद कोई नहीं है ।' इसलिए वे हर पीछे-आने-जाने वाले का सम्बल बनकर एक तीर्थ यात्री का उत्साह निभाना चाहते है । वे कई रचनाओं में आत्मस्थ दिखलाई देते है, किन्तु सामाजिक वैषम्य, शोषण, युद्ध संकट आदि स्थितियों से अनुभिज्ञ नहीं । उनका कवि-कर्म

अपने सामाजिक दायित्व को भली-भाँति जानता है । वे सामाजिक चेतना की प्रशस्त भूमियों की ओर हमें उन्मुख करते हुए यह सिद्ध करते है कि समिष्ट से जुड़ कर ही व्यक्ति की सत्ता है । ''सच पूछा जाय तो भवानी प्रसाद मिश्र की सम्पूर्ण साधना एक ऐसे समन्वयकी खोज है जिसमें व्यक्ति समिष्ट के लिए समर्पित होकर भी अपनी इयता को सुरक्षित रखता है और सबके लिए जीते हुए भी अनासकत रहता है । गीता की भाषा में कहा जाए तो यह 'कर्म में अकर्म की साधना है ।''[१६] मिश्रजी की काव्य चेतना कहीं भीड़ का अंग नहीं बनती और भीड़ की उत्तेजनाओं में अपना संतुलन और चिंतन नहीं खोती । उन्होंने स्पष्ट कहा है कि - 'मेले में अभी नहीं संभव है कभी नहीं' निस्संदेह विविध रूपों में सामाजिक आशय और व्यापक मानवीय दृष्टि उनके काव्य में प्रतिफलित हुई है । उनमें ऐसा नहीं कि जीवन कहीं ओर कहीं छंद है ।'

यह उल्लेखनीय है कि ज्यों-ज्यों हम आधुनिक युग में प्रवेश करते गये त्यों-त्यों इस मानवोपरि सत्ता का अवमूल्यन होता गया । आधुनिककाल तक आते-आते हम यह मानने लगे कि दृष्टि के विकास की दृष्टि के साथ न तो मानववादी सत्ता के प्रति विश्वास शेष रहा और न ही उस सत्ता को मानने वाले प्रतिनिधियों के प्रति आस्था । क्योंकि लोग यह विश्वास करने लगे कि सम्पूर्ण मानव मूल्यों का विधायक मानव ही है, पर प्रवृत्ति के रूप में वह प्राचीन साहित्य में भी नहीं कहीं पाया जाता है । वेदों की ऋचाओं के रूप में मानव-गरिमा के स्वस्त्ययन का स्रोत खोजा गया हैं । महाभारत में मानव की श्रेष्ठता का जयघोष बड़े सशक्त रूप में किया गया है ।

मानववादी निकाय के अन्तर्गत अराजकतावाद भी अन्तर्भूत है । इसमें सम्पूर्ण समाज-व्यवस्था से निरपेक्ष पूर्ण व्यक्ति के रूप में मानव को स्थापित करने का प्रयास हुआ है । निष्कर्षतया हमें जीवन में आस्था रखनी होगी जो खोखली श्रद्धा का नाम नहीं है । आस्था पर विवेकशील चिन्तन का नियंत्रण रहना आवश्यक है । विवेक पर विश्वस्त होकर वह समझ सकें कि विवेक से ही मनोबल सर्वोपरि और अपराजेय बन जाता हैं । डॉ. धर्मवीरभारती के शब्दों में - ''मानवीय गौरव की प्रतिष्ठा इसी में है कि मनुष्य को हम विवेक संकल्प और शक्ति से युक्त इतिहास का निर्णायक और नियति का अविनायक मान 'गेटे' महोदय ने तो यहाँ तक कहा है कि 'भावना में ही सब कुछ है' । स्वच्छन्दतावाद ने पहली बार भावना के सामने विवेक का पूर्ण तिरस्कार कर अविवेक के लिए जो द्वार खोल दिया उस चिन्तनधारा ने ऐसे तत्त्व प्रविष्ट करा दिये जो बार-बार मनुष्य के विवेक और उसकी संकल्प शक्ति को निरर्थक मूल्यहीन सिद्ध करते गये और मानवीय गौरव के मूल्य पर भी कुठाराधात करते रहे ।''[१७] कालिस ले काउन्ट ने कहा है कि - ''बीसवीं सदी के मानववाद को सम्पूर्ण मानवता के सर्वाधिक कल्याण को इस समस्त विश्व में बौद्धिक और प्रजातांत्रिक पद्धति पर आनन्द पूर्ण सेवा का दर्शन कहा है ।''[१८] यह मानववादी परिकल्पना हमें नई आस्था ही नहीं देती, वरन् उस आस्था की सक्रियता के लिये निरापद पथ भी प्रदान करती है । बीसवीं सदी के आरंम्भिक चरण में कुछ प्रान्तों में पहले और कुछ में बाद में प्रकट होने वाली व्यक्तिवादी चेतना का मूल उत्स मानव विषयक यह नवीन दृष्टि ही है, जिससे सामाजिक जीवनमें हमारी

शक्तियों का अदृश्य के प्रति समर्पित न कर हमारे जीवन व्यापारों को अधिक से अधिक प्रगतिशील बनाने में योगदान दिया ।''[१९]

सामाज्यवाद और नई सामाजिक चेतना

साम्राज्यवादी व्यवस्था के अन्तर्गत राजा आधुनिक जमींदार और बड़े से बड़े पूँजीपतियों को माना जा सकता है । यह वर्ग मूलतः वह वर्ग है जो वैधानिक और अवैधानिक विधियों से बिम्ब और मध्य-वर्ग के व्यक्तियों का शोषण कर अपनी विलासिता की सिद्धि और वृद्धि करता है । प्रायः भारतीय आधुनिक समाज में स्वतंत्रता के पूर्व इसी कारण राजा और जमींदार और बड़े-बड़े पूँजीपति ब्रिटिश शासन की सुदृढ़ प्रतिष्ठा का पथ प्रशस्त करते थे । ए. आर. देसाई का मत है - ''जमींदार वर्ग अधिकत्तर प्रगतिशील सामाजिक सुधारों का विरोध करता था ।''[२०]

स्वतंत्रता पूर्व भारतीय जन जीवन की गति पराधीनता के कारण अपने चतुर्दिक विकास के उन्मुक्त पथ का अनुगमन करने में सर्वथा असमर्थ रही थी । समाज में रूढ़िवादिता एवं अन्य विश्वास की लहर ओर गहरी होती रही थी । तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक पारिवारिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक दूर्व्य व्यवस्था पर दृष्टिपात करने से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि भारत की सामाजिक दशा दीनवस्था की चरम सीमा तक पहुँच गयी थी । हिन्दु जाति का प्रत्येक अंग विकृत हो चुका था । समय की प्रगति के अनुसार समाज में अनावश्यक सुधार एवं परिवर्तन के स्थान पर हिन्दु परम्परा लींक को पीट रहे थे । मतानुगति का और रूढिवाद में अनन्य भक्त बन बैठे थे । नवजागर

द्वारा २०वीं सदी के आरम्भ में रूढिवादिता के विरूद्ध नवचेतना के विकास के प्रयास आवश्यक हुये, किन्तु उसका प्रभाव अत्यन्त ही सीमित रहा । आगे चलकर राष्ट्रीय आन्दोलनो में यह प्रयास उपेक्षित सा हो गया । क्योंकि ऐसी गतिविधियों का संचालन करनेवाले लोग राष्ट्रीय आन्दोलनों में कूद पड़े । अतः समाज सुधार में जो गति १९वीं सदी के अन्तिम भाग में आयी थी वह भी अवरूद्ध सी हो गयी । काव्य का सृष्टा एक सामाजिक व्यक्ति है जो जन्म से लेकर समाज से बहुत कुछ ग्रहण करता है फिर बड़ा होकर उसका देय उसे लौटाने की चेष्टा करता है । तात्पर्य यह है कि कोई भी कवि समाज के प्रभावों से अछूता नहीं रह पाता है ।

आज के वैज्ञानिक युग में पदार्थ परक जीवन दृष्टि के निष्कर्ष पर पुराने मूल्यों को कसकर देखने पर उनकी आवश्यकता एवं प्रतिकूलता स्वतः सिद्ध हो जाती है । स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज में विघटन के ह्रास की स्थितियाँ उसी मूल्यवान परिवर्तनों को लेकर गतिशील होती जा रही थी । "परम्परागत समाज व्यवस्था के मूल्यों को आत्मसात् करने लगता है । अब मूल्य परिग्रहण की प्रक्रिया में व्यक्ति के संघर्ष एक आवश्यकता बन गये है, वस्तुतः यह समाज से नहीं, वरन् मूल्यों का परम्परागत मूल्यों से सम्बन्ध है, अतः युगानुरूप मूल्य व्यक्ति का पूर्ण समर्थन पाकर स्थान बनाते जा रहे है ।"[२१]

इससे स्पष्ट है कि वस्तुतः मूल्यगत परिवर्तन ही सामाजिक विघटन का मूल कारण है, जिसे वैयक्तिक, पारिवारिक, सामुदायिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देखा जा सकता है । व्यक्तिगत विघटन के

अन्तर्गत आत्महत्या, मद्यपान, वेश्यावृत्ति, पारिवारिक विधटन के अन्तर्गत पारिवारिक तनाव, विवाह विच्छेद एवं वैवाहिक समस्याएँ तथा सामाजिक विधटन की प्रक्रिया मैं नैतिक भ्रष्टाचार, अपराध, बेकार तथा व्यावसायिक विभिन्नताएँ, आदि की समस्याएँ पनपी है । अन्तराष्ट्रीय विधटन की सम्भावनाओंने जन मानस क्रांति एवं युद्धीय आशंकाओं को जन्म दिया है ।

स्वाधीनताकालीन भारत में समानता के स्तर पर सामाजिक व्यवस्था को जन्म देनेवाली मुख्यत: दो प्रेरक धाराएँ प्राप्त होती है - १. महात्मा गाँधीजी के सामाजिक आदर्शो तथा नीतियों को ग्रहण कर चलने वाली विचारधारा और २. कालमार्क्स की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विचारधारा । उद्देश्य की दृष्टि से दोनों के मूल में सामाजिक विषमता को दूरकर सामाजिक संरचना के द्वारा समानता की स्थापना करता है । किन्तु अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए प्रथम विचारधारा शांति और दूसरी क्रांति के पथ का अनुगामन करती है । सन् १९२६ के बाद सामाजिक चेतना में जो वर्गीय संघर्ष की चेतना पनपी वह उनही दो मूल धाराओं के प्रभाव का प्रतिफल है । वर्गीय चेतना में संघर्ष की सम्भावनाएँ बढ़ी रहने के पश्चात् भी स्वातन्त्रोत्तर भारत के सामाजिक ढाँचे के स्पष्टत: तीन भागों में विभाजीत किया जा सकता है -

(१) उच्च वर्ग एवं पूँजीपति एवं जमींदार ।

(२) मध्यमवर्ग - भूस्वामी कृषक एवं छोटे मोटे व्यापारी, व्यवसायिक दूकानदार, महाजन टेकनीशियन, इंजीनियर, वकील, प्रोफेसर तथा शिक्षित नौकर वर्ग ।

(३) निम्न वर्ग शुद्धतः उन क्रमिक किसानों से संगठित वर्ग है जो पूर्णतः साधन विहीन क्रमशः कारखानो और खेतों में अत्यन्त कम मूल्य पर अपने काम का विनिमय करने के लिये विवश है ।

"स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रथम वर्ग की शक्ति का ह्रास तो हुआ, किंतु नये जनतंत्रीय जमींदार पैदा होते गये है, आज देश की अधिकाधिक सम्पति एवं वैभव विलास का उपयोग यही वर्ग करता जा रहा है । जमींदारों एवं उद्योगपतियों की चेतना अधावत्ति सामन्तवादी संस्कारों से पूर्णतया मूक्त नहीं हो सकी है । मध्यम वर्ग विशुद्ध रूप से सुशिक्षितों एवं बुद्धिजीवियों का वर्ग है ।"[२२] इसका साहित्य के साथ सम्बन्ध निर्दिष्ट करते हुए डॉ. प्रसाद शर्मा का मत है कि "आधुनिक भारत के अधिकांश समाज सुधारक राजनीतिक, कवि, साहित्यकार, वैज्ञानिक, इतिहासकार, समाजशास्त्री, अर्थ–शास्त्री आदि सभी इसी वर्ग में उत्पन्न हूए है, जिन्होंने आधुनिक भारत का पुनःनिर्माण करने में बड़ा ही योगदान प्रदान किया है ।"[२३] स्वतंत्रता के अनन्तर यह वर्ग बौद्धिक चेतना से प्रभावित होकर शैक्षणिक, सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक आदि क्षेत्रों में प्रगतिवादी तो बनता गया किन्तु नवीन औद्योगिक व्यवस्था के कारण नगर और गाँव के अधिकांश मध्यमवर्ग के लोगों का सामाजिक जीवन नैतिक और मानवीय मूल्यों से रहित होकर अवसरवादिता महत्वकांक्षी, व्यक्तिगत स्वार्थ का शिकार अधिकाधिक रूप से होते चले जा रहे है ।

पूँजीवादी वर्ग के जीवन मूल्यों से नियंत्रित मध्यमवर्ग भी उस वर्ग का अनुसरण करने की प्रतिस्पर्धा में खोखला होता चला जाता

है, और सामाजिक नैतिक काल रूप तथा व्यंजनाओं के कारण उनका अतृप्त अहम् और उनकी अतृप्त वासनाएँ भाँति-भाँति मानसिक ग्रन्थियों, व्याधियों और कुण्ठाओं का निर्माण करती है ।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि आज के वर्तमान जीवन में अर्थ ही विषमता का मूल कारण है और अर्थ पर ही आधारित आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत नये वर्गों का प्रादुर्भाव हुआ है । फलतः वर्ग चेतना और वर्ग संघर्ष विशेषतः आधुनिक युग में ही प्रतिध्वनित हुआ है । इस संदर्भ में मेरा मानना है कि - 'औद्योगिकरण से पूर्ण भारत का प्रत्येक गाँव आत्मनिर्भर था, और संयुक्त परिवार जातिप्रथा तथा पंचायत इन तीनों संस्थाओं द्वारा सशक्त सामाजिक व्यवस्था नियमित तथा व्यवस्थित थी, व्यक्ति का पारिवारिक जीवन सुखी और समृद्धिवाला था और बेकारी, बीमारी, आत्महत्या, विवाह-विच्छेद, अपराध और भ्रष्टाचार का आज जैसा रूप न था ।' इस बात से मेरे मन में यह स्पष्ट हुआ कि - 'स्वतंत्रता के पश्चात् यांत्रिक-भौतिक सभ्यता का प्रभाव पहले की तुलना में अधिक मात्रा में भारतीय समाज पर पड़ा है, जिसके परिणाम स्वरूप प्राचीन - आदर्शों, सिद्धांतो एवं मानवीय मूल्यों में टूटन, स्खलन तथा ह्रास की स्थितियों व सम्भावनाएँ भी अपने अनुकूल एक नये परिवेश का निर्माण कर रही है ।'' टूटते हूए तथा साथ ही उभरते हुये मानवीय मूल्यों के कारण पारिवारिक सम्बन्धों, सन्दर्भो और व्यवस्था में भी परिवर्तन का चक्र गतिशील हुआ है । औद्योगिकरण से नष्ट प्राय होने वाले कुटीर उद्योगों व कृषि उद्योगों के अभाव में एक ही परिवार के विभिन्न सदस्यों को नगर में जाकर भिन्न-भिन्न व्यवसायों

में संलग्न होना पड़ा । पारिवारिक एकता विभिन्नता में विभाजित होने लगी । परम्परा से प्रतिष्ठित संयुक्त परिवार शनैः शनैः टूटने लगे । यांत्रिक उद्योगों एवं नगरों की समस्या ने जहाँ एक ओर सामाजिक विघटनों को जन्म दिया, वहीं दूसरी ओर उनसे पारिवारिक मूल्यों में भी विधटन परक परिस्थितियो उभरती जा रही हैं । नगरीकरण के अस्तित्व के परिणाम स्वरूप परिवार का सदस्य प्रशिक्षण नौकरी और मनोरंजन प्राप्त करने के अनेक संदर्भो और संबंधों से जुड़ने लगा है । माता–पिता के घर से बाहर नौकरी करने के कारण यहाँ सन्तान के प्रति अनेक दायित्व निर्वाह में विधटन ह्रास की स्थिति पनपी है, वहीं दूसरी ओर व्यवसाय विभिन्नता एवं शैक्षणिक वैचारिक दृष्टिकोणों से उत्पन्न अन्तर के कारण भी दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों में एकरूपता का अभाव दृष्टिगत होने लगता है । आज का पारिवारिक जीवन विधटन परक अनेक प्रकार की प्रतिकूलताओं और कठिनाईयों से ग्रस्त कहा जा सकता है । आज के पति–पत्नी के पारस्परिक सम्बन्धों में पारम्परिक सहयोग और सद्‌भावों को वृत्तियों का अभाव उनके जीवन को अनेक प्रकार के बिखरावों और तनावों को परिपूर्ण कर देता है आज अवैध यौन सम्बन्धों की संख्या में अभिवृद्धि होती जा रही है । तलाक, पुनःविवाह, विवाह–विच्छेद, प्रेम विवाह आदि विसंगतियों एवं असंगतियों का कुपरिणाम है, जिससे पारिवारिक मानसिकता भी नये सन्दर्भो में बदलती हुई परिलक्षित होती है ।

स्वतंत्रता के पश्चात् संवैधानिक रूप से स्त्री को पुरूष की भाँति समानाधिकार की प्राप्ति हुयी है, जब वह घर की चार दीवारों के भीतर कैद न होकर स्वतंत्र रूप से जीवन के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व शैक्षणिक आदि स्तरों से जुडी हुई दृष्टिगत हो रही है ।

इस प्रकार युग-युग से पराजिता नारी आज अपराजिता या स्वच्छंद हो गयी है । परम्परा से लांछित व उपेक्षित नारी अपने भोग्या व कामिनी के क्षेत्र से निकलकर माता, सहचरी, प्रेयसी, सेविका, आराधिक एवं चण्डिका जैसे उज्जवल व समानित रूपों में प्रकट होती जा रही है ।

आधुनिक नारी की प्रगति को हम इस प्रकार देखते है - 'इस आधुनिक नारी से भारत में सांस्कृतिक नारीत्व के किसी भी अलंकार या आभुषण का अपमान या परित्याग नहीं होने दिया है । इससे समस्त अनावश्यक मध्ययुगीन विकृतियों को झटक दिया है, इसने अपने को आधुनिक युग के भारत की अनावश्यकताओं के अनुरूप ही ढाल दिया है । इस नारी का आदर्श पाश्चात्य नारी का स्वरूप बिलकूल नहीं है.... इसके लोचनशील से सजे है, इसने मातृत्व नहीं खोया है, इसने पर्दा उठा दिया है कि नग्नता या निर्लजता इसे बिलकुल अच्छी नहीं लगती, आज भी पतिव्रता है, सुशिक्षित होकर यह और भी उपयोगी बन गयी है, घर को तिलांजली वह न देकर भी राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में अपने देश व समाज के लिये मातृत्वपूर्ण कार्य कर रही है ।

साम्राज्यवादी एवं पूंजीवादी व्यवस्था का प्रभाव भारत के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पर भी पड़ा । पाश्चात्य देशों में विशाल मध्यवर्गीय चेतना ने इस व्यवस्था के प्रति गंभीर विद्रोह प्रकट किया था यह विद्रोही भावना हमारी परिस्थितियों के अन्तर्गत देश की नवोदित राष्ट्रीय प्रवृतियों को प्रोत्साहित कर रही थी । आचार्य नरेन्द्रदेव के शब्दों में - ''साम्राज्यवादी व्यवस्थाने यहाँ की प्रतिक्रियावादी

सामन्ती प्रणाली से भी सन्धि कर ली थी । जिसने अपनी सीमाओं को तथा उमड़ती हुयी हिंसात्मक प्रयत्नों के माध्यम से दबाने की पूर्ण रूपेण चेष्टा की थी ।''[२४]

– जातीय – असमानता :

गुणों की स्थिति, श्रम विभाजन और परम्परा की धारणा के कारण समाज की अवधारणा की अखण्डता वर्गो में विभक्त हो जाती है । अत्यन्त मौलिक और अनिवार्य बन्धन समाज को कई रूपों में आबन्ध करके उच्छिन्न मानवीय शक्ति को संपृक्ति देते हैं । कालान्तर में ये ही बंधन परम्परा और प्रयोग से हटकर रूढ़ि का रूप धारण कर लेते हैं । इन्हीं रूढ़ियों को मानवीय सामाजिक संगठन जाति के नाम से अभिहित किया जाता है ।

हमारे भारत देश में जाति–व्यवस्था के कई अभिशाप है । जब मानस में परिव्याप्त साम्प्रदायिक मतवाद, जातीय गौरव, अस्पृश्यता एवं अशिक्षा इसकी ही कोटियाँ है । स्वतंत्रता से पूर्व हमारी नैतिक चेतना धार्मिक बन्धनों के स्खलित पाशों में जकड़ी हुयी थी। साम्प्रदायिकता का विष इसी भावना में अन्तर्निहित है । यहाँ तक कि स्वतंत्रता संग्राम मे भी हम इस भावना को नहीं भूल सके, निश्चित ही उस समय 'मुस्लिम लीग' की प्रतिक्रिया में ही हिन्दुओं ने भी साम्प्रदायिक संस्थाओं का निर्माण किया । जिसका परिणाम शुभ नहीं हुआ । इन संस्थाओं के कारण कांग्रेस की निष्पक्षता में संदेह किया जाता रहा । वे संस्थाएँ हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ आदि है । कभी–कभी पेशेवर साम्प्रदायिक झगड़े भी राष्ट्रीय पैमाने

पर पसार पाते हैं । संक्रान्ति कालीन स्थिति में यह सहज तथा स्वाभाविक है । महात्मा गाँधीजी की हत्या इसी विकृति का परिणाम कहा जा सकता है । स्वतंत्रता के बाद यद्यपि सैद्धांतिक राजनीति की दृष्टि से इस समस्या का निदान हो गया था, परन्तु व्यावहारिक रूप से आज भी समाज में यह दोष है । विद्यार्थी संध, शिक्षक संध, मजदूर संध आदि संध कभी तो अपने हितों के लिए शासन के सामने आते है और कभी साम्प्रदायिक सहानुभूति के रूप में । अवश्य ही द्वितीय प्रकार के झगड़े देश की सामाजिक जड़ को कमजोर बना देते है ।

राजा राममोहन का सती प्रथा विरोध, विधवा विवाह, ईश्वरचंद्र विधासागर एवं केशवचंन्द्रसेन का स्त्री शिक्षा प्रसार, अर्न्तजातीय विवाह, प्रौढ पाठशालाओं की स्थापना आदि कार्य आर्य समाज द्वारा किये गये । सामाजिक पुनर्गठन की आवश्यकता के कार्य, दयानंद का बहुविवाह, बालविवाह एवं कांग्रेस का शारदा ऐक्ट एवं गांधी के प्रयत्न से सभी धर्मो एवं वर्णों के आदर की धारणा आदि सामाजिक सुधारात्मक कार्यो से जातीय बन्धनों को तोड़ने में पर्याप्त सफलता मिलती है । हमारी जागरूक मानवतावादी चेतना ने हमें इस संकीर्णता से ऊपर उठने में पर्याप्त सहायता दी है।

इस काल में स्वतंत्रता के पूर्व आन्दोलनों के रूप में तथा स्वतंत्रता के बाद शासकीय सिद्धांतों के रूप में इस समस्या को दूर करने के लिए पर्याप्त प्रयत्न किये गये है । दयानन्द सरस्वती और महात्मा गांधीने अछूतों के उद्धार के लिये अपने जीवन में सबसे अधिक उत्साह दिखाया है । हमारे संविधान ने इसे अवैधानिकता की संज्ञा

देकर और भी ज्यादा स्पष्टकर दिया है । जाति व्यवस्था के टूटने के साथ अस्पृश्यता अपने आप दूर हो जाती है । आचार्य विनोबा भावे का प्रयास इस दिशा में सराहनीय है ।

समाज-व्यवस्था के अन्य पक्ष :

अंग्रेजों से पहले हमारे देश में सामन्तीय समाज व्यवस्था थी । ग्राम निवासी देश के स्वाभाविक विकास से असम्पृक्त होकर अपने सामन्तों के धेरों में मजबूती से बचे हुये थे । अमेरिकन लेखक बुक ए ड़मन ने असंदिग्ध शब्द में लिखा है - ''शायद जब से दुनिया शुरू हुई है किसी भी पूँजी से इतना मुनाफा नहीं हुआ जितना कि हिन्दुस्तान की लूट से ।''[२५]

भारत में उद्योगों के विकास से स्पष्ट रूप से पूँजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग दो वर्ग बन गये । ये दोनों वर्ग मिलकर कैसे रह सकते थे । अपने-अपने स्वार्थो के कारण दोनों आपस में लड़ते रहे । वर्ग-संघर्ष की ओर आर्थिक विपन्नता के कारण अग्रसर हुये । सन् १९१४ से मजदूरों का संगठन बनने लगा और १९२० तक आकर 'अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस' ही बन गयी । वर्ग संधर्ष की चेतना का उदय जब सामान्य को समाजवाद की ओर ले जाने लगा, जिसके कारण अनेक विद्रोह की आवाजे उठी और बारी बारी से हड़ताले होने लगी १९३२ के बाद प्रतिवर्ष मजदूरों की एक बड़ी हड़ताल होती थी । किसानों की स्थिति में भी अंग्रेजों ने परिवर्तन करा डाला, गरीबी, कर्ज का बोझ, लगाव और जमींदारी की प्रथा की वसूली, अनावृष्टि से उत्पन्न अकाल और आपसी फूट के कारण किसान वर्ग

सुखी नहीं रह सका जिससे क्या हुआ कि मजदूरों के संगठन को देखकर बिहार में १९२७ में और १९३० ई. में उत्तर प्रदेश में अधिवेशन किये । सन् १९४० में यह प्रस्ताव पास किया कि – ''मजदूर वर्ग का हित देश में शांति कायम रखने में हैं । इसलिए किसान वर्ग आजादी की लड़ाई में मजदूरों के साथ आगे बढ़कर विदेशी शासन से लोहा लेंगे और देश के साधनों को लुटने से बचायेगे ।''[२६]

व्यक्ति के अनुसार ही समाज भी अपनी केंचुल बदलता रहा है । और उसका विकास होता रहा है । वैसे समाज एक गत्यात्मक प्रक्रिया (Dynamic Process) है । मानवीय सामाजिक विकास को क्रमशः हीगेल तथा मार्क्स ने पाँच युगों मे बाँटा था –

१. आदिम साम्यवादी युग

२. दासत्व युग

३. सामन्तवादी युग

४. पूँजीवादी युग

५. समाजवादी युग

इनमें से प्रथम तीन युग बीत चुके है । चौथे और पांचवे युग के संधि स्थल पर आज हम है । श्री रामधारी सिंह दिनकर ने 'कुरूक्षेत्र' में उस आदिम साम्यवादी समाज का विस्तृत चित्रण 'भीष्म' के माध्यम से किया है । उनके विचार से ''उस युग में जीवन का मार्ग अत्यन्त ही सहज और सरल था केवल अपने लिए ही कोई सुख नहीं चुराता था ।

आज जिस प्रकार सबके प्रकृति से जल और पवन निर्विघ्न सुलभ है, वैसे ही समाज में सभी को भूमि सुलभ है । आज व्यक्ति के स्वत्व की रक्षा दंडनीति के हाथों में होती हैं । पर उस आदिम साम्यवाद के युग में वह स्वत्व प्रत्येक धर्म निरत मनुष्य द्वारा स्वयं समावृत था, जीवन मार्ग अत्यन्त सरल और सीधा था वह निर्भय होकर अपने विकास की चरम सीमा तक जा सकता था ।''[२७]

आदिम साम्यवाद के पश्चात् दासत्व का आविर्भाव हुआ । इस युग में उत्पादन कार्य करने वाले श्रमिकों तथा उत्पादन के साधन दोनों का स्वामित्व कुछ लोगों के हाथों में चला गया । खेती पशुपालन और धातुओं के औजारों के उपयोग के इस युग में निजी सम्पति की धारणा विकसित हुयी । लेकिन उस युग के लोग मिलजुल कर काम नहीं करते थे, इसलिए उनकों दास बनाकर काम उनमें जबरदस्ती लिया जाता था । इस प्रकार समाज दो वर्गो में विभक्त हो गया – मालिक और मजदूर वर्ग ।

तीसरा युग सामन्ती युग था । इस युग में विशेषतः भूमि का स्वामित्व कुछ विशिष्ट लोगों के हाथों में चला गया जो सामन्त कहलाते थे । किसान अर्थदास के रूप में इन सामन्तों के हाथों में अधीन हो गया । कृषि उत्पादन का कार्य करते हूए भी किसान भूमिहीन था । वह दास तो नहीं था, पर उसे सामन्तों की भूमि की जुताई – बुवाई इत्यादि बेगार के रूप में करनी पड़ती थी । युद्ध के समय सिपाही के रूप में सेना में काम करना पड़ता था जिसके बदले में उसे सामन्तों से निर्वाह के लिए भूमि मिल जाती थी ।

चौथा युग पूँजीवादी युग है जो अनेक देशों में आज भी चल रहा है । मशीनों के आविष्कार और उद्योग धन्धों के फलस्वरूप उस युग का प्रादुर्भाव हुआ । इस युग में उत्पादन के नये साधनों पर पूँजीपतियों का अधिकार हुआ । उत्पादक श्रमिक उस अधिकार से वंचित रखा गया । श्रमिकों को अपने तथा परिवार भर के लिए अपने श्रम को अत्यन्त अल्प वेतन पर पूँजीपति के हाथ बेचना पड़ा । पूँजीपतियों द्वारा शोषण बढ़ता गया ।

आज हमारे हिन्दी कवि यह मानकर चलते है कि यदि हमारा समाज विनाश की अवस्था को आ पहुँचा है तो यह एक दृष्टिकोण वर्तमान समाज को देखते हुए ठीक कहा जा सकता है कि हमारा समाज भी पाश्चात्य समाज के समान विलम्ब से सरलता से जटिलता की ओर बढ़ गया है । १९वीं सदी के समाज 'विकासवादी समाज शास्त्रियों तथा 'काम्टे' से लेकर 'हरबर्ट स्वेन्सर' तथा 'लेसर वार्ड' ने समाज विकास को ही समाज प्रगति माना था । समाज की प्रगति की स्वीकारोकित या निषेधोक्ति हमारे आदर्शों पर ही आधारित होती है । तब यह नहीं कहा जा सकता है कि विकास एक वैज्ञानिक अवधारणा है और प्रगति एवं नीतिपरक अवधारणा । परन्तु परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली ये अवधारणायें एक दूसरे को प्रभावित भी करती है । प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन एक वस्तु सत्य भी होता है और मूल सत्य भी !

लेकिन ये गति इतनी ही धीमी है जितनी देखिए –

''धीमी कितनी गति है 'विकास'
कितना अदृश्य हो चलता है

इस महावृक्ष में एक पत्र
सदियों बाद निकलता है ।''

परिवर्तन की स्वाभाविकता को स्वीकार करने के पश्चात् प्रश्न यह उठता है कि परिवर्तन किस में हो समाज में या व्यक्ति में । काल मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन को ही महत्त्व दिया है और सामाजिक परिवर्तन में भी उत्पादन प्रणाली को विशेष रूप से । मार्क्स का तो यहाँ तक मानना है कि मनुष्य की चेतना और उसके अस्तित्व को ही निर्धारित नहीं करती, वरन् उसका सामाजिक अस्तित्व भी उसकी चेतना को निर्धारित करता है । इसके विपरीत गाँधीजी के आत्मवादी होने के कारण व्यक्ति की सामर्थ्य और शक्ति सर्वोच्च मानते थे । गाँधीदर्शन का आरम्भ बिन्दु व्यक्ति है, वे बुरे से बुरे व्यक्ति में भी अच्छाई के बीज मानते थे । अतः उनका विश्वास था कि यदि मनुष्य में निहित अच्छाइयों को उभार कर उसमें परिवर्तन कर दिया जाये तो मनुष्यों की समष्टि समाज में स्वतः ही वांछित परिवर्तन आ जायेगा । इसके अलावा उनकी यह भी मान्यता थी कि समाजवाद लाने के लिए भी पूँजीपतियों का वध करने की नहीं, बल्कि उनका हृदय-परिवर्तन करने की आवश्यकता है । बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने दोनों विचारधाराओं का समन्वय प्रस्तुत किया है - सामाजिक परिवर्तन के साथ वैयक्तिक परिवर्तन भी आवश्यक है -

''पर मैं सामाजिक वैयक्तिक
परिवर्तन का हूँ अभ्यासी,
कहता हूँ सामाजिक ढाँचा
बदलो उसमें हो परिवर्तन

किन्तु साथ ही व्यक्ति भावना
में भी हो नव-जागृति - नर्तन
गदि न उर्ध्वगामिनी बनेगी,
वैयक्तिक प्रवृतियाँ सारी,
तो सामाजिक परिवर्तन की
होने लग जायेगी सवारी ।''

आलोच्य युग में महात्मा गाँधी और काल माक्र्स का प्रभाव साफ-साफ बुद्धिजीवी वर्ग पर पड़ा है । आधुनिक हिन्दी कवि भारत की दो सामाजिक स्थितियों में जिये हैं - एक स्थिति थी सन् १९४७ तक परतंत्रता की और दूसरी स्थिति है सन् १९४७ के पश्चात । स्वतंत्रता का परतंत्रता के युग में पंतजी ने यह विश्वास दो स्थितियों में व्यक्त किया है कि जो स्वप्नों के तन में सोये हुये हैं वे अवश्य ही जायेंगे और जो जीवन निशीथ देख चुके है वे एक दिन जीवन का प्रभात अवश्य ही देखेंगे । 'वाणी' में एक स्थल पर पंतजी ने यह कहा है कि -

''जब समाज का सुख हो निज
हृदय न हो भू सत्य प्रति विमुख
ध्येय एक जग जीगन जनहित ।''

अपनी जनहित भावना का ही परिचय है । इतना ही नहीं मिश्रजी की भी सामाजिक भावना जाति, वर्ग, वर्ण और राष्ट्र की सीमाओं को पार कर एक व्यापकता लिये हुये है ।

सामाजिक भावना चाहे सीमित हो या चाहे व्यापक, समाज की सता की स्वीकृति ही उसकी पहली शर्त है 'महुवा' में शचो द्वारा वरूण से यह कहकर कि –

''सता हाँ समाज की है
वह जो करे – करो ।''

गुप्तजी ने इसी स्वीकृति को अभिव्यक्ति दी है । गुप्तजी समाज की सता को स्वीकार ही नहीं करते । वे तो उसके अस्तित्व के लिए मर्यादा एवं आदर्शो को ही आवश्यक मानते है । व्यक्ति के स्वातंत्र्य का अस्तित्व वह सामाजिक मर्यादाओं के भीतर ही मानते है और सामाजिक बन्धनों को व्यक्ति की मूक्ति के ही हेतु ।

बीसवीं सदी के सामाजिक विकास को प्रस्तुत करते हुए हम यह कह सकते है कि इस युग में विभिन्न प्रभावों के फलस्वरूप एक बौद्धिक दृष्टि हमें प्राप्त हुयी है । परम्पराओं के नवीनीकरण और मानववादी भूमि के स्वीकरण के पीछे इस दृष्टि का महत्व है । पंडित नेहरू के नेतृत्व में जिस समाजवादी रचना की ओर हमारा देश उन्मुख हुआ उसके मूल में इस दृष्टि का ही प्रभाव सक्रिय है नवीन समाज रचना के उत्साहने परतंत्रता के क्षणों में हमारे राजनीतिक प्रमाण को अधिक शक्तिशाली बनाने में अधिक योग दिया है । राजनीतिक दासता की समाप्ति पर हम अर्जित आदर्शो को व्यवस्थित आधार दे रहे है । व्यवस्था देने की हमारी अदम्य अभिलाषा बहुत बार कुष्ठाओं और अवसादों से घिरी हुयी है । भीड़ की प्रवंचना से एक अद्‌भूत एकांकीपन की अनुभूति प्रबंद्ध वर्ग के कुछ व्यक्तियों को होने लगी है । संक्रान्ति

कालीन स्थिति में यह सहज और स्वाभाविक है इन सब असामान्य स्थितियों में हमारा राष्ट्र पूरी शक्ति और सामर्थ्य के साथ नई समाज रचना के लिए कटिबद्ध है । शंकाओं और अनास्थाओं का यह संकट अस्थाई एक आश्वस्त भावसे हमारे निर्माण का विशाल जलोपात तूफानों को चीरता हुआ ध्रुव की ओर अपने विकासमान चरण बढ़ा रहा है ।

- भवानीप्रसाद मिश्रजी के काव्यों का सामाजिक परिवेश :

कवि समाज का सृष्टा एवं दृष्टा दोनों ही होता है । अतीत की ओर देखकर भविष्य की सुखद आकांक्षा करता है । कवि मिश्रजी की अपने युग के प्रति सतत जागरूकता का निर्देशन पूर्ववर्त पृष्ठों में किया जा चुका है । वे समाज के सजग प्रहरी व सचेष्ट कलाकार होने के नाते उसके यथार्थ और अभीसिप्त चित्र खींचते हैं । मिश्रजी ने अपने सम्मुख उपस्थित वर्तमान समाज की प्रगति व उन्नति का चित्र तो खींचा ही है, साथ ही साथ उसकी विकृतियों के चित्रण में भी वे पीछे नहीं रहते, जिसका व्यंग्य पूर्ण चित्रण, उन्होंने 'बुनी हुयी रस्सी' और 'चक्ति है दु:ख' नामक काव्य संग्रह में किया है । इन काव्यों के अन्तर्गत अत्याचारों से मुक्ति पाने के लिए क्रान्ति का आह्वान किया गया है । समाज के शोषित वर्ग के प्रति मात्र सहानुभूति ही नहीं वरन् उसे सुधारने के लिए प्रयत्नशील है । मिश्रजी के अधिकांश काव्यों में जो सामाजिक और आर्थिक स्थितियों का चित्रण हुआ है, उसे सुविधा की दृष्टि से अनेक शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है - सामाजिक समानता, जातीय असमानता, वर्ग-भेद, साम्प्रदायिकता का विष, परिवार - प्रणाली, अर्थ - व्यवस्था, शहरीकरण आदि । मिश्रजी के काव्य में इन पक्षों की अभिव्यंजना के आधार पर हम

उनके सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण का मूल्यांकन कर सकते है । नया कवि समाज के प्रति दायित्व बोध के लिए व्यक्ति को ही अधिक महत्व देता है । क्योंकि व्यक्ति-व्यक्ति के अनुभव लोक एवं संवेदन रूपी सिंधु में गोते लगाकर समाज के अनुभवों एवं संवेदनाओं को आत्मसात् करता रहा है। आचार्य शुकलने तो यहाँ तक कहाँ है कि ''सच्चा कवि वही है जिसे लोकहृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य से सामान्य हृदय को देख सके ।''[२८]

आलोच्य कवि श्री भवानी प्रसाद मिश्रजी ने अपने काव्य संकलनों में अपने परिवेशीय जीवन के साथ-साथ प्रत्येकवर्ग के जीवन की ओर उसमें भी खासतौर से मध्यमवर्गीय जीवन को बड़ी इमानदारी और सहानुभूति की सच्चाई के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की है । एतद्विषयक सामाजिक दोषों एवं नवीन दृष्टिकोणों की ओर भी प्रेरणा सदैव जागृत रही है । इतना तो कहा ही जायेगा कि मिश्रजी निम्न मध्यवर्गीय एवं पददलित वर्ग की आत्मा के सच्चे कलाकार हैं । किसी भी समाज का मान मूल्य उसके जीवन-यापन और उसके सोचने विचारने के ढ़ग पर निश्चित होता है । जीवन-यापन में आर्थिक स्थिति अपना विशेष महत्त्व रखती है । साथ ही समाज को सांस्कृतिक संतुलन भी देती है ।

- सामाजिक समानता :

सामाजिक साम्य की चेतना आधुनिककाल का सांस्कृतिक पुनर्जागरण भी इसके प्रति पूर्णतया सजग और यत्नशील रहा । आज

व्यावहारिक स्थिति जो भी हो, किन्तु समाज विशेष या देश-विदेश के मानव मात्र की एकता ही नहीं अपितु विश्व मानव की एकता मान्यता वैचारिक जगत में प्रतिष्ठित हो चुकी है । मिश्रजी मानवमात्र की समानता के सबल समर्थक है । ऊँच-नीच के भेद-भाव को आज हीन दृष्टि से देखा जाता है जब कि भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही कबीर - तुलसी - बुद्ध व आधुनिक युग में स्वामी दयानंद तथा महात्मा गाँधी ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयास करके मानव मात्र की समानता को प्रतिपादित किया है । मिश्रजी मानवतावाद या सामाजिक साम्य के प्रति आस्थावान कहे जा सकते है । उनके अनुसार भविष्य में कभी न कभी तो वह दिन जरूर आयेगा जबकि मानव-मानव एक हो जायेगा । जाति, धर्म, रंग, वहाँ सभी समाप्त हो जायेगे और मानव की पहचान मानवता होगी । सच्चा समाजवाद तो हमारे भारतीयों को अपने पूर्वजों से ही प्राप्त हो गया था । हमारे पूर्वजों ने सिखाया - ''सब भूमि गोपाल की है इसमें कहीं तेरी और मेरी की सीमाएँ नहीं है।''[२९] भवानीप्रसाद मिश्रजी ने 'गाँधी पंचशती' काव्यसंग्रह का सृजन करते समय गाँधीजी के समाजवाद का स्वरूप इस तरह बताया कि इस समाज के सारे सदस्य बराबर है । न कोई बड़ा है न नीचा, न ऊचाँ । किसी आदमी के शरीर में सिर इसलिए ऊँचा नहीं कि वह सबसे ऊपर है और पाँव के तलये इसलिए नीचे नहीं है कि वह जमीन को छूते है। जिस परह मनुष्य के शरीर में सारे अंग समान होते है, उसी तरह समाज में हर व्यक्ति में समानता होती है । जिसका सजीव चित्रण मिश्रजीने 'गाँधी पंचशती' में कहा है कि -

"शान्ति के लिए युद्ध अपने से करना चाहिये,
और आँखे चार मुझे उस सपने से करनी चाहिये ।
जो दिखेगा हमारी आज की अहंता के मर जाने पर,
फिर वह अहंता चाहे मेरी हो चाहे मेरी जाति की,
चाहे मेरे राष्ट्र की चाहे मेरे किसी,
न्याय या सत्य या आदर्श विषयक उस कल्पना की ।"(शान्ति)[३०]

इनके काव्य की मुख्य विशेषता यही है कि सामाजिक जीवन की अपेक्षा न कर जनता की समस्याओं के निरूपण की ओर व्यापक रूप से ध्यान दिया । क्योंकि मिश्रजी जन मानस के कवि के रूप में परिलक्षित होते है । उपर बताया गया सामाजिक साम्य के प्रबल समर्थक होने के कारण मिश्रजी ने अपने काव्य में समाज की उन विकृतियों पर भी तीव्र प्रहार किये है, जो समाज को टुकडो में बाँटती, उसे अधोगामी बनाती तथा व्यक्तियों को उदात्तता के पंथ पर आगे बढ़ने से रोकती है । इस विरोध के लिए उन्होंने कभी तो तीखे प्रहार तो कभी व्यंग्य का सहारा लिया है जैसा कि स्पष्ट किया गया है ।

–सामाजिक विषमता :

सर्वप्रथम यह उल्लेखनीय है कि मिश्रजी का ध्यान सामाजिक विषमताओं, असमानताओं की और अधिक गया । उनकी दृष्टि में मानव–मानव है, उसमें कोई भेद–भाव नहीं है । प्रकृति ने सबका निर्माण एक ही तत्त्व से किया है तो फिर यह अन्तर यह भेद भाव क्यों 'छोटा या बड़ा क्यों' किसी का स्पर्श मात्र गहित क्यों माना जाता है । गाँधीजी स्वत्व दिखाने के लिए 'हरिजन' अभिधान देकर

उनके चिर अभिशप्त स्वरूप को ही परिवर्तित कर दिया । सामाजिक असमानता का एक रूप यह भी है मुमुक्षा और दीनता से पीड़ित मानव शिशु चिल्लाता है तो दूसरी तरफ सम्पन्न वर्ग दीन-दलित वर्ग को प्रताड़ित करने से नहीं चूकता । यह सामाजिक अन्याय सर्वथा असहनीय है । मिश्रजी ने बाह्य विभीषिकाओं और जटिलताओं के कारण उदीप्त व्यक्ति मन की उलझी आन्तरिक संवेदना का वर्तन निम्न प्रकार से किया है -

''एक दिन होगी प्रलय
मिट जायेंगे नीलाभ नियम भी ।''

''क्यों नहीं रह सकते हम परस्पर
फूल और आकाश की तरह
यह नहीं हो सकता
शायद इसी का रोना है ।''[३१]

सामाजिक वैषम्यों और रूढ़िवादी प्रवृतियों पर भी तीखे व्यंग्य किये है । जिसका एक रूप हम मिश्रजी की निम्न पंक्तियों में देखते है -

''ऐसा लगता है
जैसे काल और अवकाश
दिशा और आकाश कुछ नहीं हैं नहीं,
कहाँ पाँव रखकर खड़ा हो जाऊँ,
कहाँ अटका है मन ।''[३२]

इस तरह नया कवि जीवन के व्यापक परिवेश में धूमता है, उसके अन्तराल में उतरता है और उसमें जीवन रस लेता है । उसकी दृष्टि जब कभी सामाजिक विषमता, दरिद्रता और कुरीतियों पर जाती है तब यह प्रगतिवादी कवि की तरह बौद्धिक सहानुभूति दिखाने के लिए मात्र नारे बाजी नहीं करता, बल्कि विषमता के गरल को विषपापी शंकर की तरह अपने कंठ से उतार लेता है । अन्ततोगत्वा उस क्षयग्रस्त जीवन के मार्मिक चित्र को भी प्रस्तुत करता है, और मानव के मनोबल को ऊपर उठाकर मानवता के प्रति आस्था जगाने के लिए कहीं - कहीं उस पर कलाधात करता चलता है ।

- अर्थ-व्यवस्था :

आज भारत को गुलामी की जंजीरों से मुक्त हुये काफी साल गुजर गये, लेकिन देखने में प्रायः यह आता है कि उसकी अर्थ व्यवस्था अभी भी बहुत ही कमजोर है । आर्थिक मोर्चो पर पंचवर्षीय योजनाओं के बावजूद भी हमारे देश की सरकार असफल रही है । तथ्य यह है कि देश में जनसंख्या विशाल होने के कारण गरीबी, भूखमरी पहले से ही गुजर रही हैं । यहाँ के लोगे भाग्य के भरोसे पर जीवन यापन करने के आदी हो चुके है । यहाँ की सरकार की मिश्रित अर्थ-व्यवस्था, पूँजीपतियों और प्रशासनिक अधिकारियों को तो सम्पन्न बनाती है, किन्तु मध्यवर्गीय जनता की अर्थ-व्यवस्था उतनी ही ढीली होती जा रही है । इनका कारण इन लोगों की योजनाए कागजों पर ही अंकित रह जाती है, या फिर आपस में बहस करके ही समाप्त हो जाती है । भारी-भारी उद्योग तथा लभु उद्योगों के परस्पर सहयोग सम्बन्धों की कोई दिशा नहीं है, खर्च और उत्पादन का सिलसिला

उल्टा बैठता है । बेरोजगारी के बढ़ते हुए कदम को किन-किन धंधों से संतुलित किया जाये, जिससे अधिक से अधिक लोगों को काम मिले और साथ ही साथ देश की आर्थिक स्थिति सुधर कर सुदृढ़ तथा सबल बने ।

हम देखते है कि स्वतंत्रता के बाद देश के हर नागरिक को संविधानिक समानता मिली । देश की प्रभु सता जनता के हाथों चली, लेकिन इसका व्यवहारिक पक्ष बहुत अनुकूल नहीं हो पाया । इसका प्रमुख कारण-अशिक्षा, जातीयता तथा धार्मिक रूढ़ियाँ । जहाँ तक शिक्षा संस्थाओं के खोले जाने की बात है, उसमें काफी तेजी आ गयी, स्कूलों और कालेजों की संख्या बढ़ा दी गयी तथा गाँवों में स्कूल खोले गये ताकि पिछड़ी जातियों को पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हो सके । आज भी भारत जैसे सुविकासशील देश में दी जानेवाली शिक्षा अपनी उचित भूमिका नहीं निभा पा रही है । अंग्रेजी को अतिरिक्त महत्व देकर वर्ग भेद को बढ़ावा दिया जा रहा है इस शिक्षा से युवक को उचित रोजगार नहीं मिल पाता । इसका परिणाम सिर्फ डिग्रीधारी शिक्षितों की संख्या तो बढ़ गयी किन्तु उनकी उपयोगिता के दूसरे दरवाजे दिन प्रतिदिन बंध होते गये ।

जातिप्रथा :

अतीत की वर्ण-व्यवस्था कालान्तर में रूढ़ जाति-प्रथा देश को जिस प्रकार जकड़ चुकी है, यह किसी से छिपा नहीं है । यही देश सिर्फ ऐसा है, जिसमें जातियाँ तथा उपजातिर्या बुरी तरह विभाजित है । यह जाति मात्र दो वर्गो तक ही विभाजित नहीं है । इन अवर्णो

तथा सवर्णो के बीच भी बड़े-छोटे, पवित्र तथा अपवित्र का भेद खड़ा है, जाति-व्यवस्था इतनी दृढ़ है कि परिस्थिति विशेष में यदि किसी व्यक्ति के द्वारा इस पर आँच आती है , या नियम का उल्लंघन करता हुआ पाया जाता है तो वही नहीं, वरन् पूरा परिवार जातिच्युत समझा जाता है । आज जातीय तथा धार्मिक संकीर्णताओं को समाप्त करने के प्रयत्न किये जा रहे है । इन प्रयत्न की पहली कड़ी है संविधान, जिसमें धर्म और जाति नागरिक की विशिष्टता के परिचायक में 'चौथे आम चुनाव के बाद विशेषांक'' में एक लेख अभिव्यक्त किया है कि ''अगर बालिक मताधिकार के बाद से चुनाव के नतीजों का विश्लेषण किया जाये तो द्विज विरोधी प्रवृत्ति साफ दिखती है । सामाजिक संगठन के साम्य पर ब्राह्मण है, इसीलिए इस संगठन के परिवर्तन का लाजमी मतलब ब्राह्मण के दर्जे में परिवर्तन है । इसीलिए यह धीरे-धीरे लेकिन निश्चित रूप से चल रहा है फिर भी इससे पिछड़ी जातियों का, इसके विशाल बहुमत का अभी भी उत्थान नहीं हो पा रहा है । अगर वर्ण-व्यवस्था को तीन वर्णो में बाँटे तो लगता है कि राजनैतिक सामाजिक शक्ति का केन्द्र उच्च वर्ग से थोड़ा सा खिसक मध्यवर्ग की और आया है ।''[३३]

परिवार प्रणाली :

भारत वर्ष में संयुक्त परिवार की प्रणाली सदियों पुरानी है । प्रारम्भ में जब खेती और उससे सम्बन्धित घरेलु धन्धों पर यहाँ के लोग निर्भर थे तब उस वक्त संयुक्त परिवार में अपंग, विधवा अथवा अर्थोपार्जन के लिए अयोग्य पारिवारिक सदस्य सभी का उपार्जन आसानी से हो जाया करता था । लेकिन आज़ादी के बाद संयुक्त

परिवार के टूटने की प्रक्रिया तेजी से शुरू हुयी । शिक्षा के विकास से कृषक परिवारों में पढ़े-लिखे युवक नौकरी की तलाश में शहरों की तरफ दौड़े । इस बात का सबसे ज्यादा प्रभाव मजदूरों तथा छोटे किसानों पर पड़ा । जिन्होंने रोजी-रोटी कमाने के लिए शहरों की तरफ प्रयास किया । जिससे पारिवारिक संयुक्तता अपनी उपयोगिता खोने लगी ।

शहरीकरण :

आज भी भारत के शहरों की जिन्दगी यूरोप के शहरों से भिन्न जान पड़ती है । अभी हमारा देश औद्योगिक विकास के प्रथम चरण पर है । यहाँ के शहरी लोग अभी तक अपनी कस्बाई तथा नगरी मानसिकता में जी रहे है । उनमें एक तरफ शहरों से जुड़ने की छटपटाहट हो रही है तो दूसरी तरफ वे अपने पुरखों व पूर्वजों के संस्कारों से छूट नहीं पा रहे है, वस्तुतः देखा जाय तो यहाँ का शहरी जीवन संक्रमण काल से गुजर रहा है, इसलिए यहाँ का आदमी अधिक विवश और लाचार दिखलाई पड़ता है, जीवन के निर्णायक तत्त्वों के लिए पैसा बहुत ही जरूरी होता जा रहा है, मानसिकता बदलती जा रही है । साधनों की वांछनीयता समाप्त हो रही है । वह भी भीतर से टूटता जा रहा है । उसकी संवेदना, सहानुभूति भीतर ही भीतर टूटती जा रही है, लोगों के पारस्परिक मिलन के अवसर बहुत कम होते जा रहे है, मगर मिलने में हार्दिकता का अनुभव नहीं होता है, दफतरों, ट्रामों बसो, रेलों तथा सीमाओं और भीड़ के बीच में होते हुए भी वह अपने आपको अकेला महसूस करता है ।

भवानी प्रसाद मिश्र एक ऐसे कवि है जिनका अनुभव क्षेत्र बहुत ही व्यापक है । शहरी जीवन तथा देहाती ग्रामीण व जीवन इन दोनों परिवेशों को लेकर लिखने वाले कवि श्री भवानी प्रसाद की तीव्र चेतना इनकी कविताओं में व्याप्त है, मिश्रजी मूलत: ग्रामीण संस्कारों और अनुभूतियों से बने है, किन्तु ये ऐकान्तिक अलगाव मन की कुण्ठा, निराशा और औद्योगिक नगरों की असंगति भी सभ्यता को उसकी तीव्रता से पकड़ते है, वही दूसरी ओर प्रकृति, ग्राम्य जीवन की छबि, विषमता तथा व्यथा को व्यंजित करते है या प्रकृति और ग्राम्य जीवन के बिम्ब लेकर अनुभूति या सौन्दर्य का स्वर उखाड़ते है । जिसका उदाहरण देखिए –

''गाँव इसमें झोपड़ी है, घर नहीं है,
झोपड़ी के फटकिर्या है पर नहीं हैं,
धूल उड़ती है, धुएँ से दम धुटा है,
मानवों के हाथ मानव लुटा है,
गाँव में पहली किरण के साथ जागे,
चैन जगने पर नहीं जिन को अभावो ।''[३४]

इस तरह ग्रामीण संस्कृति को आबाद करने के लिए करूण नाद को दूर करके अन्धकार को मिटाकर प्रकाश लाने का सतत प्रयास किया । इस तरह शहरी कवि ने बिम्ब विशेषतया गाँव के ही लिये है । व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों प्रकार के बिम्ब हमें उनके काव्य में परिलक्षित होते है ।

– आम–आदमी की मानसिकता :

इस सामाजिक व राजनैतिक सन्दर्भो में आज आम आदमी की मानसिकत स्थिति सख्त हो गई है । पुलिस की बेरहमी में कोई कमी नहीं है । इन सब बातों के होने के कारण वह मानसिक हीनता की कल्पना करता है नतीजा यह होता है कि वह अपनी रही सही शक्ति पर भी विश्वास नहीं कर पाता । लेकिन आज मानव नया है । वह समानुपाति एवं सामाजिक संस्कृति के परिवेश में पला है । वह अपने अन्तर यथार्थ का शोधी तथा संघर्ष का केन्द्र है । उसकी चेतना में भारतीय – अभारतीय अतीत वर्तमान की दूरी नहीं है । वह अनेक संभावनाओं से भरा हुआ है । ऐसे मनुष्य की चिन्ता का रचनात्मक उपयोग आज का सर्वाधिक संघर्ष और नैतिक संकट है । नये मानव के प्रति आस्था का कारण विज्ञान है । वह अपने लिए आस्था लेकर नहीं आया बल्कि उसके पसीने की कमाई है । इस मनुष्य की विशेषता के अनेक महत्त्वपूर्ण बिन्दु है । ''ढढिग्रस्त चेतना से युक्त मानव मूल्य के रूप में स्वातंत्र्य के प्रति सजग अपने भीतर अनारोपित मानव के हित में परिवर्तित करके नया रूप देने के लिए द्रढ़ संकल्प, कुटिल स्वार्थभावना से विरत, मानवमात्र के प्रति स्वाभाविक सह अनुभूति से युक्त संकीर्णताओं एवं कृत्रिम विभाजनों के प्रति क्षोभ का अनुभव करने वाले हर मनुष्य को जन्मत: समान माननेवाला, मानव व्यक्तितत्व को अपेक्षित निरर्थक और नगण्य सिद्ध करने वाली किसी भी दैविक शक्ति या राजनीतिक सता के आगे अनवरत, प्रत्येक व्यक्ति के स्वाभिमान के प्रति सजग, दृढ एवं संगठित अंत:करण से युक्त सक्रिय किन्तु प्रसन्न, सत्यनिष्ठ एवं विवेक सम्पन्न होगा । अगर कवि की

आत्मरंजन भावाभिव्यक्ति एवं संवेदना - सम्प्रेषण के अतिरिक्त कविता का कोई इतर उद्‌देश्य हो सकता है तो कहना होगा कि ऐसे मनुष्य की प्रतिष्ठा करना ही नयी कविता का उदेद्श्य है ।''[३५]

साम्प्रदायिक्ता :

सामाजिक विकृति का बहुत ही गंभीर साक्ष्य भारतीय जन-जीवन में व्याप्त साम्प्रदायिक वैमनस्य है । साम्प्रदायिक दंगे-फसादों के कारण असन्तोष की स्थितिचारों ओर उभर रही है । हड़ताल, बन्द और धेराव की सफलता से उसे अपनी शक्ति का अनुमान लगता जा रहा है । लेकिन अभी भी व्यक्ति अपने आपको समझ नहीं सका है । समाज में नयी चेतना जाग रही है । आज की निरन्तर बढ़ती हुयी महँगाई उसकी कमर तोड़ती जा रही है । वस्तुतः वह जिन स्थितियों में अपने जीवन की गाड़ी खींच रहा है, उसमें मानसिक रूप से हताश होने की अपेक्षा और कुछ नहीं है । देश की स्वतंत्रता में उसकी आकांक्षाएँ तेजी से बढ़ती जा रही है । प्रारम्भ में कुछ वर्ष तो वह सुखद भविष्य की प्रतिक्षा में ही जीवन व्यतीत करता है । लेकिन जैसे-जैसे आने वाले वर्ष समाधान की बजाय कुछ नई समस्याएँ उपस्थित करने लगते है तब उसकी आशाएँ निराशाओं में बदलती जाती है, धीरे-धीरे वह हतोत्साहित व निराश सा होने लगता है । मध्यकाल होता या सामन्ती व्यवस्था होती तो वह प्रभु की शरण में अपनी संतुष्टि प्राप्त कर लेता, लेकिन जब तन तंत्रात्मक व्यवस्था में उसकी ही प्रभु सता है उसकी दशा विचारणीय हो जाती है । ऐसी स्थिति में वह अपने मताधिकार की चेष्टा करने लगता है । प्रायः सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों से जो नयी सामाजिक चेतना

का चित्र उभर कर आता है उसमें सर्वप्रथम जीवन-मूल्यों का विघटन है । जिसके अन्तर्गत शहरीकरण, अर्थ-व्यवस्था, संयुक्त प्रणाली का टूटना बिखरना इत्यादि वे सब कारण जीवन मूल्य विधटन के है इनके अतिरिक्त कुछ नये जीवन मूल्य बनते जा रहे है, लेकिन उनका स्वरूप पूरी तरह सामने उभर कर नहीं आया । आज व्यक्ति और समाज का द्वन्द्व सभी क्षेत्रों में दिखलाई पड़ता है । कोई व्यापक सामाजिक चेतना नहीं है जो सामूहिक जीवन को आश्वस्त कर सके । आर्थिक व्यवस्था के क्षेत्र में यदि देखा जाए तो अनास्था तथा वर्ण व्यवस्था का प्रसार होता जा रहा है । जिसके फलस्वरूप सामाजिक चेतना परम्परा के प्रति विद्रोह बना हुवा है । इस विद्रोह में परम्परा के त्याग के लिए कुछ उत्साह है पर नव निर्माण की प्रगति कुछ कम होती जा रही है । इस प्रगति का क्षेत्र निश्चित है । कुछ सीमा तक ही प्रगतिशील है । इस अर्थ में ही हम इस सामाजिकता को प्रगतिशील कह सकते है ।

मिश्रजी ने अपने काव्य संग्रह 'इंदम न मम्' और 'परिवर्तन जिये' में यही बात ज्यादातर कही है कि साधारण आदमी जब अपने कान से यह बात सुनता है कि देश बड़ी तेजी के साथ तरक्की कर रहा है, लेकिन अभी उसकी स्थिति वैसी ही बनी हुयी है तब वह अपने आपको अभागे की तरह चित्कार ने लगता है । हरिजन के रूप में वह आज भी स्वर्ण के साथ बैठने का साहस नहीं करता । मजदूर की हालत में वह आज भी बेकारी और बेगारी को झेल रहा है । जातियों का धेराव अभी भी जबरदस्त बना हुआ है । महाजन की सूद और ज्यादा-ज्यादा ही बढ़ती जा रही है । इस तरह राजनीतिक परिस्थितियों

ने सामाजिक चेतना के वर्ग को उत्पन्न किया । ये सामन्तवादी पूँजीवादी चेतना समाज में व्यापक अनास्था को व्यवस्थित कर चुकी है । इस अनास्था ने कोई निश्चित सामाजिक चेतना नहीं दी परन्तु असंतोष और विद्रोह की स्थिति चारो तरफ जरूर पैदा कर दी । इस तरह भवानी प्रसाद मिश्र जन मानस के कवि तो है ही इसमें सन्देह नहीं । इसके अतिरिक्त इनके काव्य के अध्ययन में इन चेतना पक्षों पर विहंगम दृष्टि डालने की कोशिष किए गयी है ।

निष्कर्ष :

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि समाज और साहित्य का सम्बन्ध गहरा है और रहेगा । कोई भी साहित्यकार अन्य लोगों की भाँति ही सामाजिक प्राणी होता है, अतः वह समाज की सामान्य अवस्था तथा समस्याओं से भी प्रभावित होता है । अधिक संवेदनशील होने के कारण यह उनमें रूचि रखता है तथा उसके समाधान के लिए व्याकुल रहता है । यही कारण है कि हम अपने समाज की प्राचीन गति मति के परिचय के लिए साहित्य के ही उपर आधारित रहते है ।

कोई भी साहित्यकार या कवि केवल अपनी आस्था को ही अंकुश मानता है । इसलिए वह कभी-कभी समाज की निर्भीक आलोचना करने लगता है । उसकी मान्यताओं के प्रति विद्रोह भी प्रकट करता है । कवि केवल वर्तमान में ही नहीं जीता, बल्कि उसका मन अतीत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों में ही रमा रहता है । कभी-कभी कोई साहित्यकार अपने समय में पूज्य नहीं होता किन्तु भविष्य में उसकी कीर्ति अनन्त काल तक गूँजती रहती है । किसी भी साहित्यकार

पर यह बन्धन नहीं होता कि वह केवल समाज की चेतना से ही अनुप्राणित रहे । वह अपनी इच्छाओं, लालसाओं और सौन्दर्य व्यसनों को भी प्रकाशित करता है । यह प्राय: देखने को मिलता है कि कवि की इच्छाओ और सौन्दर्य चेतना में, समाज की इच्छाये तथा चेतनाये सम्मिलित रहती है । किन्तु ऐसा भी सम्भव है कि कवि का भाव या कामना उसकी अपनी निजी हो । कवि कभी-कभी तो आध्यात्मिक भावना में लीन तथा विहवल हो जाता है । इस युग में बहुत से साहित्यकार ऐसे मिलते है जिनकी रचनाओं में सामाजिक चेतना तथा लोककल्याण की भावना ही नहीं मिलती, बल्कि व्यक्तिगत कुण्ठा के भाव ही मिलते है । फिर भी ऐसे साहित्य में लोग लीन रहते है । क्योंकि वह सामान्य लोकानुभव से बिल्कुल भिन्न नहीं है । इसके अलावा मिश्रजी जनमानस के कवि है इसलिए उन्होंने सामाजिकता के धरातल पर जी भर भोगा, देखा तथा अनुभव किया ठीक हूबहू वैसा ही वर्णन वैसा ही चित्र अपने काव्य में चित्रित किया है । मिश्रजी भाव और शिल्प दोनों की सहजता पर आस्था थी। सहजता ही मुलत: उनकी प्रकृति है । वे दर्शन में अद्वेतवादी तथा राजनीति में गाँधीवादी टेकनीक में सहज लक्ष्य के उपासक है । कवि का सम्पूर्ण काव्य संग्रह सामाजिक धरातल से लबालब है । उन्होंने किसी वर्ग-विशेष में मध्यम वर्ग पर ज्यादा जोर देकर पुंजीपति तथा निम्न वर्ग पर कुठाराधात किया है ।

इस प्रकार विषयगत अध्ययन के अन्तर्गत सामाजिक रूढ़ियों और कुरीतियों, परम्परा गत नैतिक मूल्यों के प्रति आक्रोश, आर्थिक विसंगतियों युगीन समस्याओं और राजनीति के प्रति व्यंग्य भाव का

पता चलता है । यदि समाज में प्रचलित ऐसी रूढियाँ जो दिन प्रतिदिन अधिक सार्थकता की ओर अग्रसर होनेवाले जन जीवन को तर्क संगत नहीं लग पाती, या सामाजिक मान-मर्यादाओं का ऐसा शिकंजा जो व्यक्ति को न्याय नहीं दे पाता अथवा ऐसी रूढ़ मान्यताएँ जिन्हें मानवीयता की प्रतिष्ठा के लिए समाप्त हो ही जाना चाहिये, यदि समाज में बनी रहती है तो व्यंग्य के माध्यम से उन पर प्रहार किया जाना अति आवश्यक है जैसा कि हमको मिश्रजी की अनेकों काव्य कृतियों में व्यंग्य का प्रहार देखने को मिलता है । जिस समाज में शिक्षा का विकास तो हो जाय, मगर शिक्षितों के लिए कोई काम न हो, वहाँ सामाजिक पीड़ाएँ तथा परेशानिर्या निश्चित ही बढ़ती है तथा जागरूक एवं संवेदनशील रचनाकार समाज में व्याप्त इस दूर व्यवस्था, जो इस प्रकार से पीड़ित जनों की स्थिति को व्यंग्य के माध्यम से उभारता है, यह स्थिति के लिए उत्तरदायी और दोषी लोगों पर भी ऐसे कवि थे जो समाज की नग्न कुरीतियों का पर्दाफाश करने में पीछे नहीं रहे । कवि 'निराला' भी किसान वर्ग में नवजागरण पैदा करके उनकी निष्क्रियता को भी समाप्त करना चाहते थे उन्होंने सामाजिक हित-अहित की चिन्ता न करने वाले और स्वार्थ सिद्धि में नग्न-समाज सुधारको का खुलकर मज़ाक उड़ाया और साहित्य के क्षेत्रों में अनन्त दू:ख और अनंत विरह की कल्पना का विरोध किया । प्राय: सभी प्रगतिवादी समीक्षक काव्य कला का प्रेरक तत्त्व समाज को मानते है । पश्चिमी साम्यवादी विचारकों के दो दल देखे गये हैं । प्रथम काव्य-कला का सीधा सम्बन्ध समाज के आर्थिक जीवन से मानने वाले, द्वितीय उदारवादी । हिन्दी जगत में प्राय: उदारवादी

विचारकों का प्रभाव ज्यादातर दिखलाई पड़ता हैं । डॉ. रामविलास शर्मा कहते है - ''सामाजिक विकास से सम्बन्ध कला के अनेक तत्त्व जहाँ आर्थिक जीवन पर निर्भर होते है, उनका स्पष्ट वर्ग आधार होता है । वे आर्थिक व्यवस्था के बदलने पर या कुछ समय बाद परिवर्तित हो जाते है, जहाँ अनेक तत्त्व अपेक्षाकृत स्थायी होते है । वर्गो से परे और बहुत कुछ अपरिवर्तनशील होते है ।''[३६]

'इतिहास और आलोचना' नामक पुस्तक में वे व्यक्त करते है - ''ऐसा नहीं होता कि समाज के रथ में लेखक पीछे बंधा हुआ हो और उसके पीछे लीक पर धसीटता हुआ चलता हो । लेखक साथी होता है, जो लीक देखता हुआ और साहित्य की बागडोर सम्भालता हुआ उचित मार्ग पर से चलता है ।''[३७]

इस तरह मिश्र जी का काव्य तेज साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और पूँजीवाद की प्रखर आलोचना में प्रकट होता है । यही प्रयास आगे बढ़कर किसान - मजदूर, गरीबी तथा गैर-बराबरी की व्यथा को कम करने के लिए संकल्प का रूप धारण कर लेता है । दलबंदी तथा समझौता परस्ती को ठुकराने वाली उनकी राजनीतिक - सामाजिक चेतना ने जनता के प्रति आस्था और गहरे विश्वास को दृढ़ किया है -

> ''समष्टि को जिसे सहने से
> जीता है आदमी,
> अकेला तो सूरज भी नहीं है ।''[३८]

समय की खौलती हुयी सच्चाई को, दहकते हुये विवेक को और सामाजिक यथार्थ को मिश्रजी ने अपने काव्य में पूरी तरह स्थान दीया । मिश्रजी के काव्यों के अध्ययन के आधार पर यह स्पष्टत: कहा जा सकता है कि आधुनिकता वादी समसामयिक स्थितियों एवं प्रतिक्रियाओं के आलोक में परम्परित खोखली व्यवस्थाओं का खण्डन करते हुए मानवतावादी और बौद्धिक चेतना साक्षेप विचारों की प्रतिस्थापना के स्वर को मुखरित किया है ।

संदर्भ ग्रंथसूची

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
१.	हिन्दी साहित्य : सामाजिक चेतना	डॉ. रत्नाकर पाण्डेय	पृ.१५५-१५६
२.	नया सृर्जन तथा नया बोध : कवि नागार्जुन की लम्बी यात्रा, अध्याय-४	डॉ. कृष्ण दत्त	पृ.७०
३.	'अंधेरी कविताएँ' मौत की आँखे	भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.२०
४.	'द डिसकवरी ओफ इण्डिया'	जवाहरलाल नेहरू	पृ.२६८-६९
५.	'द रेखांसा इन इण्डिया' तीसरा संस्करण	अरविन्द	पृ.२७-२८
६.	'राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध'	आ.नन्ददुलारे वाजपेयी	पृ.७२
७.	'चकित है दु:ख' दूसरा संस्करण १९७७	भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.५
८.	'ठंडा लोहा'	डॉ. धर्मवीर भारती	पृ.४६
९.	'गीत-फरोश'	श्री भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.११२
१०.	वही	श्री भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.१३९
११.	'गीत फरोश' 'सावन'	श्री भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.६९
१२.	'गीत फरोश' शीर्षक 'माध की पूनो'	श्री भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.८५

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
१३.	वही	श्री भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.१००
१४.	नयी कविता : 'मूल्य मीमांसा' प्रथम संस्करण – तृत्तीय अध्याय मानव और मानवतावाद	डॉ. बैजनाथ सिवल	पृ.९८
१५.	नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र	'मुक्तिबोध'	पृ.०६
१६.	भवानीभाइ 'सम्पादक'	प्रेमशंकर रघुवंशी	पृ.६०
१७.	'मानव मूल्य और मीमांसा'	डॉ. धर्मवीर भारती	पृ.१२९
१८.	ह्युमनिज्म एज ए फिलोसोफी	कार्लिस ले माऊष्ट	पृ.२७३
१९.	वही	कार्लिस ले माऊष्ट	पृ.२७३
२०.	सोसियल ब्रेकग्राऊड ऑफ इन्डियन नेशनालिटी	ए. आर. देसाई	पृ.६१
२१.	भवानीप्रसाद मिश्र के काव्य में सामाजिक चेतना,	श्रीमति मिथलेश	पृ.११७
२२.	प्रगतिवादी और हिन्दी उपन्यास	डॉ. प्रसाद शर्मा 'महता'	पृ.२२६-२७
२३.	वही	डॉ. प्रसाद शर्मा 'महता'	पृ.२२६-२७
२४.	राष्ट्रीयता और समाजवाद	आचार्य नरेन्द्र देव	पृ.४६२
२५.	'हिन्दुस्तान की कहानी' छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	जवाहरलाल नेहरू	पृ.३६६

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
२६.	आधुनिक हिन्दी कवियों का सामाजिक दर्शन,	डॉ. प्रेमचन्द विजयवर्गीय	पृ.६९
२७.	छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और साँस्कृतिक पृष्ठभूमि, पंचम अध्याय	डॉ. कमलाप्रसाद पाण्डेय	पृ.१४१
२८.	नयी कविता में वैयक्तिक चेतना, अध्याय पाँच, प्रथम संस्करण,	अवचनारायण त्रिपाठी	पृ.३५६
२९.	'साबरमती का संत'	यशपाल जैन	पृ.९५
३०.	'गाँधी पंचशती'	श्री भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.२०९
३१.	'अंधेरी कविताएँ'	श्री भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.३०
३२.	'चकित है दुःख'	श्री भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.१५
३३.	'कल्पना' मासिक पत्रिका	जनवरी–फरवरी १९६९	
३४.	'गीत–फरोश' 'गाँव'	श्री भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.३४
३५.	'नयी कविता' पत्रिका अंक–४	डॉ. जगदीश गुप्त १९५९	पृ.१२–१३
३६.	'आस्था और सौन्दर्य'	डॉ. रामविलास शर्मा	पृ.३४
३७.	'इतिहास और आलोचना'	डॉ. रामविलास शर्मा	पृ.३८
३८.	'गाँधी पंचशती'	श्री भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.२७३

अध्याय-४
भवानी प्रसाद मिश्रजी के काव्यों में प्रतिबिंबित वर्ग-संघर्ष

- प्रस्तावना
- वर्ग-संघर्ष के विविध आयाम
- साहित्य में व्यक्तिवादीता तथा गांधीवाद का प्रभाव
- राजनैतिक जीवन-दृष्टि तथा स्थिति

  (१) राष्ट्रीय उद्बोधन

  (२) राजनीतिक आंतक तथा विभिन्न दलबन्दी

  (३) भ्रष्टाचार तथा नैतिकता के बिच का संघर्ष

  (४) निरासा, कुंठा तथा अवसाद का संघर्ष

  (५) कवि का निजी दृष्टिकोण
- सांस्कृतिक परम्परा के प्रति गौरव की भावना
- संघर्ष के अलावा प्राकृतिक सम्पदा के प्रति कवि की संवेदना
- जीवन मूल्य और विघटन की स्थिति
- निष्कर्ष
- संदर्भ ग्रंथ सूची

अध्याय–४
भवानी प्रसाद मिश्रजी के काव्यों में प्रतिबिंबित वर्ग–संघर्ष

प्रस्तावना :

भवानीप्रसाद मिश्रजी के काव्य की सामाजिक चेतना पर पूर्ववर्ती अध्याय में विचार करने के पश्चात् उनके साहित्य में प्रतिबिंबित वर्ग–संघर्ष पर विचार करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है । कवि की काव्य कृतियों का अनुशीलन करने से कवि के व्यक्तितत्व के निरन्तर विकास का रूप परिलक्षित होता है । यह प्रक्रिया संश्लिष्ट होती है, एक ओर कवि के वैचारिक अनुभूतियों तथा दूसरी ओर इस पर समाज के पड़नेवाले अनेक प्रभाव से । उनकी रचनाओं में इन सभी को सम्मिलित रूप से देखा जा सकता है । व्यक्तितत्व सृजन, प्रक्रिया और प्रेषणीयता के त्रिभूज में ही कवि का मूल्यांकन सीमित नहीं है । युगीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में साहित्य की चिन्तन धारा और उसके स्वरूप को भली भाँति समझना उसका एक पक्ष हो सकता है । प्रचलित मान्यताओं तथा घटनाओं का पुर्नमूल्यांकन करना भी युग की अपनी विशेषता होती है । युग विशेष की अपनी एक गहरीछाप होती है । अत: युग विशेष के सभी पक्षों को समझने के लिए पूर्व प्रसंगों की ओर ध्यान देना अत्यत आवश्यक हो जाता है । वैयक्तिक राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आदि युग पक्षों के अनुरूप साहित्य सृर्जन करना स्वस्थ और जीवन प्रगति का परिचायक हैं ।

वर्ग–संघर्ष के विविध आयाम :

उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में तत्कालीन परिस्थितियों और परिवेश

की छानबीन हम साहित्य के माध्यम से कर सकने में समर्थ हो सकते है । इसके साथ ही देश की मानसिक स्थिति के अतिरिक्त साहित्यकार की निजी जीवन दृष्टि का ज्ञान साहित्य के द्वारा ही उपलब्ध किया जा सकता है । युगीन चेतना की भ्राँति वर्ग-संघर्ष और साहित्यिक चेतना भी परिवर्तनशील होने के कारण उसकी उत्प्रेरक शक्तियों या मूल उद्‌भावक स्त्रोतों का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है । कवि युगीन धटनाओं, उनके धात-प्रतिधातों तथा समस्याओं में साक्षात्कार करता है । अतः कोई भी कृति अपने युगीन स्पन्दनों के प्रभाव से असम्पृक्त नहीं रह सकती । आज हमें साहित्य में जो भी वर्ग-संघर्ष दिखाई दे रहा है, उसमें समस्त जनता के मनोवेग तो सम्मिलित है ही, साथ ही साथ कृषक वर्ग तथा श्रमिक वर्ग की आकांक्षाएँ, सुख; दुःख, इच्छाई सब कुछ की प्रधानता रहती है । आज के समय में भी वर्ग-संघर्ष कृषकवर्ग तथा श्रमिकवर्ग इन्हीं दो वर्गो के साथ मुख्यतः जुडा हुवा है । जिस वर्ग-संघर्ष के बिंदुओं से स्वातन्त्रोतर हिन्दी काव्य प्रभावित हुआ । उनमें सर्वप्रथम उल्लेखनीय जनवादी चेतना है, और यह जनवादी चेतना या संघर्ष सर्वाधिक कार्ल मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित है । कार्ल मार्क्स ने सबसे पहले युगीन परिस्थितियों के साथ-साथ जनवादी चेतना या वर्ग-संघर्ष के स्वरूप को पूरी तरह दृष्टिगत किया है, मार्क्सवादी विचारधारा में जो बाते दिखलाई पड़ती है - पहली वर्ग-संघर्ष की प्रधानता और दूसरा इसमें द्वन्दात्मक भौतिकवाद की मान्यता । इस द्वन्दात्मक भौतिकवाद के आधार पर समाज के विकास की समीक्षा की प्रगतिवाद का अभीष्ट अंग रहा है । प्रगतिशील तत्त्वों में मुख्य रूप में मार्क्सवाद के सिद्धांतों का निरूपण, शोषित वर्ग के दुःखदैत्य के चित्रण, कलुषित

कार्य कलाप के निवारण, समसामयिक यथार्थ के विवेचन, जन-जागृति एवं क्रान्ति के संदेश, विश्व-शान्ति एवं विषय-कल्याण के उद्घोष आदि के रूप में अभिव्यक्ति मिली है ।

मार्क्सवाद भौतिकवाद से ही चेतना की अन्विति तथा विकास मानता है । इसलिए जनवादी साहित्य के मूल्य और प्रतिमान पर दृष्टिपात करने की अपेक्षा साहित्य के उन उद्भावक स्त्रोतों का विश्लेषण करना सीमाचीन्ह है जिसका वैचारिक धरातल सीमाचीन्ह है, जिसमें बौद्धिक जीवन को आधार प्राप्त होता है । मानव की चेतना है उसके अस्तित्व का बोध नहीं होता, बल्कि समाज के आर्थिक धरातल से उसका निर्धारण होता है । ''मार्क्सवाद केवल समाजवाद का सिद्धांत ही नहीं, अपितु वह तो सम्पूर्ण संसार के प्रति एक दृष्टिकोण है, जिसका तर्क सिद्ध परिणाम है, मार्क्स का सर्वहारा वर्गीय समाजवाद, यही दार्शनिक पद्धति द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नाम से पुकारी जाती है ।''[१] मार्क्सवादी क्रान्तिकारी दर्शन को समझना अनिवार्य हो जाता है, किन्तु द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को समझने से पूर्व दो बातों पर विचार कर लेना आवश्यक है, ''मार्क्सवाद के अनुसार विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का संबंध किसी न किसी वर्ग विशेष से रहा है । अतः हम कोई भी निष्पक्ष, निर्दलीय वर्ग विहीन दर्शन नहीं पायेंगे तब प्रश्न ये उपस्थित होगा कि क्या दर्शन का सत्य के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है ।''[२] इसका उत्तर है जब हम ऐतिहाकिस दृष्टि से प्रगतिशील वर्ग के पंख का अवलम्बन लेते तो सत्य के अधिक निकट पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं । इस दृष्टि से मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को सत्य के अधिक निकट मानते

हैं । इसकी बात यह है कि ''वर्ग-संघर्ष, भौतिकवाद दर्शन के क्षेत्र में एक क्रान्ति है । अपने दार्शनिक क्षेत्र में मार्क्सवाद क्रान्तियों की श्रृंखला के पक्ष में उत्पन्न विभिन्न दार्शनिक समस्याओं एवं उसके स्वरूपों के महान दार्शनिक विकास चरम परिणति के रूप में दिखाई देता है, जो उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में कर्मणी के शास्त्रीय दर्शन के रूप में अपने उच्चत्तम बिदुओं पर पहुँच चुकी थी । किन्तु मार्क्सवादी दर्शन पूर्वकालीन दार्शनिक उपलब्धियों से सम्बन्ध एवं उसकी चरम परिणति के रूप में होते हुए भी वह प्राचीन दार्शनिक युग की परिसमाप्ति कर अभिनव दृष्टिबिंदु की स्थापना करता है ।''[३]

इस तरह ''मार्क्सवाद का सिद्धांत एक सर्वशक्तिमान सिद्धान्त है, क्योंकि वह सही, पूर्ण और सामंजस्यपूर्ण तथा मनुष्य को संसार का सामान्य परिचय कराता है, जो किसी भी प्रकार के अंधविश्वास, प्रतिक्रिया अर्थात् शोषकों के उत्पीड़नात्मक पक्ष पोषण समझौता नहीं करता ।''[४] अब हमारे सामने प्रश्न यह बड़ा होता है कि मार्क्सवाद के दार्शनिक पक्ष को वर्ग-संधर्ष या द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद क्यों कहा जाता है । उसका उत्तर स्टालिन ने इस प्रकार किया है - ''इसकी पद्धति द्वन्द्वात्मक है और सिद्धान्त भौतिकवादी।''[५] इन्होंने कहा कि हमारा दर्शन वर्ग-संघर्ष या द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहा जाता है, क्योंकि इसमें प्रकृति के प्रत्यक्ष ज्ञान की व्याख्या प्रत्यक्ष ज्ञान का परिचय और सिद्धान्त भौतिकवाद है, अत: द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का अर्थ, ''वस्तुओं को उसी रूप में समझना जैसा कि वे है । भौतिकवाद उनके अन्त: सम्बन्ध और गति को ध्यान में रखते हुए द्वन्द्वात्मक ।''[६]

इस तरह से मार्क्सवादी सिद्धांतों तथा उन पर आधारित क्रियात्मक आन्दोलनों का प्रचार-प्रसार बड़ी तीव्रता से होने लगा । क्योंकि आज हमारा जीवन नयी संक्रान्ति से गुजर रहा है । आज का कवि जितना नये मूल्यों के प्रति आस्थावान प्रतीत होता है, उतना पुरानों के प्रति नहीं, युगीन परिस्थितियों का वाहक वर्तमान का प्रतिनिधित्व और भविष्य का निर्माण होता है, अतः अतीत की तथा वर्तमान की उपलब्धियों के निर्णायक प्रेरणाओं का उचित तारतम्य होना चाहिए । जनवादी कवि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सामयिक जीवन तथा उचित हलचलों से उसने शाश्वत स्पंदनों को ग्रहण किया है, देश और काल से परे चिन्तन साहित्य के मूल्यों को अपने में समेटा है, सत्य किसी युग से सीमित न होकर कालातीत होता है, इसीलिए परम्परा से कटा हुआ आधुनिक युग की ओर से ही सन्तुष्टी नहीं है, स्वतंत्रता के पश्चात् जो आधुनिकता बोध हमारे सामने आया उसमें कई कारण सामने आये जिसमें सर्वप्रथम कारण शिक्षा का प्रसार था, इसके फलस्वरूप बौद्धिकता का विकास हुआ, नये-नये विषयों के अध्ययन तथा नयी शिक्षण प्रणाली द्वारा प्रकाश में आया और इसके कारण यूरोपीय विचारधारा का प्रचार तथा प्रसार बढ़ गया । ब्रिटिश शासन कालमें यह प्रसाद सीमित था किन्तु देश के स्वतंत्र होते ही उद्योग-धन्धों का विस्तार नयी विकास योजनाओं के कारण अत्यधिक हुआ, फलतः विदेशी सम्पर्क, जिससे नव-निर्माण हूए, विदेशी व्यापार बढ़ने लगे, शारीरिक रूप मे तथा आर्थिक रूप से बढ़ने के साथ-साथ मानसिक रूप से भी बढ़ने लगे ।

इसका तीसरा कारण शहरीकरण तथा औद्योगीकरण था जिसके कारण नये-नये उद्योगों तथा व्यापारों की स्थापना होने लगी, जो गाँव थे वो शहरों में आ गये, साथ ही, गाँवों की धीरे-धीरे इतनी प्रगति होने लगी कि उनका शहरीकरण हो गया और नगरों का ज्यादा विस्तार होता गया और नगरों का ज्यादा विस्तार होता गया - जिससे अंध-विश्वास धीरे-धीरे घटता गया, पुराने रीति-रिवाज समाप्त होने लगे । बौद्धिकता बढ़ने लगी । जिससे उयर्पुक्त दोनो पक्ष ज्यादा प्रभावित हूए । इन सबसे अलग हटकर दूसरा यह पक्ष सामाजिक स्थितियों में परिवर्तन, जिससे फलस्वरूप पारिवारिक संगठन भी टूट गये । इस बुद्धिवादी प्रभाव के फलस्वरूप शहरीकरण में ज्यादा परिवर्तन हूए, जिसने सबसे अधिक पुराने मूल्यों को तोडमरोड़ के रख दिया और नयी रचनात्मक प्रक्रिया का जन्म हुआ ।

साहित्य में व्यक्तिवादीता तथा गाँधीवाद का प्रभाव :

सन् १९३६ में प्रगतिवादी धारा के प्रारम्भ होने के बाद हिन्दी काव्य में यथार्थवाद बड़ी तेजी से विविध मुखी होकर सामने आया । यह यथार्थ द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, वर्ग-संघर्ष, सामाजिक यथार्थबोध इति जागरूकता, स्वदेश प्रेम, मानवतावाद आदि कई रूपों में बहकर अपना रास्ता बना रहा था । सन् १९३८ ई. में पंत 'रूपाम' के प्रकाशन के बाद सन् १९४०-४१ तक सामाजिक यथार्थ के चित्रण के क्षेत्र में - नरेन्द्र त्रिलोचन, नागार्जुन, मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र, सुमन आदि कवियों की रचनाओं से यह प्रभावित होता जा रहा था कि यथार्थ जीवन की नवीन भंगिमा में अभिव्यक्ति की मांग बढ़ रही है । तब 'अज्ञेय' भी अपनें क्रान्तिकारी जीवन के

अनुभवों से साहित्यिक क्षेत्र में इसी यथार्थ की प्रवृति में जुड़ने लगे थे । 'विशाल भारत' तथा 'तार-सप्तक' की उनकी कुछ कविताओं को प्रमाण स्वरूप समझा जा सकता है । बोलचाल की सहज लवात्मक भाषा में भवानीप्रसाद मिश्र अपनी संवेदनाओं की सीधी-सादी और गतिशील अभिव्यक्ति के द्वारा हिन्दी में कुछ खास किस्म की शैली का निर्माण कर रहे थे, और कविता में अभिव्यक्ति के जिस प्रयास को अपना रहे थे, उसमे 'तार-सप्तक' की लहर का सम्पादन सन् १९४३ में हुआ, जिसके सन्दर्भ में डॉ. रामविलास शर्माने लिखा है - ''सन् ४३-४४ में पंत, केदार और शमशेर की कविता की जिस धारा के प्रतिनिधि है, तार-सप्तक इसमें प्रवाह की एक लहर है, नदी का स्थिर द्वीप नहीं ।''[७]

'तार-सप्तक' के प्रकाशन के समय के आसपास कवियों में जीवन जागरूकता का समावेश होता जा रहा था । सन् १९३८ ई. के आसपास छायावादी युग चेतना कमजोर पड़कर दूसरी अर्न्तधाराओं में विकास पाने लगी थी, तब सन् १९४० तक आकर कवियों में यह काव्य चेतना प्रबल हो गयी थी, जो परिस्थितियों के कठोर यथार्थ से प्रस्फुटित होना स्वाभाविक थी, अभिव्यक्ति के माध्यमों का जो अन्वेषण और नवीनता का आग्रह चल रहा था, उसी को प्रतिष्ठित करने का महत्वपूर्ण कार्य 'अज्ञेय' द्वारा सम्पादित 'तार-सप्तक' से सम्पन्न हुआ । इस तरह से 'सप्तक-काव्य परंपरा' का सुत्रपात १९४३ में प्रथम तार-सप्तक के प्रकाशन के साथ हुआ । दूसरा सप्तक सन् १९५८ में तीसरा १९५९ में तथा चौथा १९७९ में प्रकाशित हुआ । दूसरे सप्तक के कवि श्री भवानीप्रसाद मिश्रजी है । भाषा की समस्या

से कवि मुक्त है, क्योंकि यथा सम्भव भाषा बोलचाल के करीब है, इस सप्तक के कवियों ने जिस मानव मूल्यों का चित्रण किया है उसी स्वीकृति शोषित, गरीब, निरोह, भूख से संतप्त, विवश और भयभीत व्यक्ति की चेतना के माध्यम से हमारे समक्ष उभरती है । कवियों में सर्वश्री शमशेर बहादूर एवं रघुवीर सहाय वैज्ञानिकता के प्रति अपनी रचनाओं के प्रति निष्ठावान है तथा भवानीप्रसाद मिश्र का दृष्टिकोण अद्वेतवादी एवं गांधीवादी चिन्तन से उन्मेषित प्रतीत होता है, इसके साथ ही साथ इन प्रयोगों के द्वारा कवि अपने सत्य को अच्छी तरह से जान सकता है, अच्छी तरह से स्पष्ट कर सकता है, मिश्रजी के जीवनदर्शन की वास्तविक अभिव्यक्ति उनकी 'स्वर्ग के उस फुल को' में परिलक्षित होती है यथा -

''कविता का वर्ण - वर्ण
मिलकर मिट्टी में
रस-पचकर मिट्टी में,
बसेमा सोना,
मगर मिट्टी में रचने पतने के लिये,
फिर से पडेगा मुझे,
बोना अपने को,
मिट्टी में''[८]

दूसरे उदाहरण में भी इनके जीवनदर्शन को लक्ष्य किया जा सकता है -

"अब महफिल नहीं
अकेलापन मेरा है,
वही मेरा विस्तार है, यही मेरा धेरा है,
इसमें बाधा आती है,
तो लगता है, टूट गया कुछ,
कोई और आ जाता है तो लगता है
पीछे छूट गया कुछ ।"[९] (जानता हूँ)

मिश्रजी के जीवन दर्शन पर पूर्णरूपेण गांधीवाद का प्रभाव दिखायी देता है । गांधीदर्शन और आंदोलन की हर सांस का इतिहास कहने की काव्यप्रेरणा से भवानीप्रसाद मिश्रीजी को बनता और जनतंत्र का कवि बना दिया है । उनकी मान्यता है कि गांधीजी के सपनों को पूरा होने पर छूआछूत, जाति-भेद और दशे की सीमाओं से उठकर नया विचार दर्शन पैदा होगा । मिश्र जी कभी भी सता के कवि नहीं रहे - अपने मन की बात को एकदम स्पष्टता से कहने वाले कवि रहे हैं, विरोध पक्ष की बात को भी निर्दयता से कह देना उनका कवि स्वभाव है, इसीलिए मिश्रजी किसी भी समकालीन कवि से कम नहीं है, यह अलग बात है कि उनके विरोध का ढंग अलग तरह का है, समकालीनों को नीचा रखकर उन्होंने सच्चाई का साक्षात्कार कभी नहीं कराया, जबकि ये राजनीतिक कविता के कवि कभी नहीं रहे, लेकिन इस बात का मतलब यह नहीं कि उनकी राजनीतिक चेतना मंद पड़ गयी है, या तो यथार्थ संदर्भो, स्थितियों, अन्तर्विरोधों आदि का उल्लेख नहीं करते, मिश्रजी मार्क्सवादियों के इस आक्षेप को मानने के लिए कभी तैयार नहीं हुए कि गांधीजी ने राष्ट्रीयता और हिन्दू भारतीयता को

सांस्कृतिक खादी रूप में प्रस्तुत किया है, उन्हें यह बात झुठ लग रही है, उनके लिए गांधीजी के वाणी व्यक्ति की वाणी न होकर सांस्कृतिक परम्परा की वाणी है । उनकी 'जिन्होंने मुझे रचा' नामक संस्मरणात्मक गद्य रचना कुछ सालों पहले ही प्रकाशित हुयी है, रहन-सहन, वेश-भूषा में पक्के गांधीवादी है, खादी उनके लिए वस्त्र न होकर विचार है ।

पूँजीवादी का झंझट खत्म करने के लिए गांधी कम्युनिस्ट, सोसलिस्ट, हिन्दू-मुसलमान सब कुछ है, ऐसे देखा जाय तो गांधीवाद एक बेहतर दुनिया की तस्वीर खींचता है जिसमें भविष्य को नहीं, वर्तमान की बंजरता को खींचकर लहलहाया जा सकता है, मानवता का सही रास्ता मिश्रजी ने गांधी विचार दर्शन को ही माना है -

> ''शुरू कर रहा हूँ
> जितना बन सकता है मुझसे उतना छोटा एक काम,
> लेकर समूची मानवता की परम्परा में
> अब तक के सबसे सीधे-साधे
> निर्भय और स्नेही आदमी
> गाँधी का नाम ।''

उनके मतानुसार हमारी भारतीय संस्कृति ने आरम्भकाल से ही लोकमंगल के बीच बोये है, जिसमें हमारा सम्पूर्ण अस्तित्व पैदा हुआ है, क्योंकि गाँधीजी के सपनों को पुरा होते ही छुआ-छूत, जातिभेद, मजदूर, शोषक-शोषित आदि भेद भाव सभी मिट जायेंगे ।

'गाँधी पंचशती' में अभिव्यक्त मिश्रजी का गांधी विचार दर्शन, वर्ग संघर्ष आदि हमारे लिए आश्चर्य की बात नहीं है ''गांधीजी की

राजनीति का नैतिकीकरण करते–करते बहुत दूर तक उसका हिन्दूकरण भी करते चले गये है, हिन्दू यह पवित्र गंगा है, जिसमें हम तरह की नदी–नाला गिरकर पवित्र हो जाता है और यह धारा विराट सागर में मिलकर अपनी सीमाओं को खो देती है, इसलिए गांधीजी की विचारधारा को संत के बजाय शहीद की विचारधारा कहना माकर्सवादी को तो अच्छा लग सकता है पर मिश्रजी को नहीं ।''[१०] गांधी विचार और आन्दोलन की हर सांस का इतिहास कहने की काव्य प्रेरणा ने श्री भवानीप्रसाद मिश्र को जनता और जनतंत्र का कवि बना दिया है । जनता की हर व्यथा को वाणी देने में ही कविने अपनी सार्थकता मानी है, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक और साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों पर गांधीजी का प्रभाव अमोघ है ।

गांधीवाद का प्रभाव हिन्दी कविता पर कब से पड़ने लगा यह यहाँ विचारणीय है । हिन्दी कवियों पर गांधीजी का प्रभाव उनके भारतीय राजनीति में प्रवेश करने से पूर्व ही दक्षिण–अफ्रिका में 'सत्याग्रह' करते समय से ही माना जाता है । मिश्रजी ने 'गांधी पंचशती' द्वारा गांधीजी को श्रद्धांजलि व्यक्त की'मृत्युंज्य' भारतीय भाषाओं में गांधीजी पर लिखी गयी कविताओं का संकलन नयी कविता के कविताकार भवानीप्रसाद मिश्रजी ने गांधीवाद के प्रभाव में आकर रचा है । सत्य, अहिंसा, खादी–चरखा, सत्याग्रह तथा अहयोग आदि गांधीवाद के विभिन्न पहलुओं की सुन्दर अभिव्यक्ति हुयी है, महात्मा जी की मृत्यु पर श्री भवानीप्रसाद मिश्रजी लिखते है – 'बापू हम तुम्हें समझ न पाये तुम हमें परम आनंद दे गये, फिर कभी आओं इस धरती पर तों हमें वर दो कि तुम्हें जान सके और तुम्हारे अमर उपदेश को मानकर चल सकें –

"हम नहीं समझे
कि तुम आकर गये,
तुम परम आनंद वन होकर गये
फिर से आओं कभी अगर,
कि यही वर दो कि तुम को जान से,
मृत्युनित द उपदेश मन से मान ले ।"[११]

गांधीवाद के प्रभाव के अतिरिक्त मिश्र जीने राजनैतिकता में भी दिलचस्पी ली ।

राजनैतिक जीवन दृष्टि तथा स्थिति :

यह लक्ष्य किया जा चुका है कि राष्ट्रीय आन्दोलनों में दिलचस्पी लेना मिश्रजी ने हाईस्कूल से ही शुरू कर दिया था, हम यह भी दृष्टिगत कर चुके है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के आन्दोलनों में किस प्रकार गांधीजी के नेतृत्व में सक्रिय रहे, और उसके पश्चात् एक निष्ठावान देशभक्त के रूप में गांधी-दर्शन को अपनाया । इस काल खण्ड में एक ओर नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना तथा दूसरी ओर निराशा, अवसाद, कुण्ठा आदि की अनुभूँज तत्कालीन काव्य में सुनायी पड़ने लगी । स्वतंत्रता के बाद भारत का राजनीतिक वातावरण अजीब विषमताओं का शिकार हो गया । साम्राज्यवाद विरोधी स्वतंत्रता की क्रांति का स्वरूप मंद पड़ गया । कुर्ता, धोती, टोपी के प्रतीक आजादी के पूर्व में संकल्प का अर्थ ही खो बैठे थे ।

मिश्रजी ने उपर्युक्त राजनीतिक विकृति तथा राष्ट्रसेवी व्यक्तियों की आदर्शहीनता पर गहरी संवेदना व्यक्त करने के साथ-साथ चुटीले

व्यंग्य से पूर्ण रचनाएँ लिखी है, ईमान सड़कों पर बिकने लगा था । पूँजीवाद तथा सामन्तवाद के गठबन्धन थे, मजदूर आन्दोलनों ने किसान आन्दोलन को पीस डाला । सन् १९५० ई. के बाद नेहरू युग, बौद्धिक प्रवंचना, भ्रष्टाचार, जुथवाद, जातिवाद, क्षेत्रीयवाद का अखाड़ा बन गया । ढोंग चारों तरफ इस तरह व्याप्त हो गया कि स्वतंत्रता को धूमिल कर दिया । यद्यपि राजनीतिक मंच बहुदलीय होते गये । सभी दलों में कर्णधार बनने की इच्छा जागृत होने लगी । जनता से वोट पाने के चक्कर में विरोधी पक्ष नये-नये नाटक रचने लगे । परिणाम यह हुआ कि लोकतंत्र में धर्म निरपेक्षता का नाटक करते हुए भी भीतर से जातिवाद अवसरवाद और पतनशील व्यक्तियं को पालते रहे ।

उपर्युक्त राजनीतिक स्थिति की प्रतिक्रिया भवानी प्रसाद मिश्रजी की कविता में यत्र-तंत्र विद्यमान है । क्योंकि इन सब विषमताओं के बीच ही गांधीजी की नीति को अपनाने वाले यही एक ऐसे कवि है जो बार-बार जेल गये तथा असहयोग आन्दोलन में बार-बार हिस्सा लिया और खुले मन से नेतृत्व का साथ दिया । मिश्रजी के कुछेक काव्य संग्रहों में राजनैतिक चेतना पूरी तरह उभर कर हमारे सामने दृष्टव्य होती है । जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण सर्वप्रसिद्ध काव्य-संग्रह 'त्रिकाल संध्या' इसी बात का द्योतक है । इसके पूर्व प्रकाशित 'चक्ति है दु:ख' नामक काव्यसंग्रह की कुछेक कविताएँ भी राजनीतिक चेतना को रूपायित करती है, इसके अन्तर्गत 'अक्ष्य यह सपना' जैसी कविता से धिरता हुआ अन्धकार तथा युगीन निराशा का रूप परिलक्षित होता है ।

''रात भर पीसोगे
पारे में उठाओगे,
किसे दोगे अज्ञेय, बेशक अपना,
रक्त हीन, प्राण हीन,
यह बेहूदा सपना ।''

जिस तरह राजनीतिक आपातकालीन स्थिति को सही रूप में देख सकता है, किन्तु कवि नहीं । अपने समय की मानव द्रोही तथा गंदी राजनीति के खिलाफ विद्रोह पैदा करता है । मिश्र जी की काव्यायात्रा के प्रारम्भिक चरण में आजादी के लिए उद्वेलित एवं आंदोलित दिखलायी पड़े तथा इस काल की उनकी सभी रचनाएँ राष्ट्रीय उद्बोधन, मातृवेदना तथा गांधी विचार के प्रति समर्पण से भरपूर है, उनका यह काव्य संग्रह राजनीतिक अनुभूतियों का प्रकाश पूंज है जो 'त्रिकाल संध्या' के नाम से पूर्वविदित है । जिसमें दो या तीन साल की आपातकालीन स्थिति से सम्बन्धित अनुभवों तथा वैचारिक प्रक्रिया एवं प्रतिक्रिया को अभिव्यक्ति किया है । इस प्रकार से इसे कवि की अनुभूतियों की डायरी से भिन्न एक अनुभूति प्रंद तथा निर्भीक कवि की दिन-प्रतिदिन की चेतना का इसे एक सफल आंकलन कहा जा सकता है । इस सन्दर्भ में भूमिका के निम्नलिखित वाक्य उल्लेखनीय है -

''जैसे ही खबर लगी कि इन्दिरा जी ने आपातकाल की घोषणा करके उन सारे रास्तों को बंद कर दिया है जो प्रजा के सामने किसी भी छोटी-बड़ी, अनुचित कार्यवाही के प्रति असहमति प्रकट करने के लिए तैयार रहना चाहिये, वैसे ही दो बरस के संकल्प में बदल गया

कि जो धटा है, उसे पोंछना है – 'में कैसे पौंछने से अपने को जोहूं' बेशक लिखने को । लेकिन डायरी लिखने से नही । २६ जून से सुबह, दोपहर और शाम रोज एक कविता लिखना शुरू कर दिया और लिखना शुरू करने से पहले ३ पन्ने पर लिखा – त्रिकाल संध्या ।''[१२]

सभी कविताएँ उच्चस्तर की होने के साथ–साथ देश की आत्मा को मुखर करती है । कुछेक कविताओं में वे बाते कही गयी है जिसको कहने के लिए अतिरिक्त साहस की आवश्यकता होती है । 'त्रिकाल संध्या' में विशेष उल्लेखनीय 'चार–काँए उर्फ चार हाँए' शीर्षक कविता है । जिसे उन्होंने कविता में दिया है – प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, काग्रेस अध्यक्ष और संजय गांधी, और चारों पर गहरा व्यंग्य किया गया है । इससे बड़ा अन्तर द्वंद्व और वर्ग–संघर्ष ओर कहा देखने को मिलता देखिए –

''कभी–कभी जादू हो जाता है दुनिया में,
दुनिया भर के गुण दिखते है आँगुनियां में,
से आंगुनियां चार बड़े सरताज हो गये,
इनके नौकर चील, गरूड और बाज हो गये ।''

यह कविता आपातकालीन स्थिति के पश्चात् अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी और टेलीविझन में भी प्रसारित हुयी ।

आपातकालीन कविताओं के प्रति जागरूकता है और लगता है, आपातकालीन लम्बे किस्से को थोड़े में कह दिया, कवि को कहना पड़ा कि वे सत्ताधारी क्या समझेंगे जिन्होंने जनता के खुन को पानी

की तरह सड़कों पर बहा दिया है । यह आपात स्थिति 'मरन त्यौहार' थी जिसमें हमारे मन का एक हिस्सा गोली खा कर मर गया –

''हमारे मन का एक हिस्सा,
गोली खाकर मर गया,
यह समाचार मुझे और तुम्हें
एक तरह से अकेला कर गया –
मगर इस दु:ख से हम,
बचना नहीं चाहते,
ऐसी कोई दीवार,
रचना नहीं चाहते ।''

उपर्युक्त काव्य संग्रह को पड़ने से अनअपेक्षित परिस्थितियों के सामने एक सौ फीसदी ईमानदार साहित्यकार की सहज अभिव्यक्ति प्रतीत होता है । ऐसा जान पड़ता है कि जन जीवन के अनुभवों ने व्यंग्य में बोलने को विवश कर दिया था, तब टूटता, कराहता और चीखता देश जब कविता में धूम रहा था अर्थात् जिस समय कटुता से भरी देश की नीति बेचैनी और परेशानी में करवटे बदल रहीं थी इस समय चेहरे पर परेशानी के भाव कवि की तकलीफ की ओर भी बढ़ा रहे थे ।

राजनैतिक चेतना के आकलन की दृष्टि से यदि इस कविता के विषय में विचार किया जाए तो इसमें राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, कांग्रेस अध्यक्ष तथा संजय गांधी इन चारों के द्वारा आपातकालीन स्थिति द्वारा देश में लादे हूए आंतक का यह पूर्ण दिग्दर्शन है, जिसके कारण

अवसवादी दुर्बल राजनीतिज्ञ अपना ही स्वार्थ सिद्ध कर रहे थे, उस समय कवि ने बड़े ही सहज और सरल शैली में मुहावरों के प्रयोग द्वारा राजनैतिक व्यंग्यात्मक रूप में संधर्ष को उजागर करते हुए अवसरवादिता का पर्दाफाश किया है ।

मिश्रजी की कविताओं में अभिव्यक्ति वर्ग-संघर्ष को निम्न लिखित शीर्षकों के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है -

१. राष्ट्रीय उद्बोधन
२. राजनीतिक आतंक तथा विभिन्न दलबन्दी
३. भ्रष्टाचार के बिच पिसते आम आदमी का संघर्ष
४. निरासा, कुंठा तथा अवसाद का संघर्ष
५. कवि का निजी दृष्टिकोण

१. राष्ट्रीय उद्बोधन :

आज के स्वाधीन भारत का प्रत्येक नागरिक अपने राष्ट्र की अक्षय सम्पति एवं संबल है । देश के स्वतंत्र होते ही उसके सम्यक् विकास के लिए अनेक प्रकार की मंगल कामनाएँ प्रकट की गई । गांधीजी ने जिन मानवोचित आदर्शो के आधार पर रामराज्य की कल्पना की थी वह स्वतंत्रता के इतने वर्षो के बाद भी साकार न हो सकी, इसका मूल कारण तत्त्व राजनीतिक सता का संघर्ष, जिसका विस्तृत विवेचन हम आगे करेंगे, मिश्रजी की रचनाएँ राष्ट्रीय उद्बोधन से भरपूर है- जिसमें मातृवंदना और गांधी विचार के प्रति पूर्ण श्रद्धा के भाव दृष्टिगोचर होते है । राष्ट्र धर्म के प्रति कर्म निष्ठा की भावना तो फूट-फूट कर भरी है, गांधी जी की आवाज बन कर कवि स्वयं

देश की आजादी के यज्ञ में हिस्सेदारी करता रहा । जब पराधीन देश में ब्रिटिश नौकरशाही को हटाने के लिए अहयोग आन्दोलन तथा स्वदेशी आंदोलन चल रहे थे तब उसी मार्ग का समर्थन इस कविने बड़ी निर्भयता से किया है । 'संग्राम साथियों को जेल से विदा देते हुए' कविता में कवि ने राष्ट्रीय आन्दोलन के संघर्ष को, अपराजेय आवेग को, निम्न पंक्तियों के माध्यम से व्यक्त किया है –

''भारत जाकर इतना कहिये,
भीतर के लोग जो देश में है;
और उससे ज्यादा बड़ी बात,
भीतर के लोग होश में है,
दीवार जेल की गांधी को,
नेहरू को निगल नहीं सकती,
लहरें आजादी की ऐसे रोके
से ऐसे कभी नहीं रूकती ।''[१३]

आजादी के धूमिल पड़ते सपनों ने कवि भवानी प्रसाद मिश्र को बेचैन कर दिया । उनकी हालत उस समय उस माली की तरह की जिसने राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए आजादी के नाम को श्रम और साधना से लहलहाया ।

२. राजनीतिक आंतक तथा दलबंदी :

पूर्ववर्ती विवेचन से प्रकट है कि मिश्र जी स्वंय सभी समकालीओं में अलग तरह के कवि रहे हैं । राजनीति को दरकिनार रखकर उन्होंने समकालीन सच्चाई का साक्षात्कार कभी नहीं कराया।जब कि वे

राजनीतिक कविता के कवि कभी नहीं रहे लेकिन इस बात का मतलब यह नहीं है कि उनकी राजनीति मंद है या वे यथार्थ संदर्भो, स्थितियों तथा अन्तविरोधों आदि का उल्लेख नहीं करते, जनतंत्र के प्रदर्शन, दल-परिवर्तन, कुर्तीवाद, भ्रष्टाचार, राजनीतिक, अवसरवादिता, जनता की तबाही आदि पर उन्होंने तीखा व्यंग्य लिखा है । व्यवस्था विरोधी कविताएँ लिखने के अपराध में जब उत्तरप्रदेश सरकारने उन्हें पुरस्कार से वंचित कर दिया था - तो अक्षर वश के इस कविता से अफसोस तक नहीं किया और 'आप और दो कोडी का आदमी' नामक कविता में राजनीतिक सता के चरित्र का भंडाफोड़ करते हूए निम्न प्रकार से लिखा -

''हाँ ऐसे लोग भी है,
जिनकी कीमत,
दो कोडी की नहीं,
जो आपकी गाड़ी के पहिये के नीचे धूल है,
जो बहुत हुआ
तो उसके जुतों के नीचे के
कुचले हुए फूल हैं,
जो आदमी सफेद पोशाक पर दाम,
कई बार जिनके बारे में,
आपके मन में एक प्रकार की आग है,
यो, कि ये कम्लख्त
तख्त जिनको अपने चढ़ने की

सीढ़ीयों की तरह बरतता है
जरूरत से ज्यादा चढ़ गये हैं ।''

(दिनमान, पृ.४५, फरवरी, १९८३)

इस तरह छोटे प्रकार के दल तथा गुटबंदी के कारण समाज में धोर आतंक तथा कुंठा दृष्टिगोचर होने लगी । पूँजीवादी व्यवस्थाश्रित, राजनीतिक भावना, राष्ट्रसेवा की अपेक्षा दिखाया तथा आड़म्बर आदि का बोलबाला हो गया । स्वाधीनता के पश्चात् राजनीतिक जीवन में अधिकार लिप्सा प्रबल होती जा रही है । आज हम कहते हैं कि तंत्र प्रजा का है, किन्तु सताएँ शासक वर्ग के हाथ में रहती है, जिसके कारण शासक लोग अपने सताधिकारियों का मनमाना उपभोग कर जनता के दिमाग और उसकी चेतना शक्ति को हथिया लेते हैं अतः यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक परिस्थितियों के अंकन में राजनैतिक संदर्भो को प्रकाशित करनेवाली मिश्रजी की 'इदंन मम्' की भी कविताएँ कवि के मन की उथल-पुथल को खास तरह से सामने लाती है ।

इनकी कविताओं में महत्वपूर्ण बात यह है कि उनमें दूसरे राष्ट्रवादी कवियों की तरह समाज के प्रति मानव-द्रोही, विदेशी सता के दलाल, परजीवी तत्त्वों को फैलानेवाले व्यक्तियों को लेकर आकुब है । इन्होंने सबके अधिक राजनैतिक चेतना का विस्तार 'त्रिकाल संध्या' नामक काव्य संग्रह में किया है, जिसकी एक-एक कविता व्यथा-कथा, संधर्ष की दास्ता से दली जान पड़ती है, यह काव्य संग्रह उस समय का साक्षीभूत इतिहास है, जबकि जनता पर कठोर से कठोर अत्याचार, आंतक बढ़ते जा रहे थे और लोग इतने भयभीत व सेहमे से हो गये

थे कि बिना कहे ही डर जाते और दूसरी तरफ से ऐसे मुक्त कंठ हो गये थे जिन्हें देखकर लज्जा से सिर झुकता था । इन का वर्ग-संघर्ष हर काव्य में हमें दीखाय देता है ।ऐसी स्थिति को देखकर कवि को यथार्थ कहने को मजबुर होना पड़ा । इसलिए ऐसे कठोर समय में भी उस संघर्ष को दिखाने में कवि ने शब्द को सत्य एवं कर्म से विमुख नहीं होने दिया ।

(३) भ्रष्टाचार तथा नैतिकता के बिच का संघर्ष :

आज के बहुत से कवि 'आज और यहीं' यह जोर देने लगे हैं । किन्तु उनका इस तरह का आग्रह कभी नहीं चला, इस प्रकार का आग्रह जिन कवियों में रहा या पनपा है, उनके कवि कर्म का अवमूल्यन ही हुआ है ।अस्तित्ववाद के नाम से लिखी गयी अनेक कविताओं के विषयमें यह कहा जा सकता है कि मिश्र जी इन सबसे दूर रहे । अस्तित्ववाद का फैशन के रूप में अनुगमन उन्हें कभी भी रूचिकर नहीं लगा । नर्मदा की तरह बहना, सतपुड़ा के जंगलों की तरह हरा-भरा और धना होना ही उनका काव्य संसार कहा जा सकता है । युग के जहर को पीने पर भी उनकी कविता का प्रधान स्वर कुंठा, घुटन, मृत्यबोध, खोखलेपन तथा निराशा का नहीं बन सका, आज की विषमताओं तथा विसंगतियों से भरे इस युग में उनका कवि कर्म मानों कह रहा है कि -

"कूदता हूँ खेलता हूँ मैं,
दू:ख डटकर झेलता हूँ,
और कहना मस्त हूँ में
यों न कहना अकृत हूँ में" (गीत-फरोश, पृ.३४)

देश में व्याप्त भ्रष्टाचार पर दृष्टि डालकर कवि व्यंग्य शैली में मस्ती के साथ लिखता है –

"जिन लोगों ने तो बेच दिये ईमान,
में सोच समझकर आखिर
अपने गीत बेचता हूँ
या भीतर आकर पूछूँ आप
है गीत बेचना वैसे बिलकुल पाप
दया करूँ मगर लाचार हूँ,
हार–कर गीत बेचता हूँ", (गीत–फरोश)

अत: निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि युगीन भ्रष्टाचार के परिवेश में मिश्रजी की चेतना नैतिकता से सम्प्रक्त है, किन्तु यह नैतिकता की चेतना कोई काल्पनिक आदर्श की वस्तु न होकर स्वाभाविक और व्यावहारिक है । उसमें आत्मविश्वासी अन्त: करण का स्वर आ मिला है ।

४. निराशा, कुण्ठा तथा अवसाद के बिच का संघर्ष :

सन् १९६० के बाद भारतीय जीवन में दुविधा और दरार का बोलबाला देखा जा सकता है । भारतीय बुद्धिजीवी, गांधी युगीन आदर्शवाद को भूलाकर नेहरू युग के नवनिर्माण के सपनों को निष्प्राण पाकर, देश में व्याप्त भ्रष्टाचार से बेचैन हो उठता है । तब नयी कविता आदर्शवादी व्यक्तिवाद के खिलाफ यथार्थवादी व्यक्तिवाद की सीधी प्रतिक्रिया थी जिसमें अनेक वैचारिक दृष्टियाँ और भीतरी शक्तिर्या एक साथ काम कर रही थी । इस नयी कविता

की आत्मा थी – आधुनिक भाव बोध, जिसमें मोहभंग और अस्वीकृति का स्वर प्रधान था । एक प्रकार से कहें तो ये अपनी परिस्थितियों से उत्पन्न संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएं थीं । समाज भयानक रूप से विषमताग्रस्त हो गया था । चारों तरफ नैतिक ह्रास के दृश्य दिखाई दे रहे थे, शोषण तथा उत्पीड़न बहुत पहले से बढ़ गया था, जिसके कारण निराशा, अवसाद तथा विभिन्न कुंठाओं ने जन्म लिया । मजदूर, पूंजीपति तथा जमींदार के बीच की दूरियाँ बढ़ती गयी थी । मानव सम्बन्ध तितर – बितर हो गये थे और वर्ग विभाजित हो गये थे । उच्च वर्ग तथा निचला मध्य वर्ग । मिश्रजी निम्न मध्यवर्गीय परम्परा का ही साथ देकर उसकी यथार्थता को पूरी तरह अपनी कविता में परिलक्षित किया । उन्हों ने क्रांति तथा शान्ति एक ही सिक्के के दो पहलु बताए । इन्हें परस्पर विरोधी नहीं माना । बिना उथल–पुथल के न तो शान्ति ही सम्भव है और न ही क्रांति । यदि क्रांति बाहरी अव्यवस्था है, तो शांति की भीतरी । क्रान्ति की भावना शैतान को जन्मती है, तो शान्ति की भावना गहरी विरक्ति को । इस तरह नयी कविता के काल में ऐसी विदूपताओं के कारण चारों तरफ अवसाद की स्थितियाँ पनपती गयीं । यह निराशा तथा कुंठा की पीड़ा बहुत दुखती रही फिर भी मिश्रजी ने अभिव्यक्ति में अनुशासन से काम किया ।

५. कवि का निजी दृष्टिकोण :

उपर्युक्त युगीन स्थितियों के सन्दर्भ में मिश्रजीने अपना यह तथ्य पूर्ण प्रस्तुत किया है कि नयी कविता के काल में जितनी समस्याएँ, विद्रूपताएँ तथा शंकाएँ मानव को घेर कर खड़ी हो गयी है उनका

सुख–चैन सबकुछ 'खत्म हो गया है । इसी वर्ग–संघर्ष ने मानव–मानव को इतनी थकान से तथा तनाव से भर दीया है कि उनके मन में शांति के लिए कोई जगह ही नहीं रहीं है। धोर अशांति से उसे विकल, बेचैन तथा अनुत्साहित सा कर दिया हैं । श्रम के परायेपन तथा अमानवीकरण की पीड़ा ने मानव की रही–सही शान्ति की बात करना कहाँ तक न्याय संगत है ? इसका सीधा उत्तर यही है कि शांति का प्रश्न अर्थ तथा काम के अलग नहीं है, जो नैतिक तथा आध्यात्मिक न होकर जीवन की प्रथम अनिवार्यता का प्रश्न है । यदि मानव मात्र अर्थजीवी या कामजीवी ही बन पायेगा तो शांति विलुप्त हो जायेगी । कहना न होगा कि मिश्रजी की यह जीवन दृष्टि भारतीय संस्कृति की पुरूषार्थ चतुष्टय द्वारा अर्थ और काम के समुचित नियमन की है । क्योंकि पैसा, लूटमार, व्यभिचार और अशांति को जन्म देगा । इसी शोषण को देकर देखकर भवानीप्रसाद मिश्र में विश्वास जन्मता है और कहते है –

''एक दिन होगी प्रलय
मिट रहेगी झोपड़ी
मिट जायेगी नीलाम निलय भी ।''

इस तरह मिश्रजी ने अपनी कविताओं में विषमताओं तथा विसंगतीयों के भीतर के वर्ग–संघर्ष तथा व्यक्ति के संघर्ष की सही तस्वीर उभारी है । समय की खोखली सच्चाई तथा दहकते विवेक को अपनी कविता में पूरा–पूरा स्थान दिया है ।

सांस्कृतिक परम्परा के प्रति गौरव की भावना :

संस्कृति मानव समाज की ऐसी जीवन पद्धति है - ''जिसमें समाज के व्यक्ति सहभागी होते उसे सीखते तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रेषित करते जाते है ।''[१४] सामूहिक सहयोग सुन्दर वस्तुओं को परखने तथा रचने की योग्यता तथा ज्ञानार्जन की उच्च प्रवृत्तियों का उदय हुआ, जो सांस्कृतिक जीवन के विकास क्रम के प्रथम सोपान में आती है । संस्कृति के स्वरूप के विकास को रेखांतिक करते हुए डॉ. वाचस्पति गैरोला ने कहा है कि - ''अपने आर्थिक तथा सामाजिक विकास क्रम में मनुष्यने सुरूचि, आदर्श, अनुराग और सौन्दर्य की अभिरूचि का निरन्तर परिष्कार तथा प्रसार किया । उसकी वही परिष्कृत अभिरूचि संस्कृति की जननी बनी।''[१५] डॉ. गैरोल की अवधारणा डॉ. गुप्त उपर्युक्त विवेचन से साम्य रखती है । उपर्युक्त अन्तर्वृतियाँ प्राय: आचार और विचार की निर्णायक एवं नियामक होती है । इस दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि संस्कृति की अन्तश्चेतना की सूक्ष्म परिस्कृत स्थिति की प्रधानता होती है ।

प्रत्येक देश की संस्कृति की पीढ़ि का में कुछ आदर्श, सिद्धान्त, मनोभाव, आशा-आकांक्षा, तदनुरूप कार्यक्रम तथा जीवन दृष्टि के प्रयोजक जीवन मूल्य विद्यमान रहते है । प्राय: मनुष्य अपने मानसिक स्तर और ग्रहण शक्ति के अनुसार उन्हें अपनाता रहता है । तद्नुसार उसके विचार उसके ढाँचे में ढल कर जीवन पद्धति के निर्माण में सहायक होते है । इसलिए भारतीय संस्कृति की दृष्टि से विचार करने से हम इस देश की परम्परा पोषित जीवन पद्धति और आशा-आकांक्षा

को इसमें समेट सकते है । जीवन परिवर्तनशील है, अतः अनेक विध संदर्भो में जीवन दृष्टि क्रमशः विकासशील रहती है, तथा युगानुरूप उसमें परिवर्तन लाती है । संसार की सबसे प्राचीन संस्कृति होते हुये भी भारतीय संस्कृति युगानुरूप विकसित होती आयी है और उसके बाह्य रूप में अनेक परिवर्तनों के बावजूद भी उसकी अन्तश्चेतना है ।'

इसी कारण आधुनिक युग में ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ में नवजागरण का जो सुत्रपात हुआ वह सांस्कृतिक पुनरूत्थान की अन्तश्चेतना से अनुप्राणित था । युगीन आवश्यकतानुसार दयानंद सरस्वती, राजाराममोहनराय स्वामी, विवेकानंद जैसे पुरूषों के प्रयास से जहाँ समाज सुधार का सुत्रपात हुआ वहाँ दूसरी ओर आगे चलकर स्वामी विवेकानंद, बाल गंगाधर तिलक तथा महात्मा गांधी जैसे नेताओं के द्वारा आदि राष्ट्रीय चेतना का जो क्रमशः प्रसार होता गया उसमें यह उल्लेखनीय है, उसमें यह दोनों बाते भारत की सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित थी मिश्रजी तथा उनके साहित्य में पूर्ववर्ती विवेचन के पृष्ठों के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि इस कवि की अनुभूति उपर्युक्त सांस्कृतिक चेतना के वर्ग संघर्ष से जुड़ी हूई है ।

कवि भवानी प्रसाद मिश्र की पांच दशक से भी अधिक लम्बी काव्ययात्रा को देखकर एक ही बात मन में आती हैं कि भारतीय संस्कृति जिसका मूल स्वरूप सामाजिक संस्कृति का रहा है, संस्कृति की प्रक्रिया में ही भारतीय संस्कृति का स्वभाव पाया जाता है । प्रवाह की अविच्छिन्नता के कारण सांस्कृतिक प्रवाह तरह का बोध संवेदना में भवानीभाई की कविता पैदा करती है । मिश्रजी के

समकालीन कवियों में जहाँ कल्पनाशीलता या एक खास वामपंथी वैचारिकता प्रबल हुयी है, वहाँ इनकी कविताओं में इन सबसे हटकर उपनिषद, बुद्ध, गांधी विचारदर्शन तथा सन्तुलन व्यवस्थित पैदा हुआ है भाषा के साथ साथ मिश्रजी की संवेदना लोकजीवनके इतनी नजदीक होती गयी है कि उसी की छटपटाहट, द्वंद्व, कुंण्ठा, बेकारी, गरीबी तथा निराशा, अवसाद आदी सब उसी का छन-छन कर आया हुआ सम्पादित - संशोधित रूप लगने लगती है खरी भारतीयता की भी ऐसी शुद्ध कविता छायावादोत्तर कविता में दुर्लभ रही है ।

मिश्रजी अपने भीतर और बाहर मैं और तुमको, व्यक्ति और समष्टि को मिलाकर इस निष्ठा से प्रेम से लिखते है कि ''समाधि सी लग जाती है, उस क्षण मानों कविता उनको लिखती है, वे कविता को नहीं लिखते ।''[१६] भवानी प्रसाद मिश्र की कविता में भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का वह विचार पुंज भरा हुआ है जिसे देश के तपस्वियों, साधुओं, ज्ञानियों, भक्तों तथा दार्शनिकों ने युगों-युगों से संचित किया और जिसके नक्श भारतीय जन के मानस आज भी मौजूद है । 'कालजयी' या 'त्रिकाल संध्यां' के काव्य का आंतरिक विग्रह, वर्ग-संघर्ष के साथ संस्कृति की भाव मिश्रित शक्ति का बोध प्रबंध रूप से है तथा -

''क्या तय नहीं हो गया,
कि मैं सबसे शक्तिशाली हूँ,
महिषासुर मर्दिनी हूँ
दुर्गा हूँ, काली हूँ ।
यह नहीं हुआ तो सब मिलकर,

इसे तय करो
मुझे डरे हुये शक्तिशाली को
अलग-अलग और मिलकर
सब निर्भय करो ।''

कवि स्थायी निराशा, कुंठा का हो गया है, वैसा पस्तीवाला भाव भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता को मूर्त करने के कारण यहाँ आ नहीं पाया है । चुँकि यह सांस्कृतिक अस्मिता एक प्रदीर्ध प्रक्रिया का रूप है वह कोई सिंहासन पर बैठी ठाकुरजी की मूर्ति नहीं है । मानव के मनोभाव जगत का कैलास पर्वत है । आज का अधिकांश नया कहा जाने वाला साहित्य किसी भी भूमि पर खड़ा नहीं है । वह तो अमर बेल की भाँति फैलने पर भी जड़ विहीन है । ऐसे भूमिहीन साहित्य से भवानी भाई ने अपने को हर किमत में बचाया है, जो कुछ उनका अपना है वही सबका है । जीवन के तन्मय क्षणों को वाणी देते-देते उनके स्वर में उदातत्ता, जुनुन, संघर्ष, निराशा जन्मती रहती है । मिश्रजी की कविताओं में भावना की तरंग में भी ज्ञान की बाते बहती चली आती है । उनके लिए राष्ट्र धर्म राजनीतिक एकता का नहीं वरन् भारतीय सांस्कृति एकता का प्रतीक है । संस्कृतिक के प्रति समर्पण का भाव ही राष्ट्र धर्म की धुरी है । कहना न होगा कि मिश्रजी मानव प्रेम के कवि हैं - जिसमें सूफी सन्तों की तन्मयता को विराजमान देखा जा सकता है । किन्तु उसे भी आत्मसात् करने के लिए परम्पराधारा का आह्वान करना होगा । अत: मिश्रजी का काव्य भारतीय संस्कृति के प्रति गौरव की भावना का भी अनुभव प्रतीत करता है ।

संघर्ष के अलावा प्राकृतिक सम्पदा के प्रति कवि की संवेदना :

भारत की प्राकृतिक सम्पदा के प्रति गौरव व कर्मनिष्ठा की भावना से पहले पूर्ववर्ती कथन से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय परम्परा को जानने वाले यह बात समझते है कि हमारी जातीय चेतना एक कमलों सेभरा हुआ उपवन ही है, जिसमें यदि एक भी कमल को अलग कर दिया जाये तो उत्सर्ग और अर्पण के भाव पर कुठाराधात है । ठीक इसी तरह से सांस्कृतिक भाव को धारण किये हुए 'फूल लाया हूँ कमल के' कहते हूए मिश्रजी साहित्य में अवतरित होते हैं ।

मिश्रजी की कविताओं में पेड़ पौंधे – नदियाँ आदि भी मानवीय संवेदनाएँ बहुलत के साथ व्यक्त हुए है, यदि इस बहुलता को खोजा जाये तो ज्ञात होगा कि हमारी सांस्कृतिक अवधारणा में ही निकटवर्ती प्रकृति के प्रति संवेदना रही है । मिश्रजी की कविता में सतपुड़ा के जंगलों को ही नहीं बुलाया बल्कि नर्मदा नदी को भी कई रूपों, रंगों व तरंगों में याद किया है। नर्मदा नदी के अतिरिक्त मिश्रजी के काव्य में विन्ध्याचल पर्वत, सतपुड़ा और रेवा का परिवेश यह सब प्राकृतिक सम्पदा विविध रूपों में चित्रित हुई है । जिस प्रकार सभ्यताओं की गतिविधियों को भूगोल में काफी हद तक तय किया है, ठीक उसी प्रकार से कवि के आस–पास पशु, पक्षी आदि सभी उन सब संवेदनाओंमें रचे बसे होते है, तब तक यह प्राकृतिक सम्पदा भावों के साथ सम्बन्ध स्थापित नहीं करती, अपितु कवियों के मूलरूप और मूल व्यापार भी निर्धारित नहीं करती हैं । प्रदेश या जनपद, निर्झर, चट्टान, वृक्ष, लता, झाडी, पशु, पक्षी आदि सब सहचर होते है और

वह चिर सहचरत्व मिश्रजी की कविताओं में उन अवसाद, व्यक्तिओं के कटु अनुभवों और उन हिनभाव को व्यक्त करते है जो जन सब देखते हुए, सब जानते हुए भी चुपचाप अन्याय सहते जा रहे है । वह न बोलने वाले निजीव झोपड़े, किसान, अंधनगें मजदूर आदि सभी मिश्रजी की कवितामें बोलते हैं । नर्मदा नदी पर घटा का धिरना, बिजली का चमकना, मेह का बरसना, कोहरे का छाना, सतपुड़ा के जंगलो में सुखे पत्तों का झड़ना, हरे वनों में घंसना, सधन वनों से मिल पाना आदिये सब व्यापार इनकी कविता में एक साथ चलते है । प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा का वर्णन मिश्रजी का कहीं-कहीं तो अवर्णनीय सा लगता है । देखिए -

''वायु प्रातः की भीनी-भीनी बह रही,
धीरे-धीरे नाव लहर पर तिर चली,
पागल है यह, समय और लहरे प्रबल,
हम गुंजरी घाट छोड़ पीछे चले,
वह गुंजारी घाट कि जो छुप सा रहा,
आज नर्मदा मेरी है ! लो और भी
सूर्य पहिन के सारिया बढ़ता आ रहा,
उष्ठा किये देता है, सब वातावरण,
यह सफेद धूँधट कुहरे का उठाकर,
काँच उड़ रहे ऊपर आगे पहाड़ी
बाजू में हरियाली झाड़ी है सधन,
यहाँ नदी कुछ चौड़ी होती जा रही,
ताल दे रही लहरें चुपचाप ही ।''[१७]

उपर्युक्त कविता को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि कविने किसी एक ही वस्तु, एक ही जगह का वर्णन न करके नर्मदा नदी के आस-पास सारी प्रकृति की छटा, पशु, पक्षी सभी का वर्णन तो किया है, कविता पढ़ने से समूचा प्राकृतिक चित्र आँखों के सामने उपस्थित लगता है। मिश्रजी ने ठीक इसी तरह दूसरे सप्तक की भूमिका में भारतीय सांस्कृतिक सम्पदा के प्रति गौरवानुभूति का अनुभव करते हुए लिखा है कि - ''छोटी सी जगह में रहता था, छोटी-सी नर्मदा नदी के किनारे, छोटे से पहाड़ विन्ध्याचल के आँचल में छोटे-छोटे से साधारण से लोगों के बीच में ।''[१८]

प्रकृति को कवि ने बचपन में वत्सल रूप में देखा है । हरे-भरे खुले मैदान, जंगल या पहाड़, झरने या नदियाँ इन्हीं कारणों से कवि बने है । गाय-बैल, घोड़ों आदि से भी एक घर का संसार बनाया, जिसका विशेष संस्कार बच्चों पर पड़ता है । कभी-कभी जब छोटे बच्चे गाय चरानेजाते है तो प्राकृतिक सौन्दर्य बोध तथा वन सौन्दर्य बोध से मन का सुन्दर गठन होता है। ''इन्हीं सब प्राकृतिक रास्तों से मिश्रजी गुजरे है तथा हर तरह की अनुभूतियों को अनुभव किया है । उन्होंने 'वसुदैव कुटुम्बकम्' वाली बात को यथार्थ कहा है, क्योंकि प्रकृति की यह भारतीयता हमारी इनकी कविता में हृदय के प्रकृत सामंजस्य के साथ उपस्थित रहती है । गंगा-यमुना के आसपास जन्में चाहे सूरदास हो या तुलसीदास हो या दिनकर हो उनसे अलग नहीं हो सकता तो फिर नर्मदा नदी के तट पर जन्में यह कवि आसपास की प्राकृतिक सौन्दर्य से अलगाव कैसे रह सकते है । भूमि पर बहने वाली नदियाँ रक्त धमनियाँ होती है और उसके जल में हमारा जीवन

चलता है । इस दृष्टि से भवानी प्रसाद मिश्र को समझने के लिए उनके काव्य को भौगोलिक धुरी कहना या वर्ग संघर्ष का प्रतिबिंब कहना अनिवार्य है ।''[१९]

जीवन मूल्य और विघटन की स्थिति :

आज की सांस्कृतिक चेतना तथा वर्ग-संघर्ष पर विचार किया जाय तो डॉ. मदनगोपाल गुप्त के शब्दों में - ''आज का भारतीय समाज पूर्वकालीन चेतना से जुड़ा रहकर भी एक ऐसे स्थान पर खड़ा है, जिसमें पुराने और नये मूल्यों का टकराव प्रत्यक्ष दिखाई देता है । परम्परागत मूल्य तो टूट रहे है, परन्तु नये मूल्ये रूपाकार ग्रहण नहीं कर पाये है । नये मूल्यों की प्रतिष्ठा की जो चेतना समय-समय पर व्यवस्था देने वाले स्मृति - ग्रन्थों पर उनकी टीकाओं में मिलती हैं । उसके अभाव में दिशा-शून्य स्थिति ही प्रायः दिखायी पड़ती हैं । यह दिग्भ्रांति सामान्य व्यक्ति को उन्ही टूटे बिखरे मूल्यों से या तो जाने अनजाने जोड़ देती है, अथवा उनके विकृत स्वरूप को अपनाने की ओर आकृष्ट रहती है । यही कारण है कि आजादी के बाद बतीस - तैतीस वर्ष बीत जाने के पश्चात् भी हम देशवासियों ने न तो कोई महत्वपूर्ण आकांक्षा के दर्शन कर पाये, और न नव निर्माण की कोई उनमें चेतना है ।''[२०] मिश्र जी की कविताओं में सांस्कृतिक परम्परा के साथ-साथ उपर्युक्त मूल्य विघटन सांस्कृतिक समुदाय के अनेक महत्वपूर्ण पक्ष प्राप्त होते है, जो उनकी सांस्कृतिक चेतना के द्योतक और वर्ग-संधर्ष के चितेरे कहे जा सकते है, उनकी सांस्कृतिक चेतना और वर्ग-संघर्ष को निम्न प्रकार से रखा जा सकता है ।

मिश्रजी ने ग्राम्य जीवन के जो चित्र खींचे है, उनके बचपन तथा यौवन दोनों ही बोलते नजर आते है । किसी भी प्रगतिवादी कवि की कविता से तुलना करते ही स्पष्ट होता है कि गाँवों को वह उनमें कम अच्छी तरह नहीं समझते है । कथ्य तथा शिल्प के गठन में मिश्रजी नागार्जुन तथा केदारनाथ अग्रवाल से पीछे नहीं हैं । उनमें प्रगतिवादियों की तरह गरीबों के लिए चिल्लाने वाली ढोलक की गमक भी कम है । मिश्रजी की मानसिक बनावट में 'ग्रामिण-चेतना' की बड़ी भूमिका रही है । मूलतः तो वे भारतीय ग्रामिण संवेदना के ही कवि है । 'कालजयी' में वे जातिधर्म के बन्धन को तोड़ने का संकेत अशोक के माध्यम से देते है । साहित्य और जीवन को परखने वाली विवेकी आँख मिश्रजी के पास है, जो दूर तथा पास को स्पष्टत या देख लेना चाहती है । उनकी कविता में देखना बहुत जरूरी है और बहुत तरह से । ग्राम वासिनी भारतमाता को वे पंत जी की तरह नहीं देखते -

> ''गाँव इसमें झोपड़ी है, पर घर नहीं है,
> झोपड़ी के कटकियाँ है, दर नहीं है,
> धूल उड़ती है धुएं से दह धुटा है,
> मानवों के हाथ से मानव लुटा है,
> रो रहे है शिशु की माँ चक्की लिये है,
> देव पापी के लिए पक्की किये है,
> फट रही छाती ।'' (गाँव)

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि आर्थिक विषमता के परिणाममूलक विघटन की स्थिति और गरीबों के संघर्ष के प्रति कवि हृदय अत्यधिक संवेदनशील हो चुका है । यह संवेदनशीलता

वस्तु स्थिति का परिणाम कराने के साथ-साथ मूल्यों की प्रतिभा की ओर उन्मुख भी कही जा सकती है । मिश्रजी ग्रामिण जीवन के इन सभी पहलुओं को जीये है । इन संघर्षो को भोगा हैं और वह सब भी इन कविताओं की रचना प्रक्रिया से हिला-मिला है । मिश्रजी की समस्त कविताएँ लोक जीवन की भावभूमि, संघर्ष पर फैलती तथा पनपती रही हैं । यह उल्लेखनीय है कि लोक जीनव के खुलेपन ने ही, जिन अनुभवों का साक्षात्कार किया उनकी सहज अभिव्यक्ति करने में उन्हें कभी संकोच नहीं हुआ ... नदी के बहाव की भाँति उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति का कोई बना-बनाया ढाँचा नहीं अपनाया । वह सबसे अलग अपने अलगारी मार्ग पर सामान्य व्यक्तियों के दु:ख दर्द को लेकर साथ चले है ।

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: हम यह कह सकते है कि भवानी प्रसाद मिश्रजीने नयी कविता को अपने काव्य में यथार्थता सामाजिक चेतना और सामान्य मानव के वर्ग-संघर्ष के द्वारा लोकप्रिय तो बनाया ही है । साथ ही साथ उसे लोक संवेदना से जोड़कर गतिशील, विकासशील रूप देकर और भी ज्यादा निखारा है । उनकी कविता की अपनी विशिष्ट मौलिक पहचान है, जो पढने सुनने से ही पहचानी जा सकती है, जिसका हर ढंग निराला है । ''नये-पुराने कवियों में मिश्रजी ही एकमात्र ऐसे कवि है, जिन्होंने कविता से पूरी तरह अभिन्न बना लिया है - पूरी अन्त: प्रेरणा के साथ । उनके लिए रचना अनुभव की अभिव्यक्ति का प्रयत्न न होकर अनुभव पाने और परोसने की प्रक्रिया है ।''[२१]

उनकी रचनाओं में समय की विषमताओं और विसंगतियों के भीतर से बनने वाले आदमीओं के वर्ग–संघर्ष की सही तस्वीर उभार सकी है । सांस्कृतिक विधटन और मूल्यों की अराजकता के इस काल में क्या आस्था ही जीवन के लिए काफी है' क्या समय की खोखली सच्चाई को दहकते विवेक से कविता में स्थान देंगे ।' इसी तरह के अनेक प्रश्नों का उत्तर सिर्फ हमें भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं में से ही मिल सकता है । इन की कविताओं में व्यक्तिगत ईमानदारी तथा सामाजिक ईमानदारी के द्वार बंद नहीं है । उन्हें स्पष्ट झांका जा सकता हैं और प्रवेश भी कठिन नहीं है । बड़े साहस के साथ अपनी बात व्यंग्यपूर्ण शैली में कहते है और जो नहीं भोगा या जो बात उनके मन में साफ नहीं है, उसका ब्यौरा भी व्यक्तिगत रूप से खुलकर अपनी रचनाओं में दिया है । स्वातन्त्रोत्तर समाज की नई चेतना का प्रभाव मिश्रजी का काव्य संसार खोलकर रखता है । तथा रोजमर्रा के संघर्षो की भाषा ही मिश्रजी की भाषा है । किसी भी कवि का भाषा – संसार उसके अनुभवों के सामाजिक दायरे से बनता है, क्योंकि लेखक या कवि समाज की खुद इकाई होता है । अत: उसकी भाषा का अध्ययन ऐतिहासिक सामाजिक आधारों पर किया जा सकता है, ऐसे सामाजिकता एवं संघर्ष का विवेचन हमे इस अध्याय में देखने को मिलता है ।

यहाँ एक बात इस अध्याय के अंत में, मैं कहना चाहता हू कि 'भवानी प्रसाद मिश्र युग गत विसंगतियों संघर्षो तथा उनके बीच चमकती हुई मानव की जिजीविषा तथा जीवनचेतना का आकलन करने में पूर्णतया सक्षम दिखायी पड़ते हैं ।' वे उपर्युक्त वर्ग–संघर्ष

के विविध पक्षों का आकलन करते हुए अपनी काव्य संवेदना का विषय ही नहीं बनाते बल्कि नये वर्ग-संघर्ष के निर्माण के आकांक्षी भी है । अतः इन तथ्यों के प्रकाश में हम उन्हें वर्ग-संघर्ष के सजग प्रहरी के रूप में देख सकते हैं । उनकी यह जीवन दृष्टि काव्य के शिल्प-पक्ष को एक सीमा को प्रभावित करती है जो कि हमारे लिए एक महत्त्वपूर्ण पहलुं बनता है ।

संदर्भ ग्रंथसूची

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
१.	साहित्य का विश्लेषण	डॉ. वासुदेव प्रसाद	पृ.४
२.	स्टालिन डायलेक्ठिकलमेथड	जे.बी.स्टालिनवास भाग–१	पृ.२००
३.	आधुनिक राजनीतिक चिन्तन	कोकर–अनुवाद यादवेन्द्र तथा महता	परिच्छेदन
४.	मार्क्स एमलंसमाकिसंजम	बी.आई.लेनिन	पृ.७७, ७८
५.	व डायलै किटकल मैथड	जे.बी.स्टालिन– वर्क्स भाग–१	पृ.३००
६.	डायलेक्टिलक मटिरियलिजम भाग–१	मौरिस कोनफार्थ	पृ.२५
७.	नयी कविता और अस्तित्ववाद	डॉ.रामविलास शर्मा	पृ.१७
८.	तार सप्तक के कवि: काव्य शिल्प के माप	डॉ. कृष्णलाल	पृ.६१, ६२
९.	बुनी हुयी रस्सी जानता हूँ कविता	भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.१२५
१०.	हिन्दी काव्य की प्रगतिशील चेतना	डॉ. सन्तोष तिवारी	पृ.१०, १२
११.	'गांधी पंचशती', 'वरदो'	भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.१२२
१२.	'त्रिकाल संध्या' भूमिका प्रथम संस्करण, १९७८	भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.५

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
१३.	'गांधी पंचशती' १० सितम्बर १९४३, शीर्षक – संग्राम साथियो को जेल से विदा देते हुए	भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.६५
१४.	मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति	डॉ. मदनगोपाल गुप्त	पृ.२२
१५.	भारतीय संस्कृति और कल	डॉ. वाचस्पति भैरोला	पृ.६०
१६.	'त्रिकाल संध्या' भयभीत शक्ति शालिनी	भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.१०५
१७.	'गीतफरोश' प्रथम संस्करण १९५६ 'नर्मदा के चित्र'	भवानीप्रसाद मिश्र	पृ.२४
१८.	दूसरा सप्तक	भवानीप्रसाद मिश्र	भूमिका
१९.	भवानीप्रसाद मिश्र का काव्यसंसार	डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल	पृ.३७
२०.	'मंगलदीप' संस्कृति विशेषांक	डॉ. मदनगोपाल गुप्त	१९७८
२१.	भवानीप्रसाद मिश्र का काव्य संसार	डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल	पृ.१०८–१०९

अध्याय–५
भवानी प्रसाद मिश्रजी के काव्यों में गाँधीवाद

- प्रस्तावना
- सिद्धांतपरक काव्य
  - सत्य
  - अहिंसा
  - ब्रह्मचर्य
  - अपरिग्रह
  - अभय
  - स्वदेशी
  - अछूतोद्धार
  - सर्वधर्म समभाव
  - जात महेनत
- व्यक्तिपरक काव्य
- संदर्भग्रंथ सूचि

अध्याय–५
भवानी प्रसाद मिश्रजी के काव्यों में गाँधीवाद

प्रस्तावना :

आज अखिल विश्व यह जानता है कि गाँधीजी एक शान्तिप्रिय कुशल राजनीतिज्ञ थे, वे एक उदारवेता मानव, दूरदर्शी विचारक, सफल समाज निर्माता तथा इन सबसे ऊपर एक महा मानव थे । वे अपने में एक साथ इतनी विशेषताओं को समेटे हुए थे कि अनायास ही साहित्य जगत के छायावादी, प्रगतिवादी युग के समान्तर ही गाँधी युग के प्रणेता बनकर सभी मानवों को प्रभावित करते गए । बापु के व्यापक व बहुमुखी व्यक्तित्व के समान ही उनके विचारों के अनेक पक्ष है । उनका सामाजिक आदर्श सर्वोदय, शासनादर्थ रामराज्य तथा जीवनादर्श सत्याग्रह था । इस प्रकार मानव जीवन के प्राय: सभी महत्वपूर्ण पक्षों को अपने में समेटने वाले आचरण के आचार्य, जीवन के प्रत्येक पहलु को सत्य की कसोटी पर परखने वाले वे कबीर की भ्रांति आखिन देखी, अनुभव लेखी सत्य के प्रयोग की पोथी देते है । ऐसे व्यक्तित्व से साहित्य और साहित्यकारों का प्रभावित होना स्वाभाविक है ।

आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में गाँधीजी के व्यक्तित्व तथा विचारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । उस काल के अनेक ऐसे कवि है, जो उनके आंदोलनों में शामिल ही नहीं हुए, बल्कि जेल भी गए तथा उनके प्रभाव से प्रभावित होकर काव्य रचनाएँ भी करते रहे ।

गाँधीजी का प्रभाव कविता में विशेषरूप से नयी कविता में दिखाई देता है १९५० से इसका प्रचलन देखा जाता है। नयी कविता वह है जो

भारत की आज़ादी के बाद लिखी गई । इसमें जीवन के प्रति आस्था दिखाई पड़ती है । नयी कविता परंपरागत कविता से आगे चली । नयी कविता के दो प्रमुख तत्त्व है - अनुभूति की सच्चाई और बुद्धिमूलक यथार्थवादी दृष्टि वह जीवन के एक-एक क्षण को सत्य मानती है और उस सत्य को पूरी हार्दिकता और पुरी चेतना से भोग ने का समर्थन करती है । नये कविताकारों में गिरिजाकुमार माथुर, बालकृष्णराव, धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे, रधुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल आदि गाँव के संस्कारो और अनुभूतियों से बने है । उक्त नए कविताकारों में भवानी प्रसाद मिश्रने गाँधीवाद से प्रभावित होकर 'गाँधी पंचशती' एवं अन्य काव्य संग्रह लिखे ।

अत: कह सकते है कि गाँधीयुगीन तथा स्वातंत्र्योतर हिन्दी कविता में राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावना के साथ-साथ अन्य सभी वादों छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद नयी कविता आदि की युरोपीय रोमांटिक काव्यधारा, रवीन्द्रनाथ की सांस्कृतिक धारा, मार्क्स की भौतिकवादी विचारधारा एवं फ्रोयड़ के मनोविश्लेषणवादी सिद्धांतों के प्रभावों की बीच भी भारतीय चिंतन के सात्त्विक तथा समन्वित रूप गाँधीवाद विचारधारा का प्रभाव स्थायी रहा है ।

भवानी प्रसाद मिश्र ने गाँधीयुग को जिया, पिया, ओढा तथा उगला है । वह उसी में धंसा तथा उबरा है । उसने जिन्दगी के काव्य को पास बिठाया, जिन्दगी के बिना कविता को वायवी या अरण्यरोदन माना, इसीलिए उसका गाँधी प्रतिमा, देवता, भगवान या अवतार नहीं है । वह जीता जागता, हम सबके बीच का, सुभगता - सुलझता जाना - पहिचाना इन्सान है ।

भवानीप्रसाद मिश्र को गाँधी-काव्य का उत्सव कहा है । कवि की तरूणाई बापू के चरणों में व्यतीत हुई । वे अनेक वर्षो तक महिलाआश्रम, वर्धा में अध्यापन कार्य करते रहे । सेवाग्राम उनकी सांसों में बसा है । इसी भाव को उन्होंने 'आश्रम छोडते हुए' में व्यक्त किया है -

''सोचता हूँ रात भी दिन भी जरूरी है,
एक दूरी है जिसे में यहाँ से जाकर कही
पर कम करूगा ।
और आश्रम अधिक मेरे पास आयेगा ।
ख्याल जिस पर में पला था, मुझे वीणा
बनायेगा और गायेगा ।''[१]

यही वीणा-वाणी सबसे सार्थक सच्चे अन्तः स्थल के तथा जीवनानुभूतियों के स्वर में गाँधी शत-वार्षिकी में झंकृत हुई । हम तो एक गाँधी शताब्दी मनाकर रह गये, दूसरी शताब्दी शुरू हो गयी और जैसे अब बस हमें गाँधी की जरूरत नहीं रह गई क्योंकि उसे हमने भाषण, फोटो, मूर्तियों तथा पुस्तकों-शोधों में बन्द कर दिया, उसकी इतिश्री हो गयी । परन्तु भवानीप्रसाद मिश्र का आस्थावान कवि एक नहीं पाँच शताब्दियाँ मनाता है, गाता है, रोता है, झूमता है और फिर आँसु पोछकर गाँधी को सदा - सर्वादा के लिए काव्य-कलश बनाकर शाश्वत कर देता है । यही गाँधी विचारधारा का सही मूल्यांकन है ।

गाँधी विचारधारा को समझने के लिए गाँधी के सिद्धांतों और व्रतों को समझना आवश्यक है । भवानीप्रसाद मिश्र की कविताओं में दो प्रकार की कविताएँ हमें देखने को मिलती है । एक सिद्धांत परक और दूसरी जीवनी परक ।

सिद्धांत परक काव्य :

गाँधीजी के सिद्धांतों को ध्यान में रखकर जो कविताएँ लिखी गई उसे सिद्धांत परक काव्य कहा जाता है । इन सिद्धांतो में उनके सत्य की खोज, समाज, राजनीति, धर्म, भक्ति, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, अस्वाद, त्याग, अभय, अश्पृश्यता निवारण, सर्वधर्म समभाव, स्वदेशी आदि आते है ।

मिश्रजी ने भी गाँधीजी के इन सिद्धांतों को ध्यान में रखकर कुछ काव्य रचनाएँ कीय हैं । जो इस प्रकार हैं ।

सत्य :

सत्य को गाँधीजी दो रूपों में बाँटा है । एक उसका पारमार्थिकरूप जिसे वे परमेश्वर कहते है तथा दूसरा अपारिमार्थिकरूप जिसके अन्तर्गत सत्याग्रह, सत्याचरण, सत्य, भाषण, सत्य विचार, सत्यकर्म के रूप को व्यवहृत करके वे सत्य के सच्चे पारखी सिद्ध हुए । सत्य का अर्थ सत्य बोलना ही नहीं, सत्य बात के लिए सर्वस्व खोने के लिए तैयार होना भी है ।

हरिश्चंद्र पर जैसी विपत्तियाँ पडी, वैसी विपत्तियों को भोगना और सत्य का पालन करना ही वास्तविक सत्य है । इसके अलावा सत्य व्रज्र के समान कठिन है और कमल के समान कोमल है । 'परमेश्वर सत्य है' कहने के बदले 'सत्य ही परमेश्वर है' यह कहना ज्यादा उचित है ।

''महात्मा गाँधी सत्य से इतने अधिक अभिभूत थे कि वे सत्य के लिए सर्वस्व अर्पण करने की राय देते हैं । उनकी मान्यता है कि सत्य जहाँ ताप पहुँचाता है सूर्य की भ्रांति, वही प्राण का सिंचन भी करता

है । फलतः सत्यान्वेषी को वह परमभक्ति प्राप्त हो जाती है कि वह जो कुछ कह देता है वही सत्य हो जाता है । ऐसा शोधार्थी सत्य की प्रत्यक्ष मूर्ति हो जाता है ।''[२]

कवि सत्य का आग्रही है सत्य के लिए गाँधीजीने अपना जीवन समर्पित कर दिया है । उनकी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' इसका सबसे बडा उदाहरण है । कवि उस सत्य को समझाने की कोशिष करता है । सत्य को वह पहचानता है यह बात कहते हुए कहता है कि –

''यदि कहूँ मोटे तोर से तो कह सकता हूँ
मैंने सत्य को देखा है गौर से
उसका चेहरा क्षत-विक्षत है
वह रात दिन उस पर
स्निग्ध कोई मरहम लगाने में रत हैं ।''[३]

कवि सत्य को स्विकार करता है, लेकिन गाँधी के सत्य को समाजने स्विकारा है ? यह प्रश्न करता है और कहता है कि सत्य भी अब समाज से घबरा रहा है ।

'सत्य' गाँधीजी की प्रतीति करवाता है । उसके शब्दों की पोथी में एक मात्र शब्द 'सत्य' पर उनका पुरा जीवन आधारित है ।

गाँधीजी कहते है कि अपने आप को जान लेना ही सत्य को पहचानना है । प्रत्येक धर्म का यही अंतिम लक्ष्य होता है कि मनुष्य सत्य का साक्षात्कार करे । सोहं या अहं ब्रह्मास्मि जैसे वचन इसी का बोध कराते है । यह साक्षात्कार सत्य की साधना द्वारा ही संभव है ।

ऐसे ही साधक को जग वंदन करता है, जिसके निर्मल व्यक्तित्व से कलुषित वातावरण भी 'पारस-परस कुधातु सुहाई' के समान शुद्ध होता है । मन की इस शुद्धता को मिश्रजी ने सत्य के साथ इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

''हमारे सिपहसालार का मन
हमारा वह सिपहसालार
शस्त्रों का धनी नहीं था
सत्य और प्रेम और करूणा का धनी था ।''[४]

सत्य के लिए कविने गाँधी विचार से प्रभावित विनोबा को लेकर भी लिखा है । कवि संदेश देता हुआ कहता है कि -

''क्यों क्या तुम विनोबा को जानते हो
जिसने गाँधी के बाद
सच की पताका थामी थी ।''[५]

विनोबा जी के अलावा अन्य गाँधी विचारधारा से प्रभावित महानुभव सत्य को क्या मानते थे, इसे कविने अपनी व्यंग्यपूर्ण भाषा में प्रस्तुत करते है, देखिए -

''रविशंकर महाराज को जानते हो,
जिन्होंने नब्बे बरस की उंमर में -
सच को सच कहने का खतरा उठाया था
जानते हो काका कालेलकर को
जो आज भी पूछो सवाल
तो सही जवाब देते है

प्यारेलाल को जानते हो
जो गाँधी के सचिव थे
और डरे नहीं थे शायद
गाँधी की छाया में कभी किसी से
एक और शेर था पहले कृपलानी
जो ठीक दहाड़ता था ।''[६]

इनको 'सत्य' के शेर कहे जाते है । गाँधीजी का सत्य इन लोगों के लिए पथ्थर की लकीर होता था । इस विचार को सबने आगे बढ़ाया है ।

इस प्रकार सत्य को वर कर बैठे गाँधीजी की हर पंथ पर प्रगति निश्चित थी ।

अहिंसा :

गाँधीजी ने अहिंसा को सत्य की खोज का सर्वश्रेष्ठ एवं सीधा मार्ग बताया । अहिंसा को गाँधीजी ने सत्य से कम महत्व नहीं दिया, वे दोनों को एक ही सिक्के के दो पहलू की तरह मानते हैं । वह अहिंसा के लिए कहते है कि –

'सत्य के दर्शन बगैर अहिंसा के हो ही नहीं सकते । इसीलिए कहा गया है कि 'अहिंसा परमो धर्मः ।'

अहिंसा और प्रेम एक ही चीज है ।

मानव–जाति को अहिंसा के द्वारा ही हिंसा से छुटकारा पाना होगा । धृणा को प्रेम से ही जीता जा सकता है । बदले में धृणा करने से धृणा का विस्तार और गहराई दोनों बढ़ते हैं ।

क्या जाने अहिंसा जो
हमारी सबसे अचुक शक्ति थी ।[७]

सत्य की भाँति अहिंसा का भी प्रयोग हमारे धर्म, नीति एवं साहित्यिक क्षेत्र में प्राचीन काल से होता आया है । गाँधीजी ने इसे अपने ही ढंग से निरूपित किया है । इसलिए वह प्राचीन होते हुए भी नवीन है । गाँधीजी ने उसे अपने जीवन की प्रयोगशाला में निरन्तर परीक्षित करते हुए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र हेतु व्यवहारोपयोगी बनाया ।

अहिंसा सत्य का भाव-पक्ष है । अहिंसा का अर्थ केवल हिंसा का अर्थात् द्वेष का अभाव मात्र नहीं है । अहिंसा का अर्थ प्रेम है । अहिंसा की प्राप्ति के लिए आत्मशुद्धि आवश्यक है । स्वार्थ रहित प्रेम क्योंकि वह अपने प्रति होता है इसलिए उसे अहिंसा नहीं कह सकते । स्वार्थ और मोह आदि से सर्वथा मुक्त प्रेम को ही अहिंसा कहते है ।

शांति अहिंसा का दूसरा रूप है । कवि कहते है कि -

''उथल-पुथल फैली है
बाकी कहीं नही है शान्ति
शान्ति खुद तुम हो
जितनी देर तुम हो
उतनी देर समय है
शान्ति है ।''

मिश्रजी अहिंसा को हिंसा का निषेध मात्र नहीं मानते अपितु उसमें सब जीवों के प्रति सद्भाव को अन्र्तनिहित मानते है । अहिंसा की प्रतिष्ठा से वैर भाव का लोप हो जाता है । गाँधीजी पर बौद्ध और जैन

ग्रंथों, रामचरित मानस, मध्ययुगीन संतों की वाणी तथा बाइबल का गहरा प्रभाव था । उनके अहिंसा के सिद्धांत पर भी इन सभी का प्रभाव लक्षित होता है । मिश्रजी शांति और प्रेम को अहिंसा की शाखाएँ मानते है –

"वे शांति भी समझेंगे
जिन्होंने अभी
हमारे खुन को
पानी की तरह
सड़क पर बहा दिया है
हमने शांति के साथ
सच कहने का संकल्प जो लिया है ।"[९]

इस अहिंसा में (अभावात्मक) वैरत्याग, (भावात्मक) चराचर प्रेम और पूर्ण निष्काम भाव सभी का समन्वय है । यह स्वार्थ, मोह, आसक्ति आदि से भिन्न है । गाँधीजी का उपदेश है – " यदि मैं अपने विरोधी को मारू तो वह हिंसा है । सच्चा अहिंसक बनने के लिए मुझे उससे प्रेम करना चाहिए और वह मुझे मारे तो भी उसके लिए प्रार्थना करनी चाहिए ।"[१०] अहिंसा का नियम है कि मर्यादा पर कायम रहना चाहिए, अपमान नहीं करना चाहिए, नम्र होना चाहिए । लेकिन जो आदमी आत्मा से लुला है, पंगु है, अंधा है, वह अहिंसा को समझ नहीं सकता । अहिंसा का पालन कर नहीं सकता । अहिंसा से भरा आदमी मरता है तो उसका नतीजा अच्छा ही होता है । अहिंसा–धर्म किसी का नाश नहीं करेगा, बल्कि शुद्ध करेगा ।

ब्रह्मचर्य :

ब्रह्मचर्य का अर्थ है मन, वचन, कार्य से समस्त इद्रियों का संयम । शारीरिक अंकुश से ब्रह्मचर्य का आरंभ होता है । पर शुद्ध ब्रह्मचर्य में विचार की मलिनता भी न होनी चाहिए । संपूर्ण ब्रह्मचारी को तो स्वप्न में भी विकारी विचार नहीं आते । विषयमात्र का निरोध ही ब्रह्मचर्य है । ब्रह्मचर्य की संकुचित व्याख्या से नुकसान हुआ है । ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म की - सत्य की - शोध में चर्या, अर्थात् तत्संबंधी आचार । जो मनुष्य अपने जीवन को धार्मिक बनाना चाहता है, जो जीव-मात्र की सेवा को आदर्श समझकर संसारयात्रा पार करना चाहता है, उसके लिए ही ब्रह्मचर्य-मर्यादा का विचार किया जा सकता है ।

ब्रह्मचर्य के पालन के लिए रामबाण उपाय तो इस बात का अनुभव होना है कि यह जीव परमात्मा का ही अंश है और परमात्मा का हमारे हृदय में वास है ।

अहिंसा के पालन को लेतों, उसका पूर्णपालन ब्रह्मचर्य के बिना मुमकिन नहीं है । अहिंसा या नी सर्वव्यापी प्रेम, ब्रह्मचर्य के सम्पूर्ण पालन का अर्थ है, ब्रह्मदर्शन । ब्रह्मचर्य का पुरा और ठीक अर्थ तो ब्रह्म की खोज है । कवि गाँधीजी के सिद्धांतो में ब्रह्मचर्य को प्रतीकात्मक रूप में इस प्रकार कहते है -

''जरूरी था
जितने दिनों या बरसों
रहना दुनिया के गर्भाशय में

उतना मैं रह चुका हूँ
सो उस क्षण के लिए ।''[११]

गाँधीजी ने ब्रह्मचर्य पालन के लिए अनेक प्रयोग किए थे । वह अपने संयमित जीवन के लिए एवं अपने तप के कार्यो को आगें बढ़ाने के लिए ब्रह्मचर्य को आवश्यक मानते थे । उनके इन विचारों की तरह जीने की कला को कौन स्वीकारेगा । मिश्रजीने लिखा है कि –

''कहने के बजाय मेरा मन
न कहने की तरफ
ज्यादा सजग है
क्योंकि भरोसा
कौन करेगा
मेरी तरह से जीने का ।''[१२]

गाँधीजी कहते है कि ''किसी को ब्रह्मचर्य पालने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता । वह तो भीतर से पैदा होना चाहिए । ब्रह्मचर्य का पालन भी ब्रह्म को ढूँढने का एक जरिया है । उसके बिना ब्रह्म नहीं मिलता और ब्रह्म के मिले बिना ब्रह्मचर्य का पूरा पालन नहीं हो सकता । लेकिन ब्रह्मचर्य के लिए मन को विकारपूर्ण रहने देकर शरीर को दबाने की कोशिश करना हानिकारक है ।''[१३]

ब्रह्मचर्य का अंतर्ज्ञान इन्द्रियों के सम्पूर्ण संयम के बिना असंभव है । इस प्रकार ब्रह्मचर्य अर्थात् इन्द्रियों का मन, वचन, और कर्म से संयम । गाँधीजी ने विषय को जीतने के सबसे बड़े मंत्र के नियम रूप 'रामनाम' को माना है । जो मनुष्य के मन से विकार को हटाकर उसे एकचित होने

में सहायक होता है और ब्रह्म के नजदिक पहुचाता है जिसके कारण ब्रह्मचर्य व्यक्ति को बोज नहीं लगता और वह इस विषय से भटकता नहीं है ।

अपरिग्रह :

अपरिग्रही बनने में, समभावी होने में हेतु का – हृदय का, परिवर्तन आवश्यक है । यदि सब अपनी आवश्यकतानुसार ही संग्रह करें, तो किसी को तंगी न हो और सब संतोष से रहें ।

हम आदर्श को ध्यान में रखकर नित्य अपने परिग्रह की जांच करते रहें और जैसे बने, वैसे उसे घटाते रहें । सच्ची संस्कृति, सुधार और सभ्यता का लक्षण परिग्रह की वृद्धि नहीं, बल्कि विचार और इच्छापूर्वक उसकी कमी है । अभ्यास द्वारा आदमी अपनी आवश्यकताओं को कम कर सकता है, और जैसे-जैसे कम करता जाता है, वैसे-वैसे वह सुखी और सब तरह आरोग्यवान बनता है । जो मनुष्य अपने दिमाग में निरर्थक विचार ठूंस रखता है, वही परिग्रही है । जो विचार हमें ईश्वर से विमुख रखते है या ईश्वर की ओर नहीं ले जाते, वे इस परिग्रह में शुमार होते है, और इसलिए त्याज्य है ।

अपरिग्रह से मतलब यह है कि हम ऐसी कोई चीज संग्रह न करे जिसकी हमें आज दरकार नहीं है ।

जिस प्रकार अहिंसा के लिए अपरिग्रह आवश्यक है, उसी प्रकार अपरिग्रह के लिए ब्रह्मचर्य को भी गाँधीजी आवश्यक मानते है । साधक की पवित्रता की रक्षा के लिए और प्रलोभनों से बचने के लिए

अपरिग्रह को उन्होंने आवश्यक शर्त माना है । इससे अपरिग्रह का अर्थ हम यह कर सकते है कि 'अपरिग्रह का अर्थ है संयम अथवा इकट्ठा नहीं करना । सत्य का शोधक, अहिंसा का उपासक परिग्रह नहीं करता । परमात्मा परिग्रह नहीं करता । उसे जितनी चीजे चाहिए उतनी वह रोज की रोज पैदा करता है ।

मिश्रजी किसी तीन महत्वकांक्षाओं में पड़कर उसे अपनी जरूरत न होने पर भी रखना और इस स्थिति में गाँधी के अपरिग्रह के सिद्धांत को समझाते हुए कहते हैं कि -

"किसी विषमता का तो किसी क्रुर
एक महत्वाकांक्षा में पड़कर
चाहता हूँ मेरे देश का लगभग वे पढ़ा लिखा आदमी,
मिटाये इस परिस्थिति को बढ़कर
और होगा वह गाँधी को समझने से
उससे हटकर कदापि नहीं होगा कुछ,
जो कुछ होगा सो होगा उसके जाने से ।"[१४]

यदि सब अपनी आवश्यकतानुसार ही संग्रह करे तो किसी को परेशानी या तंगी न होगी । जो चीज-लाखों को नहीं मिलती, उसे लेना नहीं चाहिए । इसी हेतु भारत की गरीबी के प्रतीक रूप में गाँधीजीने कम से कम वस्त्र तथा आहार का उपयोग किया ।

गाँधीजी अपरिग्रह के मूर्तिमान प्रतीक थे । उनके मार्ग पर चलने की पहली सीढ़ी है, अपरिग्रह का पालन ।

''कुसुमादपि कोमल बापू क्यों बज्रादपि कठोर हो
तुमसे चाहे जितनी सही रही हो उनकी बातें
किन्तु तुम्हारा त्याग सोचता हूँ, तो जी धर्रा जाता है
बापू ने तो कुछ छोड़ा कितना सत्व-समझकर छोड़ा
तुमने तो बस छोड़ दिया इसलिए कि बापूने छोड़ा है ।''[१५]

अभय :

अभय ईश्वर के प्रति असीम निष्ठा से आता है, जिससे आत्मशुद्धि संभव होती है और आतमशुद्धि से आत्म-साक्षात्कार तथा आत्मसाक्षात्कार से अभय । 'हिन्द स्वराज' में गाँधीजी ने कहा है कि - ''हम ईश्वर से डरे तो हम मनुष्य से निर्भय हो जाएँगे ।''[१६] लेकिन भय-मात्र से तो वही मुक्त हो सकता है, जिसे आत्म-साक्षात्कार हुआ हो । अभय अपूर्णव स्थिति की पराकाष्ठा - हद - है । लोगों के लिए सच्चा रास्ता तो उनके डर को भगाना है ।

अभयता का अर्थ समस्त बाहरी भयों से स्वाधीनता है, जैसे रोगों का भय, शारीरिक चोट या मृत्यु का भय, अपने अत्यंत प्रियों अथवा निकटवर्तीयों को खोनें का भय, ख्याति-नाश का भय, या अप्रसन्न करने का भय आदि । जब हम धन, कुटुंब तथा शरीर के मोह को त्याग देते है, तब हमारे हृदयों में भय का कोई स्थान नहीं रहता हम अभय बन जाते हैं ।

अभय के बिना कोई ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता । अभय के बिना सत्य की शोध नहीं हो सकती । अभय के बिना अहिंसा का पालन कभी हो सकता है ? 'मंगल-प्रभात' किताब में गाँधीजी ने कहा है कि -

"હરિ નો મારગ છે શૂરાનો
નહીં કાયરનું કામ જોને"[१७]

अभय यानी बाह्य सभी भयों से मुक्ति एक केवल मौत के भय को जीत लिया तो मानों सबको जीत लिया । गाँधीजी के अभय वचनों के बारे में मिश्रजी कहते है कि –

"बचपन में ही तप कर लिया था हमने
गाँधी की अगवानी में
भय को विलय कर दिया था हमने
फुक मारकर हवा में ।"[१८]

कवि गाँधी विचारधारा पर चलता हुए गाँधी मार्ग के मुताबिक किसान का साथ देते हुए उनके डर को निकालता है ओर कहता है कि–

"संधर्ष जो चल रहा है वह सपने के संघर्ष से भी
ज्यादा असमान है,
किसानों के हाथों में लाठिया तो थी
सोचता हूँ ऐसे और इतने असमान
संघर्ष की इजाजत तो
बापू से भी मिल जाती है ।"[१९]

साथ ही मिश्रजी बापू के सामने अपनी लड़ने की ताकत माँगते हुए भी दिखाई देते है, वह इस संग्राम में अहिंसा के साथ सत्य को रखकर, अभय रूप से आगे बढ़ने के लिए वचन माँगते है –

''वैसी सुधा,
वैसा प्राणमय स्वर,
और वह आकाश-मय
विश्वास-वाणी, यह अभय वर ।''[२०]

कवि कहता है कि अस्त्र, शस्त्र की जरूरत हमें नहीं है । हमारे पुण्यपावन प्रेम, अहिंसा, सत्य है, हमारे लिए युद्ध नहीं, सत्याग्रह है । करूणा के ही सहमारे हम निर्भय है । हमारे लिए वही सही है । देखिए -

''स्नेह - सावन
ये अजस्त्र-सहस्त्र-धारावृत्त
हमारे पुण्य पावन,
बहे बरसे जहाँ दुनियाँ कों
जरूरत हुई उनकी,
भेद माने बिना विधि की,
भाँति करूण चुई उनकी ।''[२१]

कवि भारतवर्ष के गौरव को अपने काव्यों में स्थान देते हुए गाँधीजी के सिद्धांत पर चलते हुए प्रजा में निर्भयता लाने के लिए कहता है कि-

''एक वक्त हम
चुप्पी को स्वरों में
तोड़ते थे
सन्नाटे को
संगीत से जोड़ते थे ।''[२२]

गाँधीजी अभय को दैवी सम्पतियों में पहला स्थान प्राप्त करने योग्य गुण मानते थे । वे सयम के चक्र में निर्भय होकर आगे बढ़नेवालो में से थे । बापू के अभय वचन सुनकर भारत देश के लोग निर्भय होकर सत्याग्रह में जुड़ गए थे ।

स्वदेशी :

अंग्रेजो ने भारतीयों को सब के गुलाम बनाने हेतु अपनी सारी जीवनशैली हम पर थोपी । भाषा, वेशभूषा, साहित्य जैसे सारे पहलू अंग्रेजी दासा के प्रतीक बन गए ।

गाँधीजी के चिंतन के उपर कहे तो – जैसे हम बेहतर हवा–पानी वाले देश के लिए अपने देश को छोड़ा नहीं सकते । प्रत्येक देश की प्रगति के नियमों का अभ्यास है कि वहां के रहनेवाले अपने यहाँ की ही पैदावार और माल को ज्यादा अपनाते है । इसके साथ ही स्वदेशी का सच्चा भक्त विदेशियों के लिए अपने मन में कभी दुर्भाव नहीं रखेगा ।

स्वदेशी यानी कि जो चीजें अपने देश में होती हो या कम महेनत से आसानी से प्राप्त हो सकती हो, उन चीजों को परदेश से नहीं लानी या मंगवानी चाहिए । अपने देश की हमारे द्वारा बनायी गयी चीजों का इस्तेमाल करना ही स्वदेशी है ।

गाँधीजी ने जब भारतीय राजनीति में प्रवेश किया उसके पूर्व से स्वदेशी आंदोलन चल रहा था । गाँधीजी की सोच थी कि 'स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावहः ।' इन्ही भावनाओं से वशीभूत होकर मिश्रजीने लिखा है –

''ओ
सफेद जलधाराओं की बहनों
खून रंगे चीर मत पहनों
मैंने
तुम्हारी स्वच्छता के कारण
सागर-संगम तक
तुम्हारे साथ बहना तय किया था ।
खुन रंगे चीर
मत पहनों ।''[२३]

स्वदेशी के लिए आम-आदमी सत्याग्रह आंदोलन में जो भावना रखता था, उसका चित्रण कवि ने स्वदेशी भाव को चित्रित-करते हुए एक काव्य में अंग्रेजों के विदेशी वस्त्रों का विरोध करती हुई एक औरत कहती है कि -

''मैने लाशे खादी के कफन में
ढांकी है
मैं भी तो आखिर
समझती हूँ मरे हुए लोगों की भावना
करती आयी हूँ हंमेशा
खादी का उपयोग बचपन से
जा ओ कह आ ओ यह बात ।''[२४]

अछूतोंद्धार :

अछूतोद्धार को गाँधीजी ने अपने सिद्धांतों में महत्त्वपूर्ण एवं आज के समय में सबसे आवश्यक माना है । 'मंगल प्रभात' में अछूतोद्धार के लिए 'आभड़छेट' शब्द का प्रयोग किया गया है । कवि के अनुसार जीव-मात्र के साथ का भेद मिटाना ही अस्पृश्यता - निवारण है । कोई भी जन्म से अछूत नहीं हो सकता, क्योंकि सभी उस एक आग की चिनगारियाँ है । कुछ मनुष्यों को जन्म से ही अस्पृश्य समझना गलत है । अस्पृश्यता ऐसा पाप है कि वह समाज की सारी रचना में जहर भरता है । इसलिए उसे मिटा डालना चाहिए ।

इस प्रकार के दर्शन को जानने के बाद मेरा मानना है कि - अस्पृश्यता निवारण करनेवाला व्यक्ति निम्न जाति के लोगों को अपनाकर ही संतोष नहीं मानेगा.... वरन जबतक जीव-मात्र को अपने में नहीं देखता और अपने को जीव-मात्र में नहीं होम देता, तब तक वह शांत होगा ही नहीं । अस्पृश्यता मिटाने का मतलब है जगत-मात्र के साथ मैत्री रखना, उसका सेवक बनना । मंदिर-प्रवेश जैसी आज भी दिखया देनेवाली समस्या को मिटाना अस्पृश्यता - निवारण का आवश्यक अंग है ।

भारत में कुछ जातियों को प्राचीनकाल से 'अछूत' कहकर उससे कुछ निश्चित दूरी रखी जाती रही हैं । प्राचीनकाल में इस वर्ग को शुद्ध के नाम से पहचाना जाता था । बाद में आधुनिक समय में 'अछूत', 'दलित' आदि शब्दों से पहचाना जाने लगा है । इनको मंदिर में आने की अनुमति नहीं होती, पाठशाला में बच्चों से दूर बाहर बैठकर अछूत

बच्चा पढता था, गाँव के कुएँ से पानी नहीं पी सकते थे, आदि कुरीतियों के कारण इस वर्ग की हालत दयनीय हो गयी थी समाज में इस वर्ग का कोई स्थान नहीं था ।

उस समय गाँधीजी ने इस का विरोध किया । गाँधीजी ने उन्हें 'हरिजन' नाम से विभूषित किया, उनके साथ रहे । इस प्रकार समाज के विरोध के बीच उन्होंने समाज सुधार का यह कार्य किया । गाँधीजी ने कहा था कि 'भंगी या अस्पृश्य' कहे जानेवाले उसी प्रकार आदर के पात्र है, जिस प्रकार बचपन में मल-मूत्र उठाने और धोनेवाली माता ।'

गाँधीजी के इस व्रत को मिश्रजी ने अपनी 'गाँधी पंचशती' में इस प्रकार व्यक्त किया है -

''क्योंकि एकता सधे हिन्द में तो न मने उनकी दीवाली
दाँव खेलना चाह रही है वे कुछ ऐसा ।
और न होने पाए ऐसा यह व्रत लेकर
गाँधीजी उपवास शुरू कर रहे आज से ।''[२५]

इस वर्ग के उद्धार के लिए किसी सेना या किसी ताकत की जरूरत नहीं है । कवि के अनुसार सबको समानरूप से देख कर इस भेद को मिटाना आवश्यक है ।

मिश्रजी गाँधी के इस सिद्धांत को व्यक्त करते हुए कहते है -

''गाँधीजी के पास नहीं है, कोई सेना शस्त्र सज्ज
ताकत है मन की

उनके पीछे तोप और तलवार नहीं ताकत
जन.... जन.... की
छूत-अछूत का भेद मिटे तो गाँधी को ऐसी आशा है
दुनिया के तमाम भेंदों की जड़े हिलेंगी
यह बसन्त की ऋतु यदि फैली
तो सारी दुनिया में समता के फूलों की फसल खिंलेंगी ।''[२६]

आज जो समस्या काले-गोरें लोगों की है यही बात गरीब और धनिक के बीच में भी देखने को मिलती है । वास्तव में अछूतों के लिए भी सारे भेद-भावों को मिटाना ही गाँधीजी का स्वप्न था । इसी से वे एक रामराज्य की स्थापना करना चाहते थे । उनकी कल्पना इसी प्रकार की थी ।

मिश्री ने उक्त विचार को इस प्रकार से प्रस्तुत किया है -

''यह अछूत, वह काला गोरा
यह हिन्दु वह मुसलमान है
वह मजदूर और में धनपति
यह निर्गुण वह गुणनिधान है
ऐसे सारे भेद मिटेगे जिस दिन अपने
सफल उसी दिन होगें गाँधीजी के सपने ।''[२७]

सर्वधर्म समभाव :

भारत देश में सबसे पहले किसी की बात मानी जाती हो तो वह धर्म है । धर्म के लिए व्यक्ति अपना सब कुछ दाँव पर लगा देता है ।

अपना धर्म ही महान है इस बात की प्रतीति हर धर्म में होती है । १६वीं शताब्दी में अकबर ने 'दिने-ए-इलाही' धर्म की स्थापना करके समान धर्म की परिकल्पना करने की कोशिश की थी । गाँधीजी ने सभी धर्मो को महत्व दिया है । किसी एक धर्म को महान मानने से तो मानवता समाप्त हो जायेगी । यह बात गाँधीजी जानते थे । इसलिए वे मानवता को धर्म से बड़ा सब से बड़ा धर्म मानते थे । इन्सान का सबसे बड़ा धर्म मानते थे । इन्सान का सब से बड़ा धर्म मानवता ही है ।

सब धर्मों के प्रति समभाव से देखने पर हम दूसरे धर्मो के प्रत्येक स्वीकार करने योग्य तत्व का अपने धर्म में समन्वय करने में कभी संकोच नहीं रखेगें, बल्कि ऐसा करना अपना धर्म समझेगे । जिस प्रकार किसी वृक्ष की जड़ एक होती है परंतु शाखाएं और पत्ते अनेक होते है, उसी प्रकार सच्चा और पूर्ण धर्म तो एक ही है, परंतु जब वह मानव के माध्यम से व्यक्त होता है तब अनेक रूप ग्रहण कर लेता है । जब हम सब धर्मो को समान दृष्टि से देखेगें, तब हमें अपने धर्म में दूसरे धर्मो की सभी ग्राह्य बातें अपनाने में न केवल कोई संकोच ही होगा, बल्कि हम उसे अपना फर्ज समझेगें । धर्म का अर्थ है अलग-अलग नामों से पहचाने जानेवाले सब धर्मो का एक साथ संकलन करनेवाला और उन्हें एकरूप देखनेवाला परम-धर्म । जैसे हम अपने धर्म को आदर देते है, ऐसे ही दूसरे धर्म को दे, मात्र सहिष्णुता पर्याप्त नहीं है । अहिंसा हमें दूसरे धर्मो के प्रति समभाव सिखाती है । सब धर्मो के प्रति समभाव प्राप्त होने पर ही हमारे दिव्य चक्षु खुल सकते है । इसके अलावा अहिंसा हमें यह सिखाती है कि हम दूसरों के धर्म का उतना ही आदर करें, जितना अपने धर्म का करते है । सभी मजहब अच्छे हैं । विश्वास

रखें की जितने भी धर्म है, सब के सब ऊँचे है । धर्म में कसर नहीं है । कसर है तो उनके आदमियों में है । सब धर्मो की जड़ में एक ईश्वर का नाम है । सब के धर्म शास्त्र एक-सी बात कहते है ।

मिश्रजी ने गाँधीजी के सर्वधर्म समभाव की भावनाओं को बखुबी प्रस्तुत किया है ।

> ''आदमी का आदमी से भेद
> आधार चाहे जाति हो या वर्ग हो या रंग हो
> धर्म हो या देश हो या सोचने का ढंग हो
> तुम को नहीं है सह्य !
> सृष्टि में तुम आदमी तो आदमी ।''[२४]

भारत में अंग्रेजोंने जाते जाते भी हिन्दु-मुसलमानों के बीच धार्मिक वैमनस्य फैलाकर उनमें आजीवन फुट डाल दी, जिससे आये दिन कोमी दंगे होते रहते है, लेकिन गाँधीजी इस बात को समजते थे । उन्होंने कोमी एकता के लिए सर्वधर्म समभाव की बात रखी । जिससे दो धर्मो का टकराव न हो और सब एकता से रहे । मिश्रजी ने गाँधीजी के इस विचार को इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

> ''हिन्दु और मुसलमान मिलकर खड़े रहे
> तो यह देश अपना सिद्ध यह करेगा जग में
> बिना रक्तपात किये होते है पूरा कैसे
> समता का स्वतंत्रता का बन्धुता का सपना ।''[२९]

जात महेनत :

जात महेनत से तात्पर्य अपना काम खुद करना, श्रम और अपनी महेनत से रोजी-रोटी कमा कर खाना । जात महेनत या श्रम से शरीर स्वास्थ्य एवं मन की शांति प्राप्त होती है । मनुष्य मात्र के लिए शारीरिक श्रम अनिवार्य है । रोटी के लिए प्रत्येक मनुष्य को मजदूरी याने महेनत करनी चाहिए । शरीर से महेनत करनी चाहिए, यह ईश्वरीय नियम है । जो श्रम नहीं करता, उसे खाने का भी अधिकार नहीं है । जिसे अहिंसा का पालन करना है, सत्य की आराधना करनी है, ब्रह्मचर्य को स्वाभाविक बनाना है, उसके लिए तो श्रम रामबाण का काम देता है । क्षण-भर के विचार से प्रकट हो जायगा कि श्रमिक के पास वह पूंजी है, जो पूंजीपति के पास कभी नहीं हो सकती । अगर पूंजी ताकत है तो श्रम भी ताकत है । दोनों ही ताकतों का विनाश या रचना के लिए उपयोग किया जा सकता है । दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं । वास्तवमें श्रमिक जो पैदा करता है उसका वही मालिक है । अगर महेनत या श्रम करनेवाले बुद्धिपूर्वक एक हो जाये तो उनकी ताकत का कोई मुकाबला नहीं कर सकता । जो आदमी सब लोगों के सामान्य कल्याण के लिए परिश्रम करता है, वह जरूर समाज की ही सेवा करता है और उसकी आवश्यकताएँ पूरी होनी ही चाहिए । शरीर श्रम के नियम का स्वैच्छापूर्वक पालन करने से संतोष और स्वास्थ्य मिलता है ।

इसके साथ जो आदमी अपनी जीविका ईमानदारी से कमाना चाहता है, वह किसी भी श्रम को छोटा, यानी अपनी प्रतिष्ठा को घटाने वाला, नहीं मानेगा । महत्व की बात यह है कि भगवान ने हमें जो हाथ-पाँव दिये है हम उनका उपयोग करने के लिए तैयार रहें । जो कुछ करें, सुव्यवस्थित करें या फिर न करें । इसका प्रत्यक्ष दर्शन नित्य होता है । प्रत्येक मनुष्य का यह धर्म

है कि वह अपना काम किये बिना खाना न खाय । जो लोग अपने उद्धार के लिए स्वयं सचाई से महेनत करते है, उन्हें ईश्वर अवश्य सहायता करता है । श्रम के बारे में गाँधीजी कहते है कि – ''पोषण के लिए जितना चाहिए उससे ज्यादा जो खाता है, वह चोरी करता है, क्योंकि इन्सान गुजारे के लायक श्रम भी मुश्किल से ही करता है । इन्सान को गुजारे से अधिक लेने का हक नहीं है । और जो महेनत करते है, उन सबको उतना ही लेने का अधिकार है, जितने से शरीर कायम रहे । विचारपूर्वक किया हुआ श्रम उच्च–से–उच्च प्रकार की समाज सेवा है । अगर हर एक आदमी अपने पसीने की कमाई पर रहे, तो यह दुनिया स्वर्ग बन जाय ।''[३०]

गाँधीजी इस सिद्धांत में अपने विचार रखते हुए अपना कार्य अने देश के लिए, समाज के लिए, परिवार के लिए आदर्श बनते है । इससे सबको प्रेरणा मिलती है । समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी महेनत से कमाकर खाना चाहिए । इससे सभी को फायदा होता है । महेनत न करने वाला भुखा मरता है, और धनवान भी महेनत न करे तो एक दिन भिखारी बन जाता है । गाँधीजी के इस विचार को प्रस्तुत करते हुए मिश्रजी लिखते है कि –

''चाहे जिती कविता लिखना जाने
चाहे जितना चटकीला रंग बखेरे
मगर पसीना न बहाये
तो ऐसा हो जाये
कि वह आदमी या औरत
कम से कम
खाने को कुछ न पाये ।''[३१]

व्यक्तिपरक काव्य :

व्यक्तिपरक काव्य से तात्पर्य उस काव्य प्रकार से है, जिसमें व्यक्ति की प्रशस्ति अथवा उसका गुणगान हुआ हो । कवियों ने ऐसे अनेक प्रबंधकाव्यों की रचना की है, जिसमें उन्होंने गाँधीजी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनकी प्रशस्ति की अथवा उन्हें अपने काव्य का विषय बनाया, लेकिन भवानी प्रसाद मिश्रजीने एकाद काव्य लिखकर संतोष नहीं माना, उन्होंने तो हर काव्य में कहीं ना कहीं गांधीजी को स्थान दिया है । इतना ही नही परंतु गाँधीजी के उपर 'गाँधी पंचशती' नाम से एक पूरा काव्य संग्रह लिख दिया है । जिसमें गाँधीजी के व्यक्ति से प्रभावित अनेक कविताएँ मिलती है ।

गाँधी विचारधारा से प्रभावित होकर अपने जीवन को देखने वाले भवानीप्रसाद मिश्रने जीवन के भौतिक मूल्यों के प्रति विद्रोही दृष्टि रखी है । मानवतावाद के प्रति उन्मुख होते हुए, गाँधीजी की तरह साम्यवादी विचार और पूरे समाज को धर्म, जाति, ऊँच-नीच, वर्ग-वर्ण के भेदभाव आदि से उपर उठाने की प्रवृति का प्रभाव कवि मन पर और उनके काव्यों में देखने को मिलता है । कवि गाँधीजी के जीवन से उत्तम विचारों को लेकर ऐसा समाज निर्मित करना चाहते है, जिसमें कोई छोटा-बड़ा, ऊँचा-नीचा हो ।

गाँधीवादी विचारों से प्रेरित होकर मिश्रजी काव्य में मानव मूल्यों की स्थापना करते हुए एवं अपने कार्य का प्रारंभ करने से पहले गाँधीजी का नाम लेना पसंद करते है देखिए -

''शुरू कर रहा हूँ
जितना बन सकता है, मुझ से छोटा एक काम
लेकर समूची परम्परा में
अब तक के सबसे सीधे-सादे निर्भय
और स्नेही आदमी गाँधी का नाम ।''[३२]

मिश्रजीने गाँधीजी से प्रभावित होकर उनका गुण-गान अपने काव्यों में गाया है । 'गाँधी पंचशती' में 'स्तवन' काव्य में कविने गाँधीजी को मंगलकारी, दीनबन्धु, करूणा के सागर आदि उपनामो से नवाजा हैं । कवि गाँधीजी को भारत माँ का सच्चा बेटा बताते है, उनके कारण ही भारत का नाम आज सब गर्व से ले रहे है । कवि गाँधीजी के चरणों में रहना चाहते हैं, उनका भक्त बनकर आजीवन सेवा करना चाहता है देखिए -

''मंगलकारी दीनबन्धु करूणा के सागर
लोकोपकार व्रती जागृति के सूर्य उजागर
पुजनीय है गुण गौरव की विमल पताका
तुम से उज्जवल हुआ प्रथित यश भारत माँ का
सत्य, अहिंसा, कवच और कुंडलधारी है
दिनबन्धु करूणासागर मंगलकारी है
हम नत मस्तक प्रणत विनत नितचरण कमल में
हमे प्रतिष्ठत करों शक्ति सम्पन्न सरल में ।''[३३]

कवि गाँधीजी के दर्शन पाकर अपने आप को भाग्यशाली समझता है । गाँधीजी का देह - लालित्य कवि को इतना प्रभावशाली लगता है कि वह उनहें बहुत बड़ा ताकतवर इन्सान समझते है । उनके काव्य 'दर्शन' में गाँधीजी का वर्णन इस प्रकार किया है -

"देह तुम्हारी क्षीण किन्तु बलहीन नहीं हो
तुमसे आत्मा लब्ध हुई तुम दीन नहीं हो
साधारण सा रूप किन्तु दीपित भी ऐसी
इन आँखों को किसी देह में दिखी न जैसी ।"[३४]

कवि ने गाँधीजी के साधारण से देह में कितना बल देखा, सत्य, अहिंसा, कर्तव्य निष्ठा, बल, सच्चे व्यक्ति का बल । बलहिन भारत की जनता को चेतना में लाने के लिए उसे स्वाधानिता दिलाने के लिए उन्हें हिंमत से साथ रखने का बल और अंग्रेजों के सामने हार न मानने की शक्ति साबित करने का बल इस दुबले - पतले से शरीर में कवि को यह सब अभिभूत कर देता है । उनका देह शिथील नहीं कर्मनिष्ठ था । उनकी आत्मा हंमेशा दूसरों के बारे में सोचती रहती थी, वह साधारण जीवन सादगी के साथ जीते थे, सामान्य मानव दिखते थे, लेकिन वह दीन नहीं थे । इस बात को कविने अपने काव्य रूप शब्दों में सरलरूप से रखा है । गाँधीजी की आँखों में जितना तेज कवि को दिखाई देता था, वैसा तेज उन्होंने और किसी की आँखों में नहीं देखा ।

गाँधीजी से पुरा भारत देश प्रभावित था, उसका वर्णन करते हुए कविने कहा है, गाँधीजी की पलके उठती है तो पूरा देश उनके सामने आदर से देख रहा है और अंग्रेज सरकार झुकी नजर आती है । उनकी ऊँगली उठती है तो कवि को ऐसा लगता है जैसे पुरा जन जीवन, प्रकृति, वायु सब रूक गया है देखिए -

"पलके उठती है तो लगता है कि झुका सब
ऊँगली उठती है तो लगता है कि रूका सब
तुम्हें देखकर लगता है भारत को देखा ।"[३५]

मिश्रजी कहते है कि गाँधीजी को देख लेने से ऐसा लगता है जैसे पूरे भारत को देख लिया, सर्वजन समुदाय का प्रतिनिधि एवं सामान्य व्यक्ति का प्रतीक गाँधीजी बन गये है । गाँधीजी के इस सामान्य जन के प्रति लगाव गाँवों के बारे में सोचने और पिछड़े हुए ईन्सान को साथ लेकर समाज में जागृति का कार्य देखकर ही कवि कहता है कि तुम्हे देखकर लगता है भारतवर्ष को देख लिया है ।

गाँधीजी के मस्तक पर कवि को आजादी की लकीरें दिखाई देने लगी थी, उनके वचन सुनकर उनमें जैसे नये भारत का निर्माण हो रहा हो, उनमें नवनिर्माण का संकल्प दिखाई देता है । गाँधीजी के शब्दों में भारत की तस्वीर और स्वतंत्रता की झलक दिखाई देने लगी है -

''आजादी की अंकित है मस्तक पर रेखा
ओठ खोलते हो हल्के जो बोल निकलते
जैसे किसी अनामत के माहौल निकलते ।''[३६]

कविने 'नियति का इंगित' कविता में गाँधीजी का वर्णन करते हुए उन्हें नंगा फकीर, दु:खीयों के प्रभु कहा है । कवि भारत देश के सामान्य व्यक्ति को कहता है कि इनके दर्शन पाकर हम लोग धन्य हो गये है, उनका सानिध्य पाकर हम सौभाग्यशाली बन गए है । कवि कहता है कि कभी प्रभु खुद आकर दर्शन देते है हम सब बड़े भाग्यशाली है कि हमारे हरेक के घर पर आकर प्रभु गाँधीने अपने पावन चरणों से हमें पावन किया है देखिए -

''यह विड़म्बना, चढ़ा एक नंगा फकीर
भारत के राजा की डयोढ़ी पर

यह विड़म्बना नहीं भाग्य है समझो इसको
खुद आकर दर्शन देते है प्रभु किस-किसो
गाँधी प्रभु का रूप तुम्हारे द्वारा पहुँचा
यह सौभाग्य अनुप भूप इसको पहिचानों
यह विडम्बना नहीं नियति का इसकी कोई इंगित मानों ।''[३७]

अन्य कवि जहाँ गाँधीजी की तुलना विविध देवों से करते है, वहाँ मिश्रजीने गाँधीजी को धरती माता के प्रति समर्पित भाव रखनेवाले, सीता के पिता मिथिला नरेश जनक से की है । मिश्रजी को आश्चर्य हो रहा है कि यह व्यक्ति कोई मानव है या भगवान खुद फिर से जन्म लेकर इस धरती पर धुम रहा है । उनको लगता है कि जैसे सतयुग में प्रभु जनक के कष्ट को दूर करने के लिए आये थे । उसी प्रकार आज के दु:खी मानव के आँसू पोंछने गाँधीजी के रूप में अवतार लिया है कवि कहते है कि –

''गाँधी मानव है या फिर से धूम रहे है
प्रभु इस भू पर
जिस पर वे पहुँचे थे पहिले भी
अति करूणाग्रस्त घड़ी में
जनक सरीअे समभावी
की ग्लानि पोछने ।''[३८]

गाँधीजी विकट परिस्थिति में भी निर्भयता से शांति स्थापित करने का कार्य करते रहे हैं । जिस परिस्थिति में भगवान गौतम भी शायद वहाँ टिक नहीं सकते । ऐसे में बिहार की हिंसा में गाँधीजी ने निर्भयता

से कार्य किया है, जिसे कवि निम्नरूप से शब्दबद्ध करते हुये कहता है कि –

''इस विभीषिका में बिहार की
गौतम भी शायद हिल जाते
गाँधी किन्तु अभय मुद्रा में
धुम रहे है शान्ति बँधाते ।''[३९]

मिश्रजी आगे कहते हैं कि गाँधीजी के चरण जिस पथ पर पड़े वहाँ उन पिछड़े हुए लोगों में जागृति और अंधश्रद्धा के धेरों से निकालने का सबसे कठिन कार्य कर रहे है । मौन रहकर भी गाँधीजी सभी मनुष्यों को शक्ति प्रदान करते है, उस पंथ पर चलने के लिए हर कोई तुम्हारा दिवाना हो रहा है । सब पर गाँधीजी की धून सवार है । सब अपना कार्य मौन रहकर भी कर रहे है ।

''शून्य पंथ पर तुम चरण के चिन्ह
अंकित कर रहे हो
मौन साधे तुम जगत के
प्राण शक्ति कर रहे हो
शब्द जिसका गुण तुम्हारी
धुन उसके पागल किए है
वह तुम्हारा मौन छाती से
लगाये मुँह सिए है ।''[४१]

इस कविता की तुलना गुजराती साहित्य के अमर साहित्यकार श्री 'झवेरचंद मेधाणी' की कविता 'छेल्लो कटोरो' से की जा सकती है ।

गोलमेजी परिषद में जाने के समय लिखी गई इस कविता में गाँधी के चरित्र का चित्रण हुआ है । इसी प्रकार 'अकेले तुम' काव्य में कवि ने गाँधी के चरित्र का वर्णन किया हैं ।

'महामानव' कविता में मिश्रजी ने गाँधीजी को महामानव देवता कहा है । उस समय गाँधीजी की प्रतिभा सामान्य आदमी से एक नायक के रूप में उभर कर, युग पुरूष बनने जा रही थी । उस वक्त भारत का सबसे अधिक कष्टपूर्ण दौर था । बेरोजगारी, गरीबी, छुआ-छूत, ऊँच-नीच, अंधश्रध्धा से समाज धिरा हुआ था । गाँवों के गाँव महामारी एवं बिमारियों से उभर रहे थे । तब गाँधीजी ने बेकारी के लिए चरखा, खादी एवं जनजागृति से रोगमुक्त होने का मार्ग दिखाया था । कवि कहते है -

''तुम्हें देवता कहे तो तुमने
पल-पल पर संघर्ष किया जो मानव बनने का अपने
अहो रात्रि जागृत प्राणों से
क्रिया-राशि को सहज समान्वित
करके ढाले है, जो सपने
द्वार-द्वार पर अलख जगाया है जो तुमने
अगेरू जलाया है तुमने जो गली-गली में
फिर से बुझी-बुझी आँखों में जोत भरी है
यह जो गाँव-गाँव में फिर से
गुंजित हुआ सुदर्शन चरखा
यह जो इन्कलाब की वाणी से मुखरित
उपत्यका दरी है ।''[४२]

गाँधीजी को कविने महामानव तो कहा है साथ में यह भी कहा है कि देवताओं से भी तुम उपर उठे हुए हो । देवताओं में वचन देने की शक्ति होती है । वह भी एक ही चीज दे सकते है, लेकिन तुमने तो इतना सारा दिया है कि तुम्हे देवाधिदेव कहना भी कम है -

''तुम कोई देवता नहीं हो
शक्ति नहीं होती देवों में
एक साथ इतना देने की ।''[४३]

मिश्रजी ने 'बीज का विकास' कविता में गाँधीजी के बचपन को लेकर लेखनी चलाई है साथ में गाँधीजी के स्वभाव और व्यक्तितत्व विकास के बारे में लिखा है । कवि को वह सीधा-सादा व्यक्ति, संकोचशील, धरवालों और शिक्षकों ने कभी सोचा भी नहीं था कि यह बच्चा एक दिन पूरे विश्‍व पर छा जायेगा । पूरा विश्‍व उसके दिखाये हुए रास्ते पर चलने के लिए विवश हो जायेगा । इसीलिए तो महान फिलोसोफर और तत्वज्ञानी 'सोक्रेटिस' को भी कहना पड़ता था कि आज से सौ साल बाद कोई विश्‍वास नहीं करेगा कि ''एक हाड, माँस का बना हुआ ऐसा व्यक्ति इस धरती पर जन्मा था, धुमा था ।'' अर्थात् इसे आनेवाली पिढ़या भगवान ही समझेगी । कवि भी गाँधी के बारे में कहते है कि 'तुमने कभी अपने बारे में नहीं सोचा, दूसरों के लिए जीते रहे । बड़ेपन, महात्मा का कोई गर्व नहीं किया । इसलिए सभी बड़े आदमियों से अलग और सामान्यजन के नजदीक रहते हो ।' कवि कहते है -

''कभी न सोचा तुमने अपने बारे में
कुछ अलग तरह से ऐसा वैसा

इसी लिए तुम आज सभी के इतने अधिक
निकट लगते हो,
जितना निकट आज तक कोई बड़ा आदमी
नहीं लगा छोटे के मन में''[४५]

मिश्रजी गाँधीजी की प्रशस्ति में कहते है कि रूप जैसा आज हम सब लोग देख रहे है उसका विकास अरूप बीज के विकास जैसा है जैसे एक बीज को जमीन में बोने के बाद पौंधा बनता है और बाद में पेड़ और एक दिन वह वटवृक्ष बन जाता है, उसी तरह गाँधी का व्यक्तित्व भी ऐसे ही विकसित हुआ है । मिश्रजी को गाँधीजी का हास्य शिशु के हास्य जैसा सरल लगता है और बाते बालक की बातों की तरह तरल लगती है देखिए –

''और तुम्हारा रूप आज है जैसा जो कुछ
उसी अलक्ष्य अरूप बीज का यह विकास है
हास तुम्हारा शिशु के जैसा सरल
वचन तुम्हारे शिशु के जैसे तरल ।''[४६]

गाँधीजी ने तर्कशील एकाग्र मन, साधन कर्तव्यनिष्ठ के आदि ऐसे गुणों के सहारे अंग्रेजों को भगाया । भारत के जनजीवन में डरे हुए पिछड़े हुए और बलहीन इन्सानों में चेतना डाली उन माटी के पुतलों जैसे बेजान मानवों को ताकतवर बनाया और उन ताकतवर शेरों को हराया । यह काम गाँधीजी के उन सभी सिद्धांतों और गुणों का आभारी है । यह कोई हिंसा और युद्ध–लडाई से नहीं कर सकता था । जो इस लाठीधारी अर्धनग्न फकीर ने कर दिखाया है कहते है कि –

"तर्कशुद्ध, एकाग्र, सधन कर्तव्यनिष्ठ
कष्टों के आदि
तुमनें जैसे खेल–खेल में धर दी
द्वार पर आजादी
माटी के पुतलों को तुमने शेर कर दिया
बड़े–बडे शेरों को तुमने ढेर कर दिया ।"[४७]

कवि मिश्रजी गाँधीजी को अपना आदर्श मानते थे, उन्होंने गाँधीजी को अपने काव्यों में ही नहीं, किन्तु अपने जीवन निर्वाह में भी स्थान दिया है । इस बात को मिश्रजीने काव्यसंग्रह चक्ति है दुःख में व्यक्त करते हुए कहा है –

"गीत–गान में संचित मेरे पास
तुम्हारा ह्रास
तुम्हारे वचन तुम्हारी दृष्टि
तुम्हारा स्नेह तुम्हारी सृष्टि
और में इस संचय के बल
हंमेशा विकल ।"[४८]

गाँधीजी की साधना और भक्ति को अपनी साधना और भक्ति मानते हुए कवि मिश्रजी ने स्वप्न में भी गाँधी भक्ति को स्थान दिया है । कवि को गाँधी की भक्ति के अलावा इस जीवन में और कोई ऐश्वर्य नहीं चाहिए । इस बात को कहते हुए कवि लिखते है –

"स्वप्न में देखा कि तुम आये
वही था रूप परिचित शान्त सुन्दर दिव्य
वह प्रशस्त ललाट भारत के तपोवन ऋषि सरोखा ।

x x x x x

आकाश वाणी–सी तुम्हारी गिरा गूंजी
वत्स वर माँगो
और केवल कह सका मैं भक्ति गाँधी की ।''[४९]

गाँधीजी का अहिंसात्मक और सत्य का रास्ता इतना सशक्त था कि उसमें बिना हथियार उठाए ही प्रलय की क्षमता थी । उनकी वाणी, उनका कोई भी शब्द थोथा नहीं था । वे युग निर्माता कहलाए । मिश्रजी नयी सदी को, उन लोगों को, जो गाँधीजी के विचारों को नहीं मानते, उनकी शक्ति को नहीं पहचानते उनको चेतावनी देते हुए कहते है –

''नये सुर्य को नये तूर्य को
अनुक्षण समझो
गाँधी के रण को साधारण रण
मत समझों ।''[४९]

गाँधीजी की कठोर संकल्प शक्ति का सबको परिचय है उनके द्वारा लिया गया संकल्प कभी नहीं छूटता था । उनके तेज से सब प्रभावित हो जाते थे । इस प्रभाव को मिश्रजी काव्य में इस प्रकार प्रस्तुत करते है –

''तलवारों की करे अवज्ञा
    ऐसे बोल कठिन होते है,
उनकी एक किरन के आगे
    सौ–सौ सूर्य मलिन होते है ।''[५०]

'युगातीत' कविता में मिश्रजी ने इस सदी के सभी महामानवों में गाँधीजी को विशेष बताया है । उन सब महामानवों में कही ना कही

क्रुरता, हिंसा, अविवेक, झुठ आदि दुर्गुणों थे, यानि की इन दुर्गुणों के अलावा उनका व्यक्तित्व महामानव नहीं बनता । लेकिन गाँधीजी में तो उन सबसे उलटा था । उनमें नम्रता, जनकल्याण, सत्य, अहिंसा ही प्रमुख रूप से रहे है । कवि उनें सदी का सबसे शक्तिशाली व्यक्ति मानते है, सबसे उपर उठा हुआ मानते है -

''खोल देकर कंठ तुने राग गाया रंग गाया ।
वीर हो बीभत्स हो तूने सभी निर्स्संग गाया ।
था युगों के बीच लेकिन युगों से उपर रहा तू,
जो लिखा उससे पता चलता नहीं भू पर रहा तू ।''[५१]

गाँधीजी का प्रभाव भारतदेश के लोगों पर कैसा था । इसका वर्णन कविने 'निषेध' कविता में किया है । उनका व्यवहार भारतदेश के लोगों के लिए अनुकरणीय रहता था । उनके एक इशारे पर लोग कुछ भी करने को तैयार हो जाते थे । अगर वह कुछ बोलते तो सन्नाटा छा जाता था । उनकी खुशी पर पुरा देश नाचता और उनके दु:ख पर सभी व्यथित हो जाते थे । इस बात को कवि ने इस प्रकार कहा है -

''भला जिस देश के एक अंग-ऊँगूली
के सहज उनठे से
जैसे लोक-लोकान्तर बेचारे नाच जाते थे
बिना स्वर को उठाये जरा भी जो कंठ
तेरा ही शान्त निश्चल और धीरे से
अगर तू ना बोल देता था ।
तो कितना शोर कितना द्वेष कितना दम्भ
उस एक ना की शक्ति के आगे से सब हट जाते थे ।''[५२]

मिश्रजी गाँधी स्तुति में आगे 'गाँधी स्मरण' कविता में कहते है कि -

''तुम्हारा रूप
जैसे जाड़े की धूप
हल्का और प्रकाशवान
और आकर्षक
x x x x x
तुम्हारा स्नेह
जैसे वैशाख में मेह लगातार ।''[५३]

समग्र भारतीय साहित्य में गाँधी विचारधारा का प्रभाव कहीं ना कहीं दिखाई देता है । स्वतंत्रता के कुछ ही समय के बाद केवल भारत ही नहीं पुरा विश्‍व यदि किसी घटना से सबसे अधिक प्रभावित हुआ है, तो वह है, गाँधीजी की हत्या । इस दौर में सबने गाँधीजी की मृत्यु पर उन्हें काव्य रूपी श्रद्धा सुमन अर्पित किए । मिश्रजी के लिए यह आधात वज्राधात था, वे लिखते है -

''हमारे मन का एक हिस्सा
अभी गोली से मर गया
यह समाचार
मुझे और तुम्हे
एक तरह से अकेला कर गया ।''[५४]

और कवि चकित है दु:ख में कहता है -

''जो स्वर
झर कर
तनिक मचलकर
शुन्य गूजने के पहले
हो गया मूर्च्छित
तार टूट जाने के कारण ।''[५५]

'गाँधी पंचशती' काव्यसंग्रह में तो मिश्रजीने गाँधीजी की मृत्यु पर पांच कविताएँ लिखी है । इस घटना के कारण कवि बहुत दु:खी हो जाता है । उसे विश्वास नहीं होता कि अब गाँधीजी हमारे बीच नहीं रहे । वह कहते है -

''तुम नहीं हो अब हमारे बीच में
इस तरह की शक्ति कैसे
मान ले हम मींच में
x x x x x
इस परम दु:ख की घड़ी मैं है पिता
जल रही है जब चरम संतापमय
हर ह्रदय में एक सी दारूण चिता
उस समय निष्कंय स्वर सें
रच उठे इस देश में आकार-भर हर एक घर से''[५६]

आज के बहुत सारे कवि 'आज और यही' पर बहुत जोर देने लगे है, किन्तु इस तरह का आग्रह मिश्रजी के कवि कर्म में हमें देखने को नहीं मिलता ।

हिन्दी-साहित्य में सियाराम शरण गुप्त के बाद किसी को एकनिष्ट गांधीवादी कवि कहा जा सकता है तो वे थे भवानीप्रसाद मिश्र । प्रेमचंद ने स्वयं को गांधीजी का 'कुदरती चेला' कहा था और जैनेन्द्र में चिन्तक का स्वर प्रबल है, परन्तु भवानी भाई में है स्नेह-सिक्त वाणी, सहज अभिव्यक्ति मानव-प्रेम और भक्ति का बिनीत स्वर । वे सन् १९३७ में 'रवीन्द्रनाथ से' में लिखते है -

''आकाशवाणी-सी तुम्हारी गिरा गूंजी
'वत्स वर मांगों'
और केवल कह सका मैं 'भक्ति गांधी की'
मर गया मम कण्ठ, आँखे बह उठीं,
विष्णु ने ध्रुव से कहा था, 'एवमस्तु'
किन्तु तुमने हाथ रक्खा शीस पर
तुम नहीं बोले
तुम्हारा मौन मुखरित हो गया मेरे हृदय में
भर गया वह एक ऐसा बल कि मैं निर्बल नहीं हूं ।''[५८]

अन्तर सिर्फ इतना है कि गुप्त जी 'बापू' कहलाते थे, परन्तु मिश्रजी 'भवानी भाई' । उन्हों ने 'बापू' लिखा तो इन्होंने 'गांधी पंचशती' ।

यह रेवा-पुत्र 'गांधी-पंचशती' में नर्मदा के समान प्रवाहमान है और भगीरथी के सदृश्य शिवत्व मण्डित । जबलपुर में जिस प्रकार नर्मदा संगमभरी चटट्टानों को फोड बह निकलती है, उसी प्रकार मिश्रजी का काव्य-वेग छन्दों के बंधन को स्वीकार नहीं कर पाता । उनके काव्य में सतपुड़ा का ओज तथा विन्ध्याचल की दृढ़ता थी । कवि सभी

संग्रहों में बड़ी से बड़ी बात सीधे-सीधे ढंग से कह दीए है । गांधीजी जितने सरल थे, व्याख्याकार उतने ही कठिन है । कवि हर काव्य में बुद्धि की अपेक्षा हृदयतत्त्व को अधिक महत्व दिया है । मिश्रने हंमेशा जीवन को अधिक महत्व दिया है ।

भवानीप्रसाद मिश्र के लिए गांधीजी व्यक्ति नहीं, प्रतीक है, भावना है, चेतन है और है एक ज्वलंत विचार । इसीलिये 'गांधी पंचशती' में गांधीजी को स्थूलता नहीं मिल पायी । वे सूक्ष्म रूप में सर्वत्र बिराजमान है, कविताओं में भाव बनकर तथा विचारों में आलोक-किरण से उभर कर । उनका सच्चारूप 'विश्वात्मा' में देखा जा सकता है -

''दु:ख में जो आर-पार देखता है और शांत रहता है
जितना वह सहता है उतना सहना चाहिये ।
जीवित ऐसे ही आदमी को कहना चाहिए
गांधी ऐसा ही आदमी था और इसलिये
न रहकर वह शरीर में आत्मा ही आत्मा हो गया है
शरीर उसका खो गया है मगर वह नित्य वर्धमान है ।''[५९]

इसलिये आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीने गांधीजी को 'शिरीष के फूल' के समान अवधूत तथा निस्पृह बतलाया है ।

'गांधी पंचशती' विकसित तथा स्वातंत्र्य-चेता भारत की महनीय गाथा है । उसमें राष्ट्रीय आन्दोलन की काव्यात्मक अभिव्यंजना भी मिलती है । वह मानवता की वाणी है । कवि का काव्य-विकास सहज ही इसमें आंका जा सकता है । उसके काव्य में 'कबीर', 'दादू', 'तुलसी', 'तुकाराम', 'निराला' 'नवीन', तथा 'एक भारतीय आत्मा' के

समान 'मिश्रजी'ने भी कविताओं की तिथियां देकर कालक्रम के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करने में सहयोग दिया है ।

कविवर भवानी प्रसाद मिश्रने 'गांधी पंचशती' को इस कामना के साथ प्रस्तुत किया है कि शब्द जितना कर सकता है ये कविताएँ उतना सब कर सकें । कवि की गाँधीवादी चेतना के प्रति अटूट तथा अदम्य निष्ठा की पराकाष्ठा उस बिन्दु पर देखी जा सकती है कि जब चीन के आक्रमण के समय समस्त राष्ट्रीय कवि शोले उगल रहे थे और देश ज्वालामुखी हो गया था, कवि भवानीप्रसाद मिश्र ने ऐसे उत्तेजित क्षणों में गांधी विचारधारा से प्रेरित शांतिप्रियता की कविता लिखी और स्थिति यहाँ तक आयी कि ''और दो-चार जगह इस पर गरमा-गरमी होकर लगभग मेरी गर्दन नयी थी'' परन्तु कवि 'मारेगे नहीं मरेगे' का उद्घोष करता रहा और इसे ही लड़ाई खत्म करने का सही ढंग मानता रहा ।

यही 'गांधी पंचशती' का 'पंचामृत' है जिसमें मूल दृष्टि, उत्स, लक्ष्य, व्यक्तित्व और दार्शनिक प्रभान्विति आपूर्ण की गई है । गाँधी शताब्दी वर्ष तथा बाद के वर्षो में राष्ट्रभाषा के एक जाग्रत तथा कर्तव्यष्ठि संवेदनशील कवि का यह सहयोग निर्माण तथा स्नेह की शक्तियों को उजागर करने तथा गांधीमार्ग को प्रशस्त करने में पूर्ण समर्थ-सक्षम है ।

गांधीदर्शन को लेकर चाहे बात सह-अस्तित्व की हो, प्रेम अहिंसा की हो, अथवा साधन और साध्य के पवित्रता की - समूचा गांधीदर्शन कवि भवानी प्रसादमिश्र के जीवन में धुलमिल गया है और व्यक्तित्व के

एकाकार होकर कृतित्व में प्रतिफलित हुआ है अतः कवि के विचार अनुभूतिजन्य, सहज और बोधगम्य है । उसमें दार्शनिक आवरण या वैचारिक ऊहापोह नहीं अतः वह सवैध है । उसकी सर्वोदयी दृष्टि केवल गाँधी पंचशती में ही रूपायित नहीं हुई है बल्कि 'गीत-फरोश' से लेकर अब तक की सारी रचनाओं में वह स्वर गहराया हुआ है । फिर भी कहीं आरोपित या थोपा हुआ नहीं है। 'आसक्ति की दुम' से बँधे समस्त मानव व्यापारों को एकता, सौहार्द, मानवीय सहानुभूति और स्नेह के सुत्रों में बदलने का स्पष्ट संकेत कवि की कृतियों में है । सारी मानवता को झुककर उठानेवाले सबसे सीधे-सादे निर्भीक और स्नेही गाँधी हमारे उच्चतर मूल्यों के मूर्तरूप है । उन्होंने उत्तर-दक्षिण, पूर्व, पश्चिम तक आदमी का आदमी से सही नाता जोड़ा है और ऐसी प्यार की बस्ती बसाना चाही है 'जिससे हर किसी का दु:ख मेरा शुभ हो जाय ।' इसमें संदेह नहीं कि भवानी प्रसाद मिश्र ने सबका दु:ख गाया है । पारस्परिक सद्भावना और सिद्धान्त पर मर मिटने की क्षमता ही गाँधी का सही रास्ता है । कवि ने सर्वत्र रचनात्मक जीवन दर्शन अपनाया है - 'सच बोलेगे और खोलेगे' उनके काव्य का मूल स्वर है । आत्मशक्ति भौतिक शक्तियों को जीतकर हिंसात्मक मनोवृति को मटियामेट कर देगी । जीवन में द्विधा-हीन कर्म और श्रम का उल्लास जरूरी है । श्रम से महकते श्राँत चरण वंदनीय है । कवि प्यार को भीतर की आग और भीतर का प्रकाश मानता है । अणु भट्टी की विभीषिका से बचने के लिए प्रेम की अगाध शक्ति चाहिए जिसका कर्जदार हर मनुष्य है । आशा से सच्चे रंग इसी तरह बिखर सकते है । कवि की अहिंसा-भावना जड़ चेतन तक विस्तार पा सकी है । प्रातः धुमते समय एक हरे-भरे

पौधे के हाथ की छड़ी से फटकार देने पर कवि को अपनी क्रूरता के साथ ही ऐसा अहसास हुआ कि अहिंसा पर लिखी गई उसकी अब तक की सारी कविताएँ व्यर्थ है । अभिप्राय यह है कि गांधीदर्शन अनुभूति के स्तर पर उनके विचारों से धुलमिल कर उनके काव्य में अभिव्यक्त हुआ है । सर्वोदयी कवि भवानी प्रसाद मिश्र शील और आदर्श के कवि है गांधीदर्शन उनसे धोषित कराता है कि 'मेरा शब्द गाये मगर संभालकर शील को ।''

इस प्रकार का आग्रह जिन कवियों में रहा, पनपा, उनके कविकर्म का अवमूल्यन ही हुआ है । जब तमाम कवि अस्तित्ववाद के शब्दजाल को ढोने में लगे थे । तब भी मिश्रजी इस सबसे दूर रहकर गाँधीविचार धारा को पकडे हुए थे । अस्तित्ववाद का सड़ा हुआ आचार उन्हें तो कभी भी रूचिकर नहीं लगा । उन्हें तो नदी की तरह गाँधी के विचारों को, मूल्यों को समाज में बहाना, सतपुड़ा के धने जंगलों की तरह हरेभरे और धने समाज में संजोने का स्वप्न है । यही उनके काव्यसंसार के विषय भी रहे है ।

मिश्रजी के सम्पूर्ण काव्य संग्रहों पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि उनकी वैचारिकता गाँधीजी के प्रतिष्ठिाभाव से ओत-प्रोत है । गाँधीजी के प्रति असीम श्रद्धाभाव से ओत-प्रोत कवि खादी के वस्त्रपहनने, चरखा कातने, विदेशीवस्त्र को जलाने का संदेश देते है । कवि की रचनाओं में गाँधी की सर्वोदयी दृष्टि प्राय: सभी रचनाओं में दिखायी देती है । कहीं-कहीं वह प्रबल रूप में उभर कर आई है और कहीं दब-सी गई है । राष्ट्रीय भावना से युक्त गाँधीदर्शन को जन-जन तक पहुँचाने में कवि पूर्ण: सफल हुआ है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मिश्रजी भक्ति की हद तक गाँधीमय थे, वह पवित्र, वह निर्मल, निश्चल हम पंक्ति हम पापी । फिर भी उन्होंने गाँधी के विवेक अंतर्दष्टि और विश्वास को पकड़ने की सार्थक कोशिश की । मिश्रजीने युग के जहर को पीने तथा रचने पर भी उनकी कविता का स्थायीभाव कुंठा-धूटन मृत्युबोध खोखलापन और निराशा का नहीं है । आज भी विषमताओं विसंगतियों से भरे युग में उनका कवि-कर्म गाँधी को जन-जन तक पहुँच रहा है । अपनी कविताओं के माध्यम से वह गाँधीजी को समझना समझाना चाहते थे । विकास की संगठित मौन हिंसा में मानवता के घुटते प्राणों को गाँधीविचार से राहत देना चाहते थे ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
१.	आश्रम छोड़ते हूए	भवानीप्रसाद मिश्र	१२
२.	हिन्दी कविता में प्रतिबिंबित गांधी	डॉ. दक्षाजानी	३२
३.	गांधी पंचशती 'सत्य'	भवानीप्रसाद मिश्र	२४०
४.	त्रिकाल संध्या	भवानीप्रसाद मिश्र	१३१
५.	वही	"	९६
६.	वही	"	९६
७.	वही	"	१३१
८.	अंधेरी कविताएँ	भवानीप्रसाद मिश्र	२९
९.	वही	"	९१
१०.	महात्मागांधी व्यक्ति और विचार विश्व	प्रकाश गुप्त	२३
११.	शरीर कविता फसले और फूल	भवानीप्रसाद मिश्र	१३५
१२.	सम्प्रति	भवानीप्रसाद मिश्र	१७
१३.	गाँधी विचाररत्न	संकलनकर्ता : माईदयाल जैन	७०-७१
१४.	गाँधी पंचशती	भवानीप्रसाद मिश्र	५
१५.	वही	"	२१४
१६.	हिन्द स्वराज	गाँधीजी	१४४
१७.	मंगलप्रभात	गाँधीजी	२०

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
१८.	त्रिकाल संध्या	भवानीप्रसाद मिश्र	१०४
१९.	वही	"	९४
२०.	गीत–फरोश	भवानीप्रसाद मिश्र	१७४
२१.	वही	"	१७५
२२.	'तुस की आग'	भवानीप्रसाद मिश्र	१२९
२३.	त्रिकाल संध्या	भवानीप्रसाद मिश्र	४३–४४
२४.	वही	"	५६
२५.	गाँधी पंचशती	"	१५
२६.	वही	"	१५
२७.	वही	"	१८
२८.	वही	"	५२
२९.	वही	"	५८
३०.	शरीरश्रम	माईदयाल जैन	३०
३१.	परिवर्तन जिए	भवानीप्रसाद मिश्र	६२
३२.	गाँधी पंचशती	भवानीप्रसाद मिश्र	७
३३.	वही	"	११
३४.	वही	"	११
३५.	वही	"	३२
३६.	वही	"	१२
३७.	वही	"	१३
३८.	वही	"	१८
३९.	वही	"	१८

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
४०.	वही	"	२५
४१.	गांधी पंचशती	भवानीप्रसाद मिश्र	२६
५०.	वही	"	४१
५१.	वही	"	१२७
५२.	वही	"	२२६
५३.	वही	"	३००
५४.	गांधी पंचशती	भवानीप्रसाद मिश्र	१७
५५.	चकित है दुःख	"	१२५
५६.	गांधी पंचशती	"	१२०
५७.	वही	"	१२०
५८.	वही	"	३११
५९.	'विश्वात्मा' गांधी पंचशती	"	२२९

अध्याय–६
भवानी प्रसाद मिश्रजी के साहित्य का शिल्प–सौंदर्य

- प्रस्तावना
- काव्य भाषा
- शब्द शक्ति
- भाषा–शैली
  १. सरलता में वैशिष्टय
  २. सम्प्रेषण की सहजता
  ३. वर्णन की अनुठी शैली
- उपमान विधान
- बिम्ब विधान
  १. ऐन्द्रिक बिम्ब
  २. संश्लिष्ट बिम्ब
  ३. खंडित बिम्ब
  ४. लक्षित बिम्ब
  ५. स्वच्छंद बिम्ब

- प्रतीक योजना
    १. प्राकृतिक प्रतीक
    २. वैज्ञानिक प्रतीक
    ३. कलात्मक प्रतीक
    ४. पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रतीक
- गीत-लय एवं नाद सौन्दर्य
- प्रबन्ध सौष्ठव
- संदर्भ ग्रंथ सूची

अध्याय-६
भवानी प्रसाद मिश्रजी के साहित्य का शिल्प-सौंदर्य

प्रस्तावना :

काव्य स्वरूप के प्राय: दो पक्ष होते हैं । भाव का विचारपक्ष तथा शिल्प का कलापक्ष । प्रथम पक्ष का सम्बन्ध काव्य के भीतरी या आत्मपक्ष से होने के कारण उसे अन्तरंग तथा द्वितीयपक्ष का संबंध उसकी रूप रचना आदि से होने के कारण उसे बहिरंग भी कहा गया है । प्राय: शिल्पशैली अभिव्यंजना एवं रूपादि शब्द संज्ञाओं से काव्य के बहिरंग का बोध होता है । इसके अध्ययन के द्वारा ही किसी भी कवि की कलात्मक प्रतिभा को देखा-परखा जा सकता है, क्योंकि कवि का स्तर साधारण मनुष्य के स्तर से सर्वथा भिन्न होता है । वह अधिक संवेदनशील, वाद्विभ्य एवं बौद्धिक चेतना सम्पन्न प्राणी है । अत: एव वह अपने अनुभूत तथ्यों या सत्यों का अंकन करके अपनी लेखनीं को चयन मात्र नहीं मानता, अपितु उन्हें और भी अधिक प्रेषणीय रसग्राह्य एवं रमणीयरूप प्रदान करने के लिए अभिव्यंजना के विविध उपादानों यथा भाषा शैली, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक एवं छंद आदि का विनियोजन करता है । विस्तृत: "काव्यात्मक अभिव्यंजना के इन्हीं पक्षों को रचना प्रक्रिया में उसकी प्रतिज्ञा क्रियाशील करती है । जिस किसी कवि की कलात्मक या शिल्प दृष्टि जितनी अधिक सूक्ष्म, सजीव एवं मनोहारिणी होगी उसका काव्य उतने ही रूप में प्रेषणीय एवं प्रभावशाली होगा ।"[१]

उपर्युक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि काव्य में कवि के आकार हीन भावों को मूर्तरूप प्रदान करने में तथा कथित अंगों का

अपना निजी महत्व देने में है । इन्हीं के माध्यम से किसी भी काव्य में स्थित रस या भावों के सौंदर्य तक पहुँचा जा सकता है । वस्तुतः पाठक या आलोचक अभिव्यक्ति के माध्यम से ही कवि के अन्तमन में प्रवेश करता है । अत एव यह कहा जा सकता है कि ''काव्य की प्रधान क्षमता का मूलाधार अभिव्यंजना शिल्प ही है । इसी पृष्टि से उक्त दोनों ही पक्ष परस्पर एक दूसरे के पूरक है । काव्य में शिल्प और वस्तु की परस्पर संगति या सन्तुलन नितांत आवश्यक है । अन्यथा शिल्प का अत्यधिक आग्रह वस्तु के भीतर निहित सौंदर्य को नष्ट कर देता है और उसमें केवल आलंकारिक आग्रह ही शेष रह जाता है ।''[२]

यह सत्य ही है कि शिल्प प्रक्रिया वस्तु के धर्म से ही अपना आकार – प्रकार ग्रहण कर कुशल कवि के द्वारा सशक्त अभिव्यक्ति प्राप्त कर लेती है । वस्तु के बदलते ही उसके शिल्प में भी तद्नुरूप परिवर्तन आ ही जाता है । स्वातंत्र्योत्तर कवियों की रचना प्रक्रिया का मूलाधार प्रायः अचेतन मनोव्यापार है । सूक्ष्म व जटिल भावों की अभिव्यक्ति के लिए परम्परा विर्निमुक्त से शिल्पगत प्रयोगों की आवश्यकता ने ही इन कवियों को नई दृष्टि नयी चेतना प्रदान की है । इस प्रयोगों की आवश्यकता पर बल देते हुए अज्ञेय जी का कथन है – ''अधुवातन जीवन की अनुभुतियों की अभिव्यक्ति और उनका सम्प्रेषण ही प्रयोग का कारण है । साधारीकरण के लिए प्रयोग केवल भाषा में ही नहीं वरन् शिल्प में भी उत्तर जाता है और वह मूल रूप में सम्प्रेषण तंत्र में सुधार और परिवर्तन ही है ।''[३] पाश्चात्य विचारक 'कामू साते' महोदय ने भी युगानुकूल नव शिल्पात्मक प्रयोगों की आवश्यकता पर अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा है – ''अनुभूत सौन्दर्य को अपने कलात्मक

रूप में प्रस्तुत करने की आकुलता, मूलभूत रूप में शिल्प के अनुसंधान का कारण है । यहाँ कलाकार का मूलदेश्य सुन्दर को अधिक बारीक और कोमल या ने संवेदनात्मक बनाता है ।''[४]

मिश्रजी ने यत्र-तत्र अनुभूति पक्ष की ही भाँति अभिव्यक्ति के विभिन्न शैल्यिक प्रयोगों की आवश्यकता एवं महत्व पर विचार प्रदर्शित किये है । किन्तु वस्तुतः अनुभूति को अधिक महत्व देते है । यही उनका अन्य कवियों से अन्तर है । डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दों में - ''सच बात तो वह है कि भवानीभाई कारीगर उतने नहीं है, जितने विश्वसनीय कवि है । कला के सौन्दर्यबोध शास्त्र को पढ़कर न तो उनके कवि को समझा जा सकता है - जब कि सौन्दर्यबोध शास्त्र से अज्ञेय या शमशेर को समझा जा सकता है ।''[५]

इसके विरूद्ध अज्ञेय अभिव्यंजना के मार्ग के सायत खोजी कहे जा सकते हैं । यही कारण हैं कि वे सामाजिक योग के निच्छल कवि होने के कारण बौद्धिकों और साधारण पाठकों में समानरूप से प्रसशंनीय है । डॉ. जगदिश गुप्त के अनुसार ''भवानीभाई कविता की समस्याओं एवं शैली-शिल्प के प्रति पर्याप्त सहजता रखते है । हिन्दी के वे ऐसे नये कवि है । जिन्हे अभूतपूर्व सिद्धि भी प्राप्त हुई है ।''[६]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सूक्ष्म लक्ष्य की सफल अभिव्यक्ति का आचार तद्नुरूप शिल्प प्रयोग विधि को ही माना गया है । व्यंग्य विरोध एवं विद्रोह पहले के कवियों में भी था, और समसामायिक कवियों में भी हैं । परन्तु जिस सहज स्वभाव की शिल्प सजगता से मिश्रजीने उसकी पकड पैदा की है वह अन्यत्र दुर्लभ है ।

यहाँ शिल्प के विभिन्न उपकरणों के आधार पर मिश्रजी के काव्य का पर्यावलोकन किया गया है ।''[६]

काव्य भाषा :

आशय को हृदयंगम कराने के लिए उचित शब्दावली का प्रयोग काव्य में ही नहीं हमारे जीवन के व्यवहार में भी आवश्यक है किन्तु वस्तुतः शब्द और अर्थ की साधना है । सामान्य कथन से काव्योक्ति को इसीलिए भिन्न माना गया है क्योंकि कथ्य को प्रभावशाली बनाने के लिए अन्य अनेक विशेषताओं का उसमें समावेश किया जाता है । इस कलात्मक प्रयास के माध्यम से शब्द-चयन, वर्ष-संगठक, शब्द-रचना, वाक्य-विन्यास एवं लय आदि की विशेषताएँ लायी जाती है । उन्हें हम काव्य-भाषा की संज्ञा देते है ।

भाषा वाक्यों से, वाक्य पदों से, पद शब्दों से और शब्द मूल प्रकृति तथा प्रत्ययों के योग से अपने वास्तविक अस्तित्व को अभिव्यक्त किया करती है । इन सभी के अन्तराल कवि की भावरूपिणी सृष्टि समाविष्ट रहती है । भाषा भावों की संवाहिका ही है । अतः शब्द शक्ति का सच्चा पारखी कवि ही अपने हृदयस्य भावों की प्रेक्षणीयता में सफलता प्राप्त कर सकता है । कोई भी भाव सरलता के सहज रूप में अभिव्यक्त हो सकेगा अथवा उसे वक्रोक्ति का चमत्कार प्रदान करना अथवा उसकी छटा वक्रोक्ति-मुहावरे के माध्यम से हि अधिक मनोहारी सी प्रतीत होगी । इस भाषा की आत्म और प्राणशक्ति पहनाने वाला कलाविश्र कवि ही ठीक तरह से समझ सकता है ।

जैसा कि लक्ष्य किया जा चुका है कि काव्य का माध्यम भाषा ही है । प्रत्येक कवि को अपने अनुभूत सत्य की अभिव्यंजना सर्वप्रथम भाषा से ही महसूस होती है । काव्य में उपयुक्त भाषा की पहचान अच्छे-अच्छे शब्दों का प्रयोग या नये-नये शब्दों का गठन न होकर शब्दों का सही और संगत प्रयोग करना होता है । काव्य के अधिकांश नवीन प्रयोग और भावाभिव्यक्ति के नवीन आयाम भाषा के संस्करण और अंलकरण पर ही निर्भर रहते हैं । कविता भाव जगत के सत्यों से उचित होती है । कविता की अनुभूतियों का सम्बन्ध विशिष्ट सन्दर्भों से हुआ करता है अतः कविता की भाषा विज्ञान या दर्शन की भाषा से अनिवार्यतः भिन्न होती है । ''लक्षण व्यंजना आदि शब्द शक्तियों का अलंकार और प्रतीक आदि भाषागत उपादानों के लिए कोई विशेष स्थान नहीं है । विज्ञान और दर्शन के अर्थ बौद्धिक और सुनिश्चित होते है इसलिए उनकी वाहक भाषा की बौद्धिकता निश्चित होती है ।''[७]

'भाषा' - भावों, विचारों और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने का साधन है । रस यदि काव्य की आत्मा है, तो भाषा इसका कलेवर । यही कारण है कि भाषा की तुलना अंगूर के छिलके से की गई है । अंगूर के रस को छिलका बाहर नहीं निकलने देता । उसे बाधे रखता है । इसी तरह भाषादि का काम संवेदना आदि को एक सीमा तक बांधे रखना है । भाषा और संवेदना की इस स्थिति पर विचार करते हुए डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है, ''भाषा केवल साहित्य मे ही नहीं प्रयुक्त होती, वरन् मानव जीवन की प्रक्रिया का यह अभिन्न अंग है । कवि जिन अनुभूतियों को अभिव्यक्त करना चाहता है, उसके पूर्वरूप उसने उसी भाषा रूप में सीखे होगें ।''[८] कलाकार कला के विभिन्न

अंगों का समन्वर्य करके आधारभूत वस्तु को हृदय गांही और प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयत्न करता हैं । शैली सामंजस्य और समन्वय ही रचना का मूलमंत्र है । शैली का सौदर्य भाषा की समृद्धि पर आधारित होता है । वह शब्दों का प्रयोग इस प्रकार करता है कि शब्द हमारे भावों और विचारों को व्यवस्थित कर देते है ।

भाषा एक ओर व्याकरणिक व्यवस्था की अमानत होती है और दूसरी ओर गतिशील प्रक्रिया का आग्रह भाषा के लिए 'शब्द-अर्थयुग्म' अपने आप में अनेक परतों को संमोये हुए होते है । वस्तुतः शब्द बहु-आयामी होते है । भाषा सम्बन्धी मिश्रजी की कुछ अपनी धारणाएँ है । उनके काव्यों में काव्य-भाषा के सादे प्रवाह का अर्थ भाषा का ए क ठहरापन नहीं है, बल्कि शब्द-अर्थ-युग्म के सहज प्रवाह की ओर संकेत किया गया है, जिस प्रवाह में अपनी एक स्वाभाविक लय हो । उसमें बनावट न हो । इस कथन का सम्बन्ध छंद से है । मूक्त छन्द की सहज लय में शब्द अर्थ युग्म हैं ।

"जिस तरह हम बोलते है
उस तरह तुम लिख ।"[१]

इसमें बोलने और लिखने के प्रति सावधान किया गया है । हम लिखते है गद्य । गद्य का अभिप्राय है - एक व्याकरणिक व्यवस्था से युक्त चुस्त-दुरूस्त भाषा और बोलने में वह व्याकरणिक व्यवस्था नहीं होती है । बोल-चाल की भाषा में सादगी सटीकपन, लोंच और एक प्रवाह अर्थात् लय युक्तता होती है । बोलचाल में संक्षिप्तता के लिए सुत्र वाक्यों, मुहावरों, कहावतों आदि को भी प्रभावशाली औजार की

तरह प्रयोग किया जाता है । वह बोलचाल में कविता लिखने की बात करते है –

''कलम अपनी साथ
और मन की बात बिलकुल
कह एकाध ।''[१०]

मिश्रजी कविता में अनौपचारिक, अनलंकृत एवं अकृत्रिम भाषा प्रयोग के पक्षधर है । अपने भाषा विषयक विचारों को व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है ।.... ''वर्डसवर्थ की एक बात मुझे बहुत अच्छी लगी कि कविता की भाषा यथासम्भव बोलचाल के करीब हो.... । प्राय: प्रारम्भ की एक संरचना में अलंकृत भाषा सौष्ठव देखिए –

''जिस तरह हम बोलते है
उस तरह तु लिख
और उसके बाद भी
हमसे बडा तु दिख ।''

कवि कहते है मैंने अपनी कविता में प्राय: वही लिखा है जो मेरी ठीक पकड़ में आ गया है ।''[११]

सहज बोधगम्य और अनायास आ टपकने वाले शब्दों की अर्थो और ध्वनियों की वास्तविक पहचान मिश्रजी को है । उनकी काव्य भाषा लोक मानस की भाषा है जो उनकी कविता को एक नयी ताजगी और अपनत्व प्रदान करती है । 'हिन्दी काव्य भाषा को मिश्रजी का सबसे बडा योगदान यह है कि उन्होंने साहित्यिक भाषा और सामान्य बोलचाल की भाषा के पार्थक्य को मिटा दिया है । उनकी काव्य भाषा

की बडी विशेषता यह है कि बोलचाल की भाषा लिखने के लिए कवि को साधु भाषा का परिहार नहीं करना पड़ता और संस्कृतनिष्ठ भाषा लिखने के लिए फारसी से झगड़ा नहीं करना पड़ता ।' इसे हम कला की स्वाभाविकता का निर्वाह कहेंगे । उन्होंने हिन्दी काव्य को एक नया मुहावरा दिया है और अपनी सहज तथा अनौपचारिक अभिव्यक्ति में एक अनुकरणीय मोड़ दिया है । आज के भारत की सांस्कृतिक विपन्नता की चर्चा करते हुए विध्या निवास मिश्र ने लिखा है कि ''सबसे दुःख की बात तो यह है कि हिन्दी का प्रबुद्ध लेखक भी छोटे आदमी की बात करने का दावा करता है, भोगी हुई जिंदगी की वकालत करता है और भाषा ऐसी बोलता है जो ऊपरी बैलोसपन, नकली खुरदरेपन और अतिरंजित तीखेपन के बावजुद छोटे आदमी और यथार्थ भोगनेवाले आदमी की पहुंच के बाहर होती है, शायद शब्द वही हो पर बीच में ए क दीवार जरूर प्रतीत होती है । रहती है जिसके आर-पार की बात सुनाई नही पडती ।''[१२] भवानी मिश्र में यह भाषा की तासीर नहीं है जो उच्च वर्ग और आम आदमी के बीच में खड़ी कर दी गयी हो ।

शब्द-शक्ति :

काव्य का श्रवणगत प्रभाव शब्द के द्वारा ही प्रकट होता है । इतना ही नहीं शब्द तब भी हमारे भावों और कल्पना को भी जागृत रखने का सामर्थ्य रखता है ।

मिश्रजी के काव्यों में हमें व्यंग्य और विद्रोह के स्वर भी मिलते है । व्यंग्यानुभूतियों की भाषा में इन्सायिनत की झलक है । भाषा में वेधकता एवं कठोरता नहीं है ।

''हम लगभग बिना बोले
अपनी बात कह रहे है ।
हम आपके इरादे, आपके काम
फिलहाल इसलिए सह रहे है
कि सूरज दिनभर तपकर
शाम को डुब जाता है ।''[१२]

मिश्रजी की एक ओर विशेषता है कि उनकी कविता में सदैव 'लो', हाँ 'जी हाँ', 'यानि की', 'बोलो', 'देखा', 'करो' आदि शब्दों का भरपूर प्रयोग होता है ।

''लो पहले अपना नाम बता दूँ तुमको
फिर चुपके से धाम बता दूँ तुमको
तुम चौक नहीं पडना यदि धीमे-धीमे
में अपना कोई काम बता दूँ तुम को ।''[१३]

x x x x x

''आराम से भाई जिन्दगी । जरा आराम से
सुबह हुए जाना है मुझे
आराम से भाई जिन्दगी
जरा आराम से ।''[१४]

x x x x x

''जी हाँ ! हुजूर मैं गीत बेचता हूँ।
जी और भी है दिखलाता हूँ ।''[१५]

उल्लेखनीय है कि मिश्रजी ने अपने काव्य संग्रहों में कम से कम शब्दों का प्रयोग करके अधिक से अधिक अर्थ को भरने के आकांक्षी रहे है । स्पष्ट है कि नयी कविता को उन्होंने आँचलिक शब्दावली के प्रयोग और आँचलिक बोध और आँचलिक चेतना की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाया है । 'अंधेरी कविताएँ' नामक काव्य संग्रह में मिश्रजीने सर्वाधिक आँचलिक शब्दावली का प्रयोग किया है ।

घसीटूं, बखरवा, गांडवा, सजाते, थाह, छंवारता, अंगडाई, झकझोरा, साथ, बिडांल, सामे, झोके, झपके-झपके, मंडाये, कबसीले, पंछी, कोर, अंगुली टटके विधारण, सिहरना, उजाला, आड़े-झोर ।

इसके अलावा पुरानी भाषा के नये प्रयोग के संदर्भ में यह कथ्य मिश्रजी का उपर्युक्त जान पड़ता है ।

''कि मेरा मन
कि,
आज एक नया संदर्भ है
मगर फिंकना तो चाहिये
पुराने ही शब्दों से
नये सन्दर्भ की चिनगारी ।''[१६]

तात्पर्य यह है कि कवि मूलतः परम्परागत शब्द से नये संदर्भो को उभारने के विरोधी नहीं है । किन्तु अनुरूप अर्थवत्ता के लिए वह नयी या तो आवश्यकतानुसार जनदीप शब्दावली का प्रयोग करने से नहीं झिझकता ।

यह देखने के पश्चात यह लगता है कि कवि की शिल्प साधना चालीस वर्षो की उपलब्धि है । वह शब्द कोष में लिखे रूढ़ अर्थो की संकीर्णता में शब्द नहीं बंधे, वह गतिशील अर्थ और सूक्ष्म ध्वनियों तक गया है । इस संदर्भ में कवि का स्पष्ट मत है –

''कि कोष में लिखा है जो शब्द
वह कुछ नहीं है अपने आप में
कोष का धोड़ा नही है धोड़ा
धोडा़ तो वह है
जो अस्तबल में बँधा है
जुता है तांगे में
दौड रहा है
खुले मैदान में
लड़ रहा है दूसरे किसी धोडे से ।''[१७]

भवानीप्रसाद मिश्र के लिए शब्द देवता है जो उन्हें अंगुली पकड़कर खड़ा करते है, स्नेह से धूमना फिरना सिखाते है और जीने की इच्छा का सही अर्थ उद्धाटित करते है । उनके पास स्निग्ध, तरल, सरल और प्राँजल शब्दों की हल्की और सधी हुई छैनी है जिसके द्वारा वे आदिम सुगंधों की वकालत करते हैं । उनके पास केवल शब्दों की सामान्य हलचल नहीं, निरर्थक शोरगुल नहीं बल्कि अर्थो की बरसने वाली घटाएँ है तभी तो वे कह उठते है कि –

''क्या मेरी कलम
जो इतना लिखती है
शब्दों की हलचल के लिए लिखती है ?''[१८]

भवानीप्रसाद मिश्र शब्दों से परे अर्थवान काव्य के रचियता है । शब्दों की अथाह शक्ति से अपने पूरे अस्तित्व को, आत्मा की तहों को खोलकर रखना चाहते है और कविता के वन प्रांतर को हरा-भरा और ताजा । शब्दों की रेवा ने ध्वनियों के अर्थ खोले है इसलिए कवि के पास 'अमरकंटकों को सागर में गला देने वाले स्वर' है । कविने अपना समुचापन शब्दों और ध्वनियों के स्पंदनो को समर्पित कर दिया है इसलिए साधक के मंत्रों की तरह अर्थ उसके सामने खुलते रहते है ।

'शब्द-शक्ति' के श्रेष्ठी मिश्रजी की कविताओं में एक-एक सुन्दर प्रवाह है, रवानी है, ठहराव नहीं । कविताएँ त्रिपदी है, अर्थो और ध्वनियों के अनुसार कविने शब्दों का प्रयोग किया है । भूमिका में ही मिश्रजी ने स्पष्ट किया है कि ऋतु की जगह रितु, किरण की जगह किरन और हरिण की जगह हिरण जैसे शब्द प्रयोग उसने पहले से अंगीकार कर रखे हैं । शब्द भले पुराने हो गये हों किन्तु वे कागज के बनावटी फूलों की तरह नकली नहीं है । शब्द बड़े नाप तौलकर साधे गये है जो सार्थक स्वर देते है ।

''बासे हो गये है शब्द सूख गये है फूल
मगर नकली नहीं है वे न झुठे है ।''[१९]

मिश्रजी अलंकारिता के बोझ से कविता को नहीं लादते । सहजता उनका गुण है । रीतिकालीन या छायावादी अलंकृत शैली का जमाना गुजर गया । उसका सौन्दर्य चुक गया और समय के साथ वह अप्रासंगिक हो गई है । इसलिए कवि शब्द-शक्ति की सहज अभिव्यक्ति में विश्वास रखता है ।

अर्थ की सत्ता काव्य में अनिवार्य रूप से रहती है और यह अर्थतत्व कभी-कभी शब्द चमत्कार से मुक्त होता है कभी उससे रहित शब्द की प्रधान शक्ति अर्थ में है । आचार्यो ने अर्थ को तीन शक्तियों द्वारा प्रकट किया है - अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना, अभिधा में शब्द चमत्कार पूर्ण अर्थ न देकर अर्थ का सामान्य रूप ही प्रकट होता है और लक्षणा में उसका चमत्कार घोषित होता है और व्यंजना द्वारा उसके रमनीय अर्थ की अभिव्यक्ति होती है । ध्वनि सिद्धान्त वाक्यार्थ और लक्ष्यार्थ की अपेक्षाकृत व्यंग्यार्थ को विशेष महत्व देता है । ध्वनि का सारा व्यापार अर्थ पर और विशिष्ट प्रकार के अर्थ पर निर्भर करता है । उसकी इस बात में यह है कि वह वाक्यार्थ और व्यंग्यार्थ के अतिरिक्त प्रयुक्त पदावली से अन्य अर्थ भी ध्वनित हो सके है ।

मिश्रजी के काव्य के विषय में संक्षेप में यह उल्लेखनीय है कि उनकी सहज सरल शैली में जहाँ बात सीधे ढंग से कही जा सकती है वहाँ कविने व्यग्यार्थ का लक्ष्यार्थ का प्रयास नहीं किया है । कथन का सौन्दर्य शब्द चयन में दिखायी देता है -

> ''यह कथा व्यक्ति की नहीं
> एक संस्कृति की है
> यह स्नेह कान्ति,
> सौन्दर्य, शौर्य की वृत्ति की है ।
> यह धारा संस्कृति की
> विशिष्ट अति वेगवान।
> केवल भीतर की धरती पर,
> भी प्रवाहमान ।''[२०]

इसमें विशिष्ट शब्द योजना द्वारा कथा को सहजता के साथ प्रस्तुत किया गया है । आचार्यो ने अभिधा को जहाँ उत्तम काव्य जाना है उसका यह सार्थक उदाहरण कहा जा सकता है । इसी प्रकार लाक्षणिक पदावली का निम्नलिखित उदाहरण उल्लेखनीय है –

''तब भारतीय संस्कृति धारा बन कर ललिता
हो नयी मेखलाकार, स्वर्ण सागर विनिता ।''

x x x x x

''यह धारा
भरकर कल-कल स्वर
सूखे-सूखे
ऊँचे-नीचे
पृथ्वी के अंचल अपनाकर ।''[२१]

कवि श्री मिश्रजी को विशेष सिद्धि व्यंजना शक्ति के सफल प्रयोग में प्राप्त है । 'त्रिकाल-संध्या' नामक संग्रह की भूमिका में उद्धत चार पंक्तियाँ चार कौये ऊर्फ चार हौये शीर्षक कविता द्वारा इसका एक सक्षम, सशक्त, साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है । जिसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ दृष्टव्य हैं –

''बहुत नही थे सिर्फ चार कौये, उर्फ चार हौये,
उन्होंने यह तय किया कि सारे उड़नेवाले,
उनके ढंग से उड़े, रूके, खाये और गाये,
वे जिसको त्यौहार कहे, सब उसे मनायें ।''[२२]

इस उदाहरण में कवि ने कौये के माध्यम से राजनेताओं पर तीखा व्यंग्य प्रहार किया है वैसे देखा जाये तो दूसरे सप्तक के कवियों ने शब्द शक्तियों का प्रयोग कम किया है । यदि कुछेक प्रयोग मिलते है तो व्यंजना शक्ति के । मिश्रजी जनसमुदाय को लक्ष्य करने के लिए समाज पर व्यंग्य का करारा प्रहार करते हुए रस का प्रयोग किया है । 'त्रिकाल संध्या' में इमरजेन्सी के समय व्यंग्यपूर्ण रचनाओं को रचित करके उसमें व्यंजना शक्ति का प्रयोग किया है, मिश्रजी की सैकड़ो कविताओं में दर्जनों कविताएँ या तो व्यंग्य प्रधान है या फिर व्यंग्यात्मक ।

राजनीतिक कविताओं में मिश्रजी ने संतुलित और मीठी भाषा में तीखी व्यंजना शैली का प्रयोग किया है । राजनीति के दाँव-पेचों और राजनीतिज्ञों के विषय में उन्होंने अपना विचार निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त किया है -

> ''तुम्हारा चेहरा लोहे या लडक़ी का होता तो भी
> ऐसा ही लगता
> आँखों की जगह होते दो छंद,
> पर दो कोडियों की बनी होती
> तो भी क्या कुछ फर्क पड़ता
> पहिये होते पांवों की जगह
> पुर्जे हिलते भावों की जगह
> तो क्या तुम आज से अधिक
> पूर्ण न होते ।''[२३]

यहा गांधीजी के माध्यम से जिस प्रकार निहित भावों को व्यंजित किया गया है उसमें शब्द योजना तो बिलकुल ही लोग प्रचलित है । किन्तु आज की राजनीतिक विकृति उनके संभाव्य काल्पनिक रूप वर्णन के माध्यम से साकार हो उठी है । आधुनिक काल में मानव जीवन को आक्रान्त करने वाली सामाजिक विषमता की अभिव्यक्ति के लिए कौवे-भेडिये जैसे नवीन शब्दों का प्रयोग कविने स्वार्थी नेताओं, पूँजीपतियों पर व्यंग्य करने के सिलसिले में किया है ।

मिश्रजी के काव्योंमें कहीं लोकोक्तियों और मुहावरों का बड़ा सार्थक प्रयोग हुआ है । देखए -

''कि अब हम
न तीन में न तेरह में ।''[२४]

x x x x x

''जिसे भी रंगना चाहो । रंगों आज अपने रक्त से ।
आँखें मत चुराओं वक्त से । हर बात का वक्त होता हैं ।''[२५]

x x x x x

''सुलग उठे हमारे प्राण की भट्टी की तब गल जाए यह रोना ।
कि जिसकी नीव पर पशुता ।
हवेली बाँध सिर ताने खड़ी है ।''[२६]

''सो रहा है शिशु कि माँ चक्की लिये है,
पेट पापी के लिए पक्की किये है ।
फट रही छाती ।''[२७]

इसके अलावा मिश्रजी की काव्य भाषा में सुक्तियों को भी सहजरूप से अपनाते रहे हैं ।

''चिन्ता मत करो । सिर्फ अपने भीतर ही नहीं ।
सबके भीतर विश्वास भरो... अपनी मौत मरता है ।''[२८]

''जो जितना ऊँचा चढता है
उतना साबित कदम बनाना पड़ता है उसको ।''[२९]

''त्रुटि अंधियारे की बेटी है ।''[३०]

''मरण भी मेरी एक विभूति है ।''[३१]

''कायरों को वार नहीं झेलने पड़ते ।''[३२]

मिश्रजी की भाषा में सुक्तियों का प्रयोग उनकी दृढ़ कामनाओं की अभिव्यक्ति का सूचक है ।

भाषा-शैली :

भवानीप्रसाद मिश्रजी ने भाषा व्यवहार के प्रसंगों का प्रयोग करते है तब उनकी काव्यभाषा सहज बोलचाल की भाषा है । भाषा की दृष्टि से जो शब्द योजना उपयुक्त हो उसे ही वे महत्व देते है । यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि मिश्रजी इस बात से परेशान नहीं होते कि वे पश्चिम के किस बड़े कवि की शैली को अपनाएँ और पाठक को एकदम आकृष्ट या चमत्कृत करे । वे हंमेशा इस झुठे चमत्कार से दूर साफ ढंग से कह लेने के लिए कलम उठाते है ।

उनके भाषा प्रयोग की दो विशेषताएँ विशेष रूप से दर्शनीय है वो है - स्वच्छता और भावानुकुलता । अभिव्यंजना को अधिकाधिक निखार ने के लिए सभी प्रकार के शब्दों तत्सम्, देशज तथा उर्दूं और अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का स्वच्छन्दतापूर्वक प्रयोग करते है । किन्तु अपने मूल कर्म की निर्वाह की दृष्टि से उनकी भाषा एक सहज, सरल तथा सरस है । उसमें वर्ण्य विषय को मूर्त करने की अभूतपूर्व क्षमता पायी जाती है । अनुभूति की कल्पना, बुद्धि और भाव को समन्वित करके उचित शब्दों के माध्यम से सर्वानुभूति बना देते है । अतः उन्होंने काव्य भाषा को रचनात्मक स्तर पर जीवन स्पन्दनों को निकटता से आत्मसात् किया है । उर्दूं के शब्द जैसे -

''तमाम तजों रिज में ली है ।
एक ओर,
जोखिम लेता हूँ मैं ।''[३३]

जोखिम शब्द का प्रयोग अर्थ का सही रूप उजागर करता है । मिश्रजी की भाषा में दों बातों की विशेषता पायी जाती है । जहाँ एक तरफ उनकी भाषा सरल है वहाँ दूसरी तरफ गहन से गहन अर्थ के लिए गूढ़ी सी दिखती है । लेकिन अज्ञेय जी की भाँति अभिजात्य गुरूता से न तो बोझिल है और न ही मुक्तिबोध की भाँति गधात्मक ऊबड-खाबड ही है । मिश्रजी ने नयी कविता को नयी भाषा देने में 'कमल के फूल' अर्पित करने पड़े है ।

''ये कमल के फल लेकिन
मानसर के हैं

मैं इन्हें बीच से लाया
न समझो तीर पर के है ''३४

उपर्युक्त उदाहरण में कवि कमल के फूल समर्पित करके हल्का होना चाहता है लेकिन डरता इस बात से है कि आखिर इन फूलों को अब क्या होगा । इनकी लिखी रची भाषा इनकी ही भाषा है । नयी कविता में किसी भी कवि से इस भाषा का मेल नहीं रहा है । हाँ इतना अवश्य जान पड़ता है कि संस्कार उन्होंने संत कवियों के साथ - भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त तथा नवीन जी से अवश्य लिए है । किन्तु इनकी भाषा पर प्रसाद, पंत का कोई सीधा प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता । बल्कि उल्टा यही लगता है कि इस भाषा के विरोध में कलात्मक आड़म्बर को घटाने में यह भाषा तद्‌भवता की बोलचाल की लय की राह पकड़ती है । मिश्रजी का कथन है - जो कवि काव्य भाषा तथा लोकभाषा के बीच की दूरी को जितना ज्यादा काटता है वह उतना ही भाषा को नया करता चलता है । रूप ही नहीं, प्रकृति एवं प्रकार को बदलता चलता है । जब कि कवि भाषा को अपने ढंग से कातकर पाते हैं तो इसकी एक सूरत ऐसी निकलती है जो किसी दूसरे का प्रतिरूप की प्रतिच्छाया नहीं है । बोलचाल की भाषा के इस व्यापक एवं नये उपयोग के व्यवहर्ता को सम्पन्न एवं समृद्ध बनाया है । अनुभवात्मक आँच में बिम्ब, प्रतीकों में सांस्कृतिक अस्मिता के तेज को उजागर किया हैं । 'गीत-फरोश' में उन्होंने धूल, वर्धा, पानी, पवन इत्यादि प्राकृतिक उपादानों रूपी शब्दों की फसल ने हिल-मिलकर कविता रूपी जमीन को हरा-भरा बनाया है । जैसे सतपुड़ा के जंगल इस बात के साक्षी है -

''सतपुडा के धने जंगल
नींद में डूबे हुए से,
ऊगँते अनमने से जंगल
जगते अंगड़ाइयों में,
ओह खड्डों खड्यों में
धास पागल, फाश पागल
डाल और पात पागल,
मत्स मुर्ग और तीतर,
इन पक्षों के खूब भीतर ।''[३५]

इन तथ्यों तथा विवेचन से स्पष्ट है कि कवि की भाषा की रचनात्मक शक्ति का कारण यही है कि कवि ने भाषा को कमाने, रचने-कटकक्ष में पचास कर्म से ज्यादा अधीर होकर समर्पित कर दिये है । इसलिए तो कवि ने जिस किसी तथ्य को अनुभव किया या यथार्थ भूमि पर भोगा उसी तथ्य या तत्व को गहराई के साथ, तीव्रता के साथ अनुभव करके अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया । कुछ भी हो मिश्रजी भाषा प्रयोग में अत्यन्त उदार दीखते है । सरलता के साथ गुढ़ता को भी छिपाये हुए उनकी भाषा है ।

''जी हाँ, हुजूर मैं गीत बेचता हूँ,
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ
मैं किसिम - किसिम के गीत बेचता हूँ
जी छंद और बेछंद पसन्द करें
जी अमर गीत और वे जो सूरत भरें ।
ना बुरा मानने की इसमें बात,
मैं ले आता हूँ कमल दावात,

इनमें से आये नहीं, नये लिख हूँ
मैं पुराने सभी तरह से गीत बेचता हूँ ।''[३६]

कविने बड़ी सहजता से और नाटकी व शैली का अनुगमन करके गूढ़ व्यंग्य को प्रस्तुत किया है । जो हमारे मस्तिष्क को सहज बोध बनाता है और अपने कथ्य को उतना ही प्रभावशाली एवं प्रेषणीय भी करता है । कवि को भाषाशैली की यह अपनी निजी विशेषता है । वे अपनी भाषा को जब साधारण की भाषा के निकट लाने का प्रयास करते हैं । लोक भाषा को जीवन और समाज का प्रबल शस्त्र स्वीकार करते है । इस लोकवाणी की ताकत उनके लिखने में उजागर होती है । कविता उनकी भाषा में वार्तालाप हो जाती है –

''तुम डरो नहीं, डर वैसे कहाँ नहीं है
पर खास बात डर की कुछ यहाँ नहीं है ।
बस एक बात है वह केवल ऐसी है,
कुछ लोग यहाँ थे पर अब वे यहाँ नहीं है ।''[३७]

सन्नाटे को रूपायित करते हुए पाठकों के साथ बड़ी ही सहजता तथा आत्मीयता के साथ दिखायी देता है । जिसके कारण विषय-वस्तु हृदयंमग्न करने में किसी भी प्रकार का प्रयास नहीं करना पड़ता । उनकी दृष्टि में यदि भाषा जटिल है तो मनुष्य को वर्तमान संघर्ष से जुझने के लिए सहायता प्रदान नहीं कर सकती, सामान्यत: इनकी भाषा में जनपदीय शब्दावली का खुल कर प्रयोग किया गया है । कई बार तो जनपदीय शब्द भी जटिलता पैदा कर देते है । ये कवि शिल्प के प्रति अधिक जागरूक है, जो छायावादी आड़म्बर से पृथक आधुनिकता बोध

बनाये हुए है । नवीन भावबोध के अनुरूप अपनी भाषाशैली का रूप निर्माण करने के लिए नूतन प्रतीकों, बिम्बों तथा विविध शब्द प्रयोगों का व्यवहार किया है ।

मिश्रजी की भाषाशैली की तीन विशेषताएँ रही है ।

(१) सरलता में वैशिष्टय:

(२) सम्प्रेक्षण की सहजता

(३) वर्णन की अनूठी शैली

(१) सरलता में वैशिष्टय :

सहजता और सरलता मिश्रजी का जन्मजात गुण है । वह इसके लिये शब्दकोष में लिखे अर्थो की संकीर्णता में भी नहीं बंधा है , प्रत्युत वह गतिशील अर्थ और सूक्ष्म ध्वनियों तक गया है । इस संबंध में उनका स्पष्ट दृष्टिकोण है –

''कि कोष में लिखा है जो शब्द
वह कुछ नहीं है अपने आप में
कोष का घोड़ा नहीं है धोड़ा
धोड़ा तो वह है
जो अस्तबल में बंधा है
जुता है तांगे में
दौड़ रहा है खुले मैदान में
लड़ रहा है किसी दूसरे धोड़े से ।''[३८]

उनकी भाषाशैली अर्थो और ध्वनियों की सही पहचान है । उनकी काव्य-भाषा जनमानस की काव्य-भाषा है, जो उनकी कविता को एक नया अर्थ और नया बिम्ब प्रदान करती है । मिश्रजी की शैली चुमती हुई सीधी शैली का सही मर्म है । कवि का काव्य सहज, सरल और आलंकारिक चमत्कार से दूर अकृत्रिम भावधारा है । मुहावरों, कहावतों, और लोकोक्तियों से पूर्ण उनकी कवितायें उन्हें लोक जीवन के सन्निकट खड़ा कर देती है । यही उनकी शैली की सरलता और विशिष्टता है ।

(२) सम्प्रेषण की सहजता :

मिश्रजी की भाषा-शैली में उनकी भाषा की सम्प्रेषणीयता सहज और प्रकृत है । वे प्राय: संकेतों और प्रतीकों से काम लेते थे, जिस कारण वे अपने समकालीन कवियों से एकदम अलग थे । कविता की सहजता और उसकी सम्प्रेषणीयता का अंदाज इसी से लगाया जा सकता है कि वे लिखने से पूर्व न कभी छंद तोलते है और न शब्द -

''मैं तुमसे कह रहा हूँ
और कहना,
कविता में चल रहा है
कहना शुरू कर दिया है
तौला नहीं है इसका छंद
सिर्फ खोलकर हवा में
प्राय: भर दिया है
आओ सुनो
और सुनो
में तुम से
कह रहा हूँ ।''[३९]

मिश्रजी की इन पंक्तियों में जो सम्प्रेषणीयता है, उसका एक मुख्य कारण भाषिक प्रांजलता है । उनकी कुछ रचनाओं में गधात्मकता भी देखने को मिलती है । कविता के संदर्भ में वे अपने कवि जीवन के आरंभ से ही सहजता के पक्षधर हैं । सम्प्रेषण की सहजता उनका साध्य है । इसलिए वे कहते है कि –

''जिस तरह हम बोलते है
उस तरह तु लिख
और उसके बाद भी
हमसे बड़ा तू दिख ।''[४०]

इस तरह सहजात गुणों और शब्दों की साधना के साथ काव्य में सहज संम्प्रेक्षणीयता के कारण मिश्रजी की कविता पाठक और श्रोता को न केवल आकर्षित करती है वरन् वह ताकत भी देती है ।

(३) वर्णन की अनुठीशैली :

इस शताब्दी में हिन्दी कविताने युगांतकारी मोड़ प्राप्त किया है । आधुनिकता, समसामयिकता, नव्य–संवेदना तथा युगीन परिवेश के कारण वस्तु तथा शिल्प में भी परिवर्तन आ गया है । नयी कविता में भवानीप्रसाद मिश्रजी एक ऐसे कवि है, जिन्होंने सफलतापूर्वक यह किया है । सेठ गोविन्ददास के शब्दों में – ''मिश्रजी साहित्य के क्षेत्र में एक दैदीप्यमान नक्षत्र का स्थान रखते है उनके काव्य साहित्य की भंगिमा, भाषा–शैली और दर्शन सभी मुग्धकारी हैं ।''[४१]

कवि के शब्दों में विचारों की घनिष्ठता है, तो उनकी शैली में भावों की मंजुलता कवि ने शब्दों का संचालित संतुलित प्रयोग 'योग' और मनमाना प्रयोग 'भोग' की तरह व्यर्थ लगता है –

''शब्द का सही उपयोग
योग है
और कल्याणकारी है
योग की तरह
मनमाना उपयोग उसका
भोग है ।
और विनाशकारी है
भोग की तरह ।''[४२]

मिश्रजी ने आधुनिक हिन्दी कविता को नव्य प्रवाह, नयी गीति, शैली और नव्य तरंगावलिया प्रदान की है । उन्होंने जन-जीवन के विषय संधर्ष के भीतर जो अप्रत्यक्ष किन्तु अनुठी शैली है उसे पहचाना है । उन्होंने काव्य भाषा और शैली की विश्व्व विद्यालयीय परिसर और राजमहलों से निकालकर जन-जन तक लाने का कार्य और उसे मस्तिष्क से हटाकर ह्रदय तक पहुँचाने का कार्य जिस शौर्य और साहस से किया है, वह उनकी शक्ति और प्रतिभा का द्योतक है । उनकी भाषा और शैली उनके जीवन के समान ही धवल और अवदात है ।

उपमान विधान :

दूसरे सप्तक के कवियों के काव्यसंग्रहों में रूप वर्णन होते है । लेकिन इन सप्तक के कवियों में अपेक्षाकृत अन्य कवियों की भाँति ही

रूप वर्णन करने में रूचि दिखलाई है, नूतन कल्पना एवं अप्रस्तुत योजना का इनमें सहज दर्शन होता है । दूसरे कवियों के काव्य संग्रहों में विभिन्न अंगों के लिए प्रयुक्त कुछ उपमानों का आंकलन अद्योलिखित है ।

(१) ''वक्षः गेद की ल्यारी

(२) भजाः चीड़

(३) अचरः तखुज की फाँक ।''[४३]

दूसरे सप्तक के कवियों में धर्मवीर भारती, शाकुन्तला माथुर आदि के रूप वर्णन के प्रति अधिक सहृदयता प्रदर्शित की है । अन्य कवियोंने इसके प्रति विशेष रूचि नहीं दिखायी है । भवानीप्रसाद मिश्र के काव्य में प्राचीन उपमानों का मोह अधिक दिखाई पड़ता है । उनकी 'गीतफरोश' काव्य कृति में चरण के लिए कमल, मुख के लिए चाँद, केश के लिए धन, शरीर के लिए स्वर्ण आदि परम्परागत उपमान रूप वर्णन की विद्या में परिलक्षित होते है –

''पाँख की इस रात में पत्र लिखने बैठता हूँ
स्वस्थ है मुख और पीला
चाँद निकला आ रहा है
पास में फैले हुए बन पर
ऊजेला छा रहा है ।''[४४]

उपर्युक्त 'चाँद निकला आ रहा है' में कविने चाँद की उपयुक्तता को मुख के लिए स्वीकार्य किया है । इस तरह के परम्परागत उपमाओं ने रूप वर्णन की दिशा को परिलक्षित किया है । उद्धरण की तीसरी पंक्ति में कवि ने उपमान चाँद निकला आ रहा है के द्वारा मानव जीवन

के सुख–दु:खात्मक पक्षों की ओर संकेत किया है । कवि बादलों में चन्द्र के छिपते निकलते हुए चित्र के द्वारा निराला की अंधकारपूर्ण उदासी और आशा की स्निग्धता जो चाँद जैसे मुख पर फैली है कि ओर संकेत करता है । इसी तरह मिश्रजी केश के लिए जो उपमान संकेत दिया है, वह निम्न उदाहरण से स्पष्ट होता है ।

''आ जाओ सूर्य आलोक–लिपि
लेकर लिखे हम
आ जाओं चले अँधेरे में
किरन बनकर दिखे हम । ''[४५]

इस तरह कविने अपने काव्य में उपमान प्रयोग में रूप, वर्ण, गुण आदि को व्यंजित करने की अधिक से अधिक कोशिश की है । नवीन उपशाखाओं के चयन में भी मिश्रजी को उपमानों से सर्वथा पृथक नहीं किया जा सकता है ।

बिम्ब विधान :

कविता में बिम्ब विधान या बिंब की योजना कविता के जन्म के साथ ही होती रही हैं । बिम्ब शब्द संस्कृत का है । अंग्रेजी में बिम्ब को 'ईमेज' कहा जाता है । सामान्य रूप में बिम्ब का अर्थ है – चित्र, प्रतिबिम्ब, प्रतिमा, मूर्ति आदि । बिम्ब किसी अप्रस्तुत वस्तु का मानसिक या काल्पनिक रूप होता है । बिम्ब काव्य संम्प्रेषण की प्रक्रिया का अभिन्न अंग होता है ।

सभी आलोचकोंने बिम्ब को अपनी-अपनी दृष्टि से वर्गीकृत करने का प्रयास किया है । नगेन्द्रजी ने अपने ग्रंथ 'काव्य-बिम्ब' में पंच ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर दृश्य, स्पृश्य, ध्वनि, ग्रंथ और स्पर्श बिम्ब की चर्चा की है । डॉ. भगीरथ मिश्रने इनके अतिरिक्त व्यापार बिम्ब, सांस्कृतिक बिम्ब, आस्वाद तथा मानव बिम्ब आदि की भी चर्चा की है । डॉ. नगेन्द्र ने मुख्य जो बिम्ब के भेद माने है वो इस प्रकार से है - (१) ऐन्द्रिक बिम्ब, (२) संश्लिष्ट बिम्ब (३) खंडित बिम्ब (४) लक्षित बिम्ब (५) स्वंच्छद बिम्ब आदि ।

भवानी प्रसाद मिश्रजी के काव्यों में छोटी कविताओं को बिम्ब धर्मिता दर्शनीय है । बिम्ब के उदाहरण दृष्टव्य है -

''कल,
आँसु की तरह
टपक कर फलने
हलका
कर दिया
पेड़ को
बगीचे की मेज को
जाने क्या हुआ,
दहक गयी
पेड़ पर बैठी चिड़ियों की
बायी आँख
फड़क गयी ।''

उपर्युक्त उदाहरण में आँसू की तरह टपके फल का सुन्दर बिम्ब आँखों में मिल जाता है । इसका दृश्य बिम्ब के माध्यम से घटन व्यापार को प्रभावशाली बनाता है ।

मिश्रजी ने अनेक स्थलों पर तो बिम्ब रूपक और मानवीकरण के सहारे ही खड़े किये है -

> ''सूखी-सी काम में नीली-सी पहाडियाँ
> कुहरे से ढली हुयी
> यह तो हुयी एक तरफ
> दूसरी तरफ बादल नीले कपसीले ।''[४६]

मिश्रजीने 'दूसरा सप्तक' में 'बुंद टपकी एक सम से' कविता में बिम्बों का कमाल दिखाया है ।

(१) ऐन्द्रिक बिम्ब :

कविता में ऐन्द्रिक बिम्ब पाँच तरह के होते हैं - यथा दृश्य, श्रव्य, स्पर्श, धातव्य और स्वाद बिम्ब। मानवेन्द्रियों में दृश्य का स्थान सर्वोपरि है । प्रत्येक काव्यात्मक बिम्ब चाहे वह किसी भी प्रकार का क्यों न हो ऐन्द्रिक गुणों से संचालित रहता है । श्रव्य बिम्ब का दूसरा नाम नाद-बिम्ब है । इसमे ध्वनि, छंद, लय, एवं नाद सौदर्य से संबंधित निर्मित बिम्ब स्वीकार किये जाते है । इसी लिये कविता को श्रव्य मानने की परंपरा रही है ।

कवि की खास रचना 'सतपुडा के घने जंगल' तो विभिन्न बिम्बों के साथ-साथ दृश्य बिम्ब विधान का भी सफल तथा सार्थक प्रतिनिधित्व है –

''सड़े-पत्ते, गले पत्ते
हरे पत्ते, जले पत्ते
वन्य पंथ को ढांक रहे से
पंक-दल में दले पत्ते
चलों इन पर चल सको तो
दलो इन पर दल सको तो
ये धिनौने धने जंगल
नींद से डुबे हुए से,
ऊँधते, अनमने जंगल ।''[४७]

रंगों के चित्रण में तथा दृश्य बिम्ब सृर्जन में आलोच्य काव्य अति सफल है ।

(२) संश्लिष्ट बिम्ब :

संश्लिष्टात्मक बिम्बों में काव्यचित्र का दृश्य पक्ष उतना स्पष्ट नहीं होता, जितना भाव पक्ष अपने गठन और गुणों के कारण संवेदनात्मक या अनुभूतिमूलक अधिक होता है । इसमें आशा-प्रत्याशा, सुख-दुःख, विरह और मिलनादि का संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किया जाता है । यह बिम्ब काव्य का चमत्कार है, कवि की प्रतिभा का द्योतक है पाठक की बुद्धि और ग्राहिका शक्ति की कसौटी । मिश्रजी के काव्य साहित्य में संश्लिष्ट बिम्ब के अनेक चित्र मिलते हैं । एक उदाहरण निम्नलिखित है –

"बूंद टपकी एक नभ से
किसी ने झुक कर झरोखे से
कि जैसे हस दिया हो
हस रही सी आँख ने जैसे
किसी को कस दिया हो,
ठगा-सा कोई किसी की आँख
देखते रह गया हो
उस बहुत से रूप को, रोमांच रोके
सह गया हो ।"[४८]

(३) खंडित बिम्ब :

खंडित बिम्ब कवि या काव्यकार के खंडित भाव और अनुभूति से सम्बन्ध है । खंडित बिम्ब का दूसरा नाम विकीर्ण बिम्ब भी है । यह बिम्ब कवि की असफलता का द्योतक है । कवि के भाव और विचार जब उचित अथवा पूर्ण नियमित नहीं हो पाते, तो ऐसे बिम्बों का जन्म होता है । अभिप्राय यह कि असबद्ध भावों के योग से बनी कविता में खंडित बिम्ब अपने पूर्ण रूप में दिखाई देता है । मिश्रजी की 'शुभ-अशुभ' कविता में खंडित बिम्ब की एक असम्बन्ध योजना दृष्टव्य है -

"कल
आँसू की तरह
टपक कर फलने
हलका
कर दिया

पेड को

बागीचे की मेज को

जाने क्या हुआ

दरक गई

पेड़ पर बेठी चिड़िया की

बाई आंख

फरक गई ।''[४९]

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों में केवल 'शुभ-अशुभ' के लिये 'बाई-आँख का फरक जाना' तो ठीक था । काव्य का शेषांश विविध परिस्थितियों और चित्रों की और रेखांकित करता हुआ हमारे अंतस के बिखरे हुए भावों को उद्‌बोधन देता है ।

(४) लक्षित बिम्ब :

उपस्थित दृश्य-विधान ही लक्षित बिम्ब है । लक्षित बिम्ब एक प्रकार से प्रस्तुत विधान है । इस बिम्ब-विधान में वर्ष पदार्थ का चित्र साक्षात प्रस्तुत कर दिया जाता है । लक्षित बिम्ब का सुन्दर और सहज उदाहरण भवानीप्रसाद मिश्र की 'प्रलय' शीर्षक कविता में देखी जा सकती है ।

''जब समन्दर बढ रहा होगा

बडी भगदड मचेंगी

और बाडवानल निगोडी

सामने आकर नाचेगी''[५०]

संपूर्ण कविता के वर्णन विवरण में प्रलय का साक्षात दृश्य प्रस्तुत है । लक्षित बिम्ब के विपरीत उपलक्षित बिम्ब होता है ।

(५) स्वच्छंद बिम्ब :

स्वच्छंद बिम्ब को रोमानी बिम्ब कहा जाता है । रोमानी शब्द शारीरिक प्रेम अथवा अंतर के कम्पन्न से सम्बन्धित भावो का प्रतिनिधित्व करता है । आधुनिक युग में यौन-भावना के प्राधान्य तथा मनोविश्लेषण शास्त्र के बढते हुए प्रभाव के परिणाम स्वरूप ऐसे बिम्बों का बाहुल्य हो गया है । मिश्रजी के साहित्य में ऐसे बिम्बों का प्राय: अभाव मिलता है । अन्य बिम्बों में अनुबिम्ब, स्मृति बिम्ब, कल्पना बिम्ब, स्वप्न बिम्ब आदि भी मिलते है स्पष्ट है कि काव्य में बिम्ब एक प्रकार का चित्र विधान है, जिसका प्रयोग नये कवि अपने की स्पष्टता के लिए करते है और मिश्रजीने भी यथा इसका प्रयोग किया है ।

प्रतीक योजना :

काव्य के प्रतीक भावो की अभिव्यंजना के सशक्त माध्यम है । 'प्रतीक योजना' करते हुए कवि का उदेश्य अपने अर्थ की अभिव्यक्ति तथा अपने अनुभव का प्रेषण करना है । संस्कृत साहित्य में प्रतीक के लिये 'उपलक्षण' शब्द आया है । इसका अर्थ है - समान गुण और धर्म वाली इतर वस्तुओं का ज्ञान जिन वस्तु या शब्द के माध्यम से हो । प्रतीक भावनाओ की अभिव्यक्ति के साधन है । मानव जब-जब अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने में असमर्थ अथवा अक्षम हुआ है, उसने प्रतीकों का सहारा लिया है । कहा जाता है कि प्रतीक ऐसा साधन अथवा माध्यम है जिससे किसी विषय का संकेत किया जाता है ।

मनुष्य प्रतीकों के माध्यम से ही सोचता है, कुछ प्रतीक सार्वभौम होते है - जैसे 'सिंह-वीरता का', 'श्वेत रंग'- 'पवित्रता का', 'श्रृंगार कायरता का' और 'लोमडी-चतुराई का' प्रतीक है ।

इससे स्पष्ट है कि प्रतीक का व्यवहार भी एक स्वाभाविक क्रिया है । कितने बिम्ब में वर्ण्य विषय को स्पष्ट करने और प्रभाव को गंभीरता से हृदयगंम कराने की क्षमता है, यहाँ प्रतीक में बौद्धिक संकेत रहता है, आज की कविता की बौद्धिकता के लिए प्रतीक विधान सर्वथा अनुरूप कहा जा सकता है ।

मिश्रजी ने जीवन के अनेक क्षेत्रो से प्रतीकों का चयन किया है । उनके काव्यो में प्रकृति संस्कृति कर्म, विज्ञान तथा जीवन के क्रियाकलाप आदि से सम्बन्धित अनेक प्रतीक उपलब्ध होते है । मिश्रजी को 'असाधारण' कविता में मानव के अग्निधर्मी प्रतीक बिम्ब है । यही वे प्रतीक है जो परवर्ती काव्ययात्रा से फले-फुले है । यह कविता सच्चे अर्थो में कवि की निजी संकल्प का दस्तावेज है ।

''माथे पर फुल जैसा,
अपने चढा देखो,
रूकती सी दुनिया को
आगे बढा देखो
मरना वही मरना है ।''[५१]

जीवन दर्शन को प्राकृतिक प्रतीक के माध्यम से कविने इसे प्रेषणीय बना दिया है ।

भवानीप्रसाद मिश्रने प्रतीकों का प्रयोग किया है तथा उसे अपेक्षाकृत अधिक भाव-सम्पन्न बनाया है । मिश्रजी के काव्य में प्रतीकों के विविध प्रयोग मिलते है । जिनमें मुख्य हैं (१) प्राकृतिक प्रतीक, (२) वैज्ञानिक प्रतीक, (३) कलात्मक प्रतीक, (४) पौराणिक प्रतीक ।

(१) प्राकृतिक प्रतीक :

ज्ञान और चेतना के उदयकाल से ही प्रकृति और मानव का चिरस्थायी सम्बन्ध रहा है और तब से ही प्रकृति मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है । इसीलिए काव्य-साहितय में प्राकृतिक प्रतीको का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है । वृक्ष, नदी, नाले, सरितायें, फुल-फाल सील-झरने, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, प्रकाश तथा अंधकार आदि प्रकृति के उपांगो का वर्णन विवरण काव्य-सृजन में जितनी बहुलता से किया गया, उतनी अधिकता से किसी अन्य वस्तु का नहीं । आधुनिक कवि पं. भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं में प्राकृतिक प्रतीक का बाहुल्य है, जिसका उदाहरण निम्न कविता में देखा जा सकता है -

> ''फूल लाया हुँ कमल के
> क्या करूँ इनका
> पसारे आप आँचल
> छोड दुँ
> हो जाये जी हलका ।''[५२]

इसमें 'कमल' कविता का प्रतीक है । कवि उन्हें मानसरोवर से निकास कर लाया है और पाठको का आंचल उससे भर देना चाहते है ।

(२) वैज्ञानिक प्रतीक :

आधुनिक युग, वैज्ञानिक युग है । विज्ञान ने अपने नित, नये अन्वेषणों से समस्त जन–जीवन को अपनी ओर सहनदृष्टि से आकर्षित किया है, वह मानवप्रकृति पर दैन्दिन विजय श्री कर उसके रहस्यो को खोलता और उसकी गुत्थियों को सुलझाता रहा है । वैज्ञानिक प्रतीकों का प्रयोग काव्य में अभी बहुत कम मिलता है तथा नई कविता में अज्ञेय, मुक्तिबोध, गिरिजकुमार माथुर, भवानी प्रसाद मिश्र, रामविलास शर्मा, आदि कि कविताओं में ही वैज्ञानिक प्रतीकों के प्रयोग मिलते है यथा –

''और भभक कर
महाशक्ति बोली यों अणु की
मृत्यु हो चुकी है भविष्य की ।''[५३]

इसी प्रकार –

''उड चले है पुष्पक विमान पृथ्वी की ओर
करते है पुष्पवृष्टि
तोडकर क्षमशील पृथ्वी के वक्ष को
सहस्त्रो शिखाओं में,
उडी है गगन में सुवर्ण सिंहासन और ।''[५४]

और भवानीप्रसाद मिश्र की –

''बुनी हुई रस्सी को धुमाये उल्टा
तो वह खुल जाती है

और अलग–अलग रेसे देखे जा सकते है
उसके सारे रेसे ।''[५५]

कवि का कथन है कि बुनी हुई रस्सी को उल्टा धुमाकर देखने से उसके रेशे अलग–अलग देखे जा सकते हैं कि किन्तु कविता के सारे बिखरे रेशों को समेटकर देखना होता है ।

(३) कलात्मक प्रतीक :

साहित्य में कलात्मक प्रतीको का क्षेत्र सीमित है । कला से सम्बन्ध वस्तुओं की भावाभिव्यक्ति हेतु जिन प्रतीकों का प्रयोग होता है; वे कलात्मक प्रतीक कहलाते है । ऐसे प्रतीक सार्वजनिक कम वैयक्तिक अधिक होते है । फिर भी अन्य प्रतीकों की अपेक्षा, अधिक सरल और स्पष्ट होते है । मिश्रजी के काव्य में जहाँ कहीं भी कलात्मक का संयोजन हुआ है कविता का सौंदर्य स्वमेव बढ गया है । देखिए –

''कईबार भूल गया हूँ में
यह सहज सत्य
कि आदमी
सबसे बडा है
सबसे कोमल है
सबसे अधिक विचारणीय है ।''[५६]

उपर्युक्त पंक्तियो में कलात्मक सौंदर्य व उसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति तो है ही, मानव–मूल्यों के प्रति सजग सचेष्टता भी है । कवि ने इस सत्य को समझा है कि आदमी संसार में सबसे सुंदर, कोमल व महान है ।

(४) पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रतीक :

ऐसे प्रतीकों का अन्तसंबंध पौराणिक, धार्मिक अथवा ऐतिहासिक पात्रों एवं घटनाओं से होता है । परंपरायुक्त धार्मिक अथवा पौराणिक प्रतीको का काव्य में बडा ही महत् स्थान है । इसका कारण यह है कि भारतीय जीवन की समस्त क्रिया ये धर्म से जुडी है । भवानीप्रसाद मिश्र ने भी 'कालजयी' खंडकाव्य में कई ऐतिहासिक और पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग किया है । उसमें कवि ने सम्राट अशोक की कथा के माध्यम से प्रेम, करूणा और सहानुभूति आदि मानव-मूल्यो के नये अर्थो में उपस्थित किया है । कविने अशोक चरित्र में एक बौद्धिक तथा विचारशील मानव का रूप देखा है, जो सदैव शिक्षा के संस्कारो से आंदोलित होता रहता है । कवि के शब्दो में -

''अथ से इति तक
उद्‌गम से सागर तक की
संस्कृतियों समझी
वेद उपनिषद षड्‌दर्शन
मनु याज्ञवल्क्य स्मृतियाँ समझी
द्रविड आर्य शक हुण यवन सब जाने मैंने
सबके साथ संधि-विग्रह के क्षण आये
सनमाने मैंने ।''[५७]

भारतीय संस्कृति की इसी चिंतनधाराने अशोक को 'स्व और पर' के भेदभाव से ऊपर उठाकर योगी की स्थिति मे खडा किया है । 'कालजयी' में अशोक एक चिंतनशील आधुनिक मानव के रूप में रूपायित हुआ है, जो अति भौतिकता और पार्थिवता से क्षुब्ध है ।

गीत-लय एवं नाद सौन्दर्य :

भवानी प्रसाद मिश्रजी की कविता में गीत, लय के अनेक रूप हमें मिलते हैं । तक या अत्यानुप्रास का उन्होंने अन्य कवियों की भाँति परहेज भी नहीं रखा है और आवश्यकतानुसार उसे छोड़कर अर्थ की गहराई को मापने के लिए भिन्न ढंग से लय सौन्दर्य को निष्पन्न करने का प्रयत्न भी किया है । ये शैली शिल्प के लिए पर्याप्त सजगता रखते रहे है । अतः उनके इस पक्ष के अनुशीलन में हमें उपर्युक्त लय और प्रवाह के विनियोजन को ध्यान में रखना होगा । नयी कविता में जहाँ इस चेतना की उपेक्षा की गयी है वहाँ कविता कोश गध मात्र रहकर प्रभाव शुन्य बन गयी है । किन्तु मिश्रजी की कविता में सर्वत्र के उक्त लय विधान की सजगता वर्तमान है । मिश्रजी के काव्यों के शब्दों में लय की स्थिति तो परम्परागत रही है लेकिन छंद का रूप नया है, छन्द उसका नियोजित रूप है, पर अर्थ एवं लय की ओर बहुत कम लोगो ने ध्यान दिया है ।

''अरे सौंप दी अपनी कन्या
तिस पर नदी हमारी वन्या,
कभी नहीं ढंग से यह पायी
जाति हमारी कभी नहीं
अपने को भारत कह पायी ।''[५८]

''यह तो विकट कासता ठहरी
रोज हो रही गहरी - गहरी
हालत यह बर्दाश्त न होगी ।''[५९]

''तभी एक हलचल हो गयी
भीड़ चिरने सी लगी,
कहीं-कहीं छॅटने तो
कहीं धिरने सी लगी । ''[६०]

''कैसी जवानी है
कैसी मीठी वाणी है
यहाँ जो बोलता है,
एक रस धोलता है ।''[६१]

उपर्युक्त उदाहरणों में बाहर ताल और गीत में तुक का मेल दिखायी पड़ता है । जो अनेक विध है । इनकी पंक्तियों में मात्राओं की नाप-तोल समानरूप से देखी जा सकती है । तीसरे और चौथे उदाहरण में तुक के द्वारा अर्थ को विशेष रूप से ध्वनित किया गया है ।

'गीत-फरोश' नामक काव्यसंग्रह में इसका एक उदाहरण देखिए -

''सिद्धान्त ने मेरे विवेक को,
कुत्तर ने की कोशिश की
इसलिए मैंने सिद्धान्तों के दांतों को
जरा और पास से परख ।
किसी एक का भी विवेक
हमारे लोगों के तय किये हुए
सिद्धांतो से कारा
पवित्र है और व्यारा है ।''[६२]

मिश्रजी ने व्यंग्य को एक विशेष शब्दावली में ढालकर यति और गति वैचित्रय को लाकर कथ्य की व्यंजना को रोचक एवं आह्लादक बना दिया है ।

''बहुत नहीं थे सिर्फ चार कौचे थे काले,
उन्होंने तय किया कितने तारे है उड़नेवाले,
उनके ढंग से उड़े, खाये, रूके और गाये
वे जिनको त्यौहार कहें, सब उसे मनाये ।''[६३]

''कभी-कभी जादू हो जाता है दुनिया में,
दुनिया भर के गुण दिखते है और दुनिया में,
ये और दुनिया तार बड़े सरताज हो गये,
इस में बांकर, गरूड, चली और बाज हो गये ।''[६४]

इस प्रकार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि गीत, लय, तुक, छन्द, वस्तुतः कुल मिलाकर एक ही वस्तु है, क्योंकि एक सता दूसरे पर निर्भर करती है । लय, गीत की रागात्मक अभिव्यक्ति का अंतर्गत तत्त्व है । वैसे अब नयी कविता के तुक और लय अनिवार्य तत्व माने जाने लगे है । नयी कविता अछंद होने का कारण यही है । मिश्रजी की कविता में व्यक्त मानवीय मूल्यों का प्रभाव उसके शिल्प पर दृष्टिगोचर होता है, और वह मानवीय मूल्य रोजबरोज के जीवन संदर्भो से जुड़े है । इस प्रकार मिश्रजी काव्य में छन्द को आवश्यक मानकर चले हैं । पुराने नवीन मुक्तछंद उनके काव्य में मिलते है, अधिकाशतः छन्दों में दुतगति मिलती है, जो विचारों की उत्तेजना का परिणाम है। उनकी छन्द योजना से गीत, लय एवं नाद है। उनकी छन्द योजना से गीत, लय एवं नाद

सौन्दर्य का बौद्धिक चिंतन बहुत अच्छी तरह उनकी कविता में व्यक्त हुआ है ।

प्रबन्ध सौष्ठव :

एक मात्र 'कालजयी' को छोड़कर भवानीप्रसाद मिश्र की सभी रचनाएँ काव्यरूप की दृष्टि से मुक्तक की कोटि में आती है । मुक्तक रचनाएँ विविध प्रसंगों, सामाजिक और वैयक्तिक स्थिति, विषय-वस्तुओं आदि से सम्बन्धित है और उनका कलात्मक सौन्दर्य अभिव्यंजना की अनुरूप पद्धतियों के माध्यम से प्रकट हुआ है, अतः उनकी प्रबन्ध कृति 'कालजयी' ही एक मात्र ऐसी रचना शेष बचती है, जिसके प्रबन्ध संगठन की चर्चा उनके शिल्प पक्ष के अनुशीलन में आवश्यक है ।

भवानीप्रसाद मिश्र के प्रबन्ध सौष्ठव में हमें सौदर्य परकता, सार्थकता और विद्रोह कहीं ना कहीं नजर आ जाते हैं ।

सौन्दर्यपरक दृष्टिकोण से उनके काव्य में प्रकृति का वर्णन नजर आता है देखिए -

''सूरज की आँखों से आँखे मिलाकर
रग-रग में रम गई
नींद को हिलाकर
गति को प्रकाश
और मति को
ध्यान कर दे ।''[५६]

अथवा

"रूकते नहीं है रोके
ये अनचाहे सुलभ
अनमागे मोती
किरने हेम सज्जित
रोमांचित दुर्वादल
गीत चोटी की पार के
परमार्जित वर्णो में
सब कुछ फेकी हुई आँखों के आगे ।"[६६]

मिश्रजी ने कहा है काव्य लिखते समय किसी क्षण का चित्रण व्यर्थ है, सार्थक क्षण ही नई कविता का विषय बने यथा -

"किन्तु क्षण का काव्य क्या है तय करो,
मत कि स्वर को शौक भी ही लय करो,
सच कहो कवि आत्मा से पूछकर
सच कहो कवि मत किसी का भय करो ।"[६७]

विद्रोहयपरकता आधुनिक हिन्दी साहित्येतिहास में निराला एवं दिनकर के अनन्तर भवानीप्रसाद मिश्र पौरूष के अकेले कवि है । भारतीय जन-मानस में नवचेतना का संचार करनेवाले, एक ही साथ सुकुमार एवं पुरूषभावों के उद्‌गाता, विश्व-वादी एवं राष्ट्रीयता के पुजारी तथा युवा चेतना में कसम कसाती क्रांति को तीव्र स्वर देनेवाली मिश्रजी हिन्दी कविता के गर्व और गौरव हैं ।

प्रबन्ध सौष्ठव में कवि के काव्यों में हमें अतीत की चिंगारियों को वर्तमान में सुलगाकर ज्योति जगानेवाले, विषमताओं, सामाजिक

विकृतियों पर व्यंग्य और विद्रोह की उपलवृष्टि करने वाले, हिन्दी कविता को छायावद की परछाई से बाहर निकालकर उसे यथार्थ आलोक के देश में पहुचानेवाले मिश्रजी हिन्दी के पहले कवि थे ।

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि अनुभूति जीवन दृष्टि और अभिव्यक्ति के उपकरण भाषा, शब्द, बिम्ब एवं प्रतीक विधान आदि ऊँचस्तर पर समन्वय से कविता में कलागत अथवा शिल्पगत औदात्य का समावेश होता है । नये कवियों में जहाँ औचित्य का निर्वाह हो सका है, वहाँ कविता में शिल्पगत पक्ष भी सहज ही उद्‌घाटित हो उठा है ।

इस तरह मिश्रजी का काव्य सर्जन अपने सहयोगियों में सर्वोपरि है । उसमें निरन्तर आत्मान्वेषण, सत्यान्वेषण एवं जिजीविषा में मानवस्था की खोज दिखायी देती है । मिश्रजी के काव्य की प्रणय, सौन्दर्य और जीवन के यथार्थ की दर्द की अनुभूतियाँ आधात और क्षणिक आवेगों की अनुभूतियाँ है । इसकी अभिव्यंजना के लिए प्रयुक्त भाषा, बिम्ब एवं प्रतीक आदि सभी जड़ता से दूर है । शब्दों प्रतीकों में नये अर्थ भर ने की चेष्टा में मिश्रजी ने कोई कसर नहीं छोड़ी है ।

संदर्भ ग्रंथसूची

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
१.	भवानीप्रसाद मिश्र के काव्य		
	में सामाजिक चेतना	मिथलेश कश्यप	१५५
२.	Skatre - Essay in	Aesthetic	76
३.	आत्मनेपद	अज्ञेय	३०
४.	Skatre Essay in	Aesthetic	75
५.	भवानीप्रसाद मिश्र का काव्य		
	संसार	कृष्णदत्त पालीवाल	६४
६.	कवितात्तर प्रथम संस्करण	डॉ. जगदीश गुप्त, १९९३	७०
७.	'अन्धायुग' एक विवेचन	डॉ. हरीशचन्द्र वर्मा	८५
८.	काव्य की भाषा	राम स्वरूप चतुर्वेदी	३७
९.	'बुनी हुई रस्सी' भूमिका	भवानीप्रसाद मिश्र	१२
१०.	'गीत फरोश'	भवानीप्रसाद मिश्र	८
११.	दूसरा सप्तक	सम्पादक - अज्ञेय	४५
१२.	आधुनिक काव्य	सं.विश्वभर अरूण	७०
१३.	दूसरा तार सप्तक	सं.अज्ञेय	१३
१४.	बुनी हुई रस्सी	भवानीप्रसाद मिश्र	५८
१५.	दूसरा तार सप्तक	सं.अज्ञेय	१३
१६.	अंधेरी कविताएँ	भवानीप्रसाद मिश्र	२४
१७.	खुशबु के शिलालेख	भवानीप्रसाद मिश्र	६६
१८.	वही	भवानीप्रसाद मिश्र	१४६
१९.	'व्यक्तिगत'	भवानीप्रसाद मिश्र	४५

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
२०.	'कालजयी'	भवानीप्रसाद मिश्र	११
२१.	वही	भवानीप्रसाद मिश्र	१४
२२.	'त्रिकाल संध्या' भूमिका	भवानीप्रसाद मिश्र	९
२३.	गांधी पंचशती	भवानीप्रसाद मिश्र	२७७
२४.	खुशबु के शिलालेख	भवानीप्रसाद मिश्र	४४
२५.	त्रिकाल संध्या	भवानीप्रसाद मिश्र	१८
२६.	गीत फरोश	भवानीप्रसाद मिश्र	४३
२७.	वही	भवानीप्रसाद मिश्र	४३
२८.	त्रिकाल संध्या	भवानीप्रसाद मिश्र	५७
२९.	गाँधी पंचशती	भवानीप्रसाद मिश्र	३६२
३०.	वही	भवानीप्रसाद मिश्र	३८१
३१.	त्रिकाल संध्या	भवानीप्रसाद मिश्र	४६
३२.	वही	भवानीप्रसाद मिश्र	२९
३३.	वही	भवानीप्रसाद मिश्र	४६
३४.	वही	भवानीप्रसाद मिश्र	२९
३५.	कवि के व्यक्ति विचार विमर्श के आधार पर		
३६.	'फुल कमल के'	भवानीप्रसाद मिश्र	१२
३७.	'गीत-फरोश' सतपुडा के जंगल	भवानीप्रसाद मिश्र	६१,६२
३८.	वही	भवानीप्रसाद मिश्र	१६७
३९.	सन्नाटा 'गीत फरोश'	भवानीप्रसाद मिश्र	१८
४०.	खुशबु के शिलालेख	भवानीप्रसाद मिश्र	९९
४१.	'अंधेरी कविताएँ'	भवानीप्रसाद मिश्र	२७

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
४२.	'गीत-फरोश'	भवानीप्रसाद मिश्र	१
४३.	भवानी भाई 'आवरण'	शेठ गोविन्ददास	२१
४४.	गाँधी पंचशती	भवानीप्रसाद मिश्र	४०४
४५.	दूसरा सप्तक	संपादक - 'अज्ञेय'	१८८-८९
४६.	वही	"	६८
४७.	गीत-फरोश 'तेरा जन्म दिन'	भवानीप्रसाद मिश्र	१०३
४८.	अंधेरी कविताएँ	भवानीप्रसाद मिश्र	५२
४९.	आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि	भवानीप्रसाद मिश्र	३३
५०.	वही	"	३५
५१.	धर्म-युग शुभ-अशुभ	भवानीप्रसाद मिश्र	१६
५२.	दूसरा सप्तक 'प्रलय'	सं.अज्ञेय	१६
५३.	आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि	भवानीप्रसाद मिश्र	३८-३९
५४.	मैन हैटन	गिरिजाकुमार माथुर	जनवरी
		आजकल	१९५२
५५.	विश्वक्रांति रामविशाल शर्मा	तार सप्तक सं.अज्ञेय	२६२,२६३
५६.	बुनी हुई रस्सी	भवानीप्रसाद मिश्र	१७
५७.	व्यक्तिगत	भवानीप्रसाद मिश्र	४९
५८.	'कालजपी'	भवानीप्रसाद मिश्र	९२
५९.	वही	"	४८
६०.	वही	"	४८
६१.	वही	"	४८
६२.	वही	"	४८

	पुस्तक का नाम	लेखकका नाम	पृष्ठ संख्या
६३.	वही	"	४९
६४.	गीत फरोश छन्दोबद्ध	भवानीप्रसाद मिश्र	१४९
६५.	त्रिकालसंध्या	भवानीप्रसाद मिश्र	भूमिका से
६६.	वही	"	भूमिका से
६७.	गीत फरोश	"	९४
६८.	वही	"	९४
६९.	'कविता' गीत फरोश	"	८६

उपसंहार

भवानीप्रसाद मिश्र नयी कविता के श्रेष्ठ हस्ताक्षरों में से एक है । नयी कविता के सबसे सहज कवि वे माने जाते है । भवानीप्रसाद मिश्र के कविरूप की पहली पहचान 'दूसरा सप्तक' में संग्रहित कविताओं से हुई है । नयी कविता के शुरूआत की वैयक्तितता को देखते हुए दूसरा सप्तक में संग्रहीत मिश्रजी की कविताओं में उच्चतर और सकारात्मक मूल्यों का संक्रमण हुआ है । उनका प्रायः सभी रचनाओं में एक प्रकार की निच्छलता, नवीनता तथा ताजगी का अनुभव होता है ।

भवानीप्रसाद मिश्र के जीवन और काव्य चिन्तन पर यदि किसी का गहरा असर है तो केवल सामाजिकता का और महात्मा गाँधी का । मिश्रजी की कविता जीवन की अलग-अलग स्थितियों की कविता है या कहें कि जीवन प्रवाह को अलग-अलग नजरिये से देखने का प्रयास है । उपरांत मिश्रजी की रचनाओं में लोक जीवन की अभिव्यक्ति भी हुई है ।

साहित्य के दोनों ही रूप गद्य एवं पद्य में मिश्रीजीने प्रयोगों की नवीन सम्भावनाओं का आविष्कार किया है और साथ ही साथ परम्परागत काव्य चेतना का परिष्कार मिश्रजी का काव्य हिन्दी काव्य-जगत में उनके पूर्व की छायावादी या स्वच्छदतावादी काव्य धारा के विकास की एक सामाजिक उपलब्धि है । प्रयोगवादी नये कवि के रूप में मिश्रजी का अपना विशिष्ट स्थान है । उन्होंने अन्य प्रयोगवादी कवियों से थोडा-सा अलग, अस्तित्व की रक्षा के लिए विषक्त विषम से विषम परिस्थितियों से जुझते हुए उनसे लड़ते हुए आज वर्तमान समय

के व्यक्तियों के चरित्रों को सहज मानवता की प्रामाणिक दृष्टि से देखने का प्रयास किया है ।

मिश्रजी को जन-मानस का कवि उद्‌घोषित किया गया । इस प्रस्तुत शोधप्रबंध में उनके काव्यों का सामाजिक, नैतिकता, वर्ग-संघर्ष, गाँधीवाद और शिल्पगत अध्ययन हुआ है । यह विचारणीय प्रश्न है कि मिश्रजीने केवल सामाजिक धरातल में ही अपनी कविताएँ ही क्यों लिखीं । वे अपनी कविता में यदि किसी भी पक्ष को उठाते है, तो केवल उसको मध्यवर्गीय सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही क्यों देखते है, क्या हम यह सोच सकते है कि स्वंय मिश्रजी भारतीय मध्यमवर्गीय समाज में उत्पन्न होने के कारण इस परिवेश से इतने अधिक प्रभावित हुए है कि उनका व्यामोह तो अभी तक नहीं छोड़ पाये है । उनकी सम्पूर्ण काव्य साधना पर दृष्टि डालने से ये स्पष्ट हो जाता है कि, चाहे उनकी कविता वैचारिक दृष्टि से अद्वेतवादी हो, प्रेम सौन्दर्य की कविता हो या जीवन से निराश दंद्वग्रस्त मनुष्य की । कहीं भी सामाजिक चेतना से वह पृथक नहीं रह सके है । सामाजिक दृष्टि से वे गाँधीवादी है तो वर्ग-संघर्ष से मार्कसवादी है ।

इस तरह मिश्रजी का काव्य संसार इतना मूक्त है कि उसमें प्रकृति प्रेम है, व्यक्ति का आंतरिक व्यक्तित्व संघर्ष है, गाँधी के सिद्धांत उनके विचार है, फिरभी प्रयोगवाद भी है, छायावाद भी है । संयोग-वियोग, द्वंन्द्व सब कुछ है । उनकी भाषा का विचारों के साथ वही घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है जो त्वचा का रक्त से । भाषा मधुर कठोर और कोमल भी है । शब्दों के वैविध्य-वैचित्र्य से, तुर्को - लयों से यति-गति की आन्तरिक धड़कन से उनकी संवेदन क्षमता का यथार्थ

दिखलाई दे जाता है । कवि के लहजे में एक ऐसा 'इनोसेन्स' है जो निष्काम आँखों से साफ देखा जा सकता है ।

उनके काव्यों के विषयों को हमने देखा है, उनमें हरेक काव्य संग्रह में अलग-अलग अनुभूतियाँ हमे समाज के साथ जोड़ती है । प्रयोगवादी कवि रूप के समान ही मिश्रजी का गद्य लेखक का रूप गद्य विद्याओं के नवीनतम प्रयोगों और उसके स्थापत्त्य की नयी सम्भावनाओं के स्तर पर अवतीर्ण हुआ है । व्यक्तिवादी चेतना पर आधारित उन्होंने 'कालजयी' नामक विचारपरक प्रबन्ध प्रस्तुत किया । जिसमें कविने अपने वैचारिक मन्थन का, जीवन दृष्टिकोण का आत्मचिन्तन का ही आत्म साक्षात्कार किया है, जिसे कथ्य में वह स्वयं मौजूद पाया जाता हैं । रचनाकार भाषा की सांस्कृतिक अस्मिता के क्षण में स्वंय बाँसूरी बनकर बजता है । इसलिए इसकी भाषा 'परायापन' न छोड़कर 'अपनेपन' की आत्मीयता में तन्मय कर लेती है । इसमें आर्ष प्रयोगों ने शब्दों की अर्थच्छाओं और व्यंजकताओं को बढ़ाया है । 'कोमल किसलय हिले कि पत्थर के प्राणों में प्यार भर गया' जैसे विरोधाभास के प्रयोग से संयोग श्रृगार के जीवन्त चित्र खींचे गये है । इसी प्रकार के प्रयोग हमें 'जिन्होंने मुझे रचा' और 'कुछ नीति और कुछ राजनीति' में देखने को मिलते है ।

आधुनिक काव्य के संशोधनों में जितना ध्यान साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, राजनीतिक तथा यूरोपियन साहित्य के प्रभाव की ओर दिया गया है उतना जीवन की सूक्ष्म-अतल गहराइयों को प्रकाशित करनेवाला, जन-मानस के सूक्ष्म स्पन्दन को प्रतिध्वनित करनेवाले, सामाजिक अध्ययनों की ओर कम ही अध्येताओं का ध्यान गया है । इस अध्ययन में वैसे तो कवि के कृत्तित्व-व्यक्तितत्व तथा वर्ग-संघर्ष, गाँधीवाद एवं शिल्पगत

पक्ष तथा काव्य संसार के विविध पक्षों को बड़ी सूक्ष्मता के साथ उभारा गया है । इतना ही नहीं डॉ. विजयबहादूरसिंह, डॉ. श्रीमती मिथलेश कश्यप, डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी, डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल आदि विद्वान इस विषय में ख्याति प्राप्त कर चुके है । मैं इस अध्ययन में उन सब का आभार मानकर इस विषय को उन लोगों से भी ज्यादा आगे बढ़ा पाया हुँ आज के समय के मुताबिक हिन्दी साहित्य को आधार बनाकर इस प्रकार के सामाजिक अध्ययन उच्चस्तरीय अनुशीलन शोध और उत्कृष्ठ विवेचन कर पाया हूँ । मिश्रजी जिस क्रांति की बात अपने काव्यों में करते है, गाँधी के सिद्धांतों को जिवीत करना चाहते है वो सब आज अन्ना हजारे ने कर दिखाया है । इस शोध प्रबंध के अंत में मुझे यह कहते हुये बहोत गर्व मेहसुस होता है कि ''क्रांति सिर्फ हथियारो - युद्धों या हिंसा से नहीं होती लेकिन दृढ निश्चय और सक्षम शब्दों के माध्यम से अहिंसक आंदोलन भी परिवर्तन कर सकते है ।'' यह बात गाँधीजी के देहांत के बाद आज फिर हिन्दुस्तान ने साबित कर दि है । यह मिश्रजी के जीवन का उनके साहित्य का और इस अध्ययन का मुख्य उद्‍देश्य है ।

धन्यावाद...